

गुरुकूल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार प्रतकालय

विषय संख्या प्स्तक संख्या मागत पञ्जिका संख्या ३७, ७

सर्व प्रकार की निशानियां । कृपया १५ दिन से ग्रधिक समय तक पुस्तक भ्रापन पास न रखें।

विद्यावाचरपति

पुस्तकालय गुरुकूल कांगडी हजार पुस्तके सप्रेम

STATES AND STATES FOR STATES AND STATES AND

a pigitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri पुरतकालय

¶ १ × - ८ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या...

आगत संख्या 3.9, ६.१२

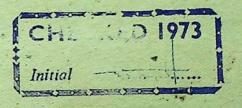
पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सिहत ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

R820,DIX-K

37912 CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

# स्टाकं प्रमाणीकरण १६ = ४ - १६ = ४

इन्द्र विद्यात्रात्रमपति चन्द्रतोक, जयादः गन्द विल्ली द्वारा गुरुकुल कांग्रही व्यवकालण की



R820,DIX-K



37912 CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मुम्बर

श्रीः

श्रीमद्प्पय्यदीक्षितप्रणीतः

# कुवलयानन्दः।

जयदेवविरचितचन्द्रालोकन्याख्यारूपः

# चन्द्रालोकसहितः।

श्रीमत्तत्सदुपारूयवैद्यनाथसूरिविरचितया

अलंकारचन्द्रिकाव्याख्ययालंकृतः।

पणशीकरोपाह्वलक्ष्मणात्मजेन वासुदेवशर्मणा (पाठान्तरैः वर्णकमकोशयोजनेन च) परिष्कृतः।

(द्वितीयावृत्तिः)

#### सच

मुम्बय्याख्यराजधान्यां तुकाराम जावजी इत्येतैर्निर्णयसागराख्य-मुद्रणयत्रालयाधिषैः स्वीयेऽङ्कनालये संमुद्य प्राकाश्यं नीतः ।

शाकः १८२९, स्त्रीस्ताब्दः १९०७.

मूल्यं १४ आणकाः।



इदं पुस्तकं १८६० स्य २५ तमेशानुशासनेनाङ्कंथित्वा अस्य पुनर्भुद्रणादयोऽधिकारा राजनियमानुसारेण अङ्कथित्रा स्वायत्तीकृताः सन्ति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

### अत्रेपत्प्रास्ताविकम्।

अथ प्रकादयतेऽयं कुवलयानन्दोऽलंकारचन्द्रिकया युतः सकलजनमनः-प्रमोदमाधातुम् । अथास्य कर्तुः सुग्रहीतनाम्नः श्रीमद्प्पय्यदीक्षितस्येतिग्रत्तं न किंचित्समासादितमस्माभिरितिहाससाधनविधुरैः । केवलमैतिह्यमालम्ब्य किंचि-दभिधास्यामः । अयं हि पण्डितो द्रविडजातीयः सकलश्रोतस्मार्तिकयाकलाप-निपुणः सर्वतन्त्रस्रतन्त्रप्रतिभः कदाचित्काशींगतः प्रभाते कृतभागीरथीस्नानो निर्वतितप्रातराहिकः स्वभवनं प्रत्यागच्छन् घट्टे शयानं कंचिद्युवतीदत्तकण्ठप्रहं प्रावृताखिलशरीरमपि वहिनिःस्तविस्नसाक्षेतशिस्तं पुरुषमद्राक्षीत् । अवादीच तं कोधविस्मयकरुणाभिर्युगपदिभिभूतचेताः—

## 'किं निःशङ्कं शेषे शेषे वयसि त्वमागते मृत्यौ' इति ।

तदाकर्ण्य यावदुित्क्षिप्य पटमवलोकयित वक्तारं स शयानः पुरुषस्ताविदमं पण्डितराजं जगन्नाथमभिज्ञाय श्रीमद्प्पय्यदीक्षित उत्तरार्थमिदं पपाठ ।

# 'अथवा सुखं रायीथा निकटे जागित जाहवी भवतः' इति ।

इति किंवदन्त्या पण्डितराजसमकाठीनत्वमस्यावगम्यते । पण्डितराजस्तु 'शहाजहानाभिधयवनसार्वभौमस्य संसदि प्रवेशं लब्धवान् । अधिगतवांश्र निजविद्याचमत्कारपरितोषितात्तस्मादेव पण्डितराजपदवीम् । स्थितश्च प्रथमे वयसि प्रायस्तत्रेव तत्समीपे तत्स्नोर्दाराशिकोहस्य समीपे । शहाजहानमही-पतिस्तु १६२८ ख्रिस्ताब्दे राजसिंहासनमधिरूढः, १६५८ ख्रिस्ताब्दे शौरंगजेवनान्ना स्तपुत्रेण कारागृहे निवेशितः १६६६ ख्रिस्ताब्दे च पञ्चत्वं गतः । पण्डितराजोऽपि वार्धके श्रीकाश्यां मथुरायां वा गत्वा परमेश्वराराधनेन वयःशेषं नीतवान् । तस्मात् ख्रिस्ताब्दीयसप्तदशशतकमध्ये पण्डितराज आसीदिति सुव्यक्तमेव' इति निर्णातवान् रसगङ्गाधरभूमिकायां जयपुरस्थो दुर्गाप्रसादनामा पण्डितः । तेनास्य कुवलयानन्दस्य प्रणेतः श्रीम-दप्पयदीक्षितस्य जीवनकालोऽपि ख्रिस्ताब्दीयसप्तदशशतकमेवत्यवसीयते ।

श्रीमद्दीक्षितैश्चतुरिषकशतं १०४ प्रन्थाः प्रणीता इति श्रूयते तेषामेकतमो-ऽयमलंकारशास्त्रविषयो प्रन्थः । अत्र श्रीजयदेवप्रणीतं चन्द्रालोकमेव मूलतया परिगृद्योपमादिहेत्वलंकारान्ताः शतमलंकारा निरूपिताः । अग्रे च रसवदादयः संकरसंकरान्ताश्चतुर्विशतिरलंकाराः खातन्त्रयेणैव निरूपिताः । एतच मूलएव प्रन्थकृता दिशितम्—

'येषां चन्द्रालोके दृश्यन्ते लक्ष्यलक्षणश्लोकाः। प्रायस्त एव तेषामितरेषां त्वभिनवा विरच्यन्ते' इति।

सोऽयमलंकारशास्त्रमध्येतॄणासुपयोगायालंकारचित्र्वकाख्यया टीकया सहितः प्राचीनैर्द्वित्रेः पुस्तकेः संवाद्य पाठभेदिटिप्पणीभिश्च संयोज्येतदन्तर्गतानां सर्वृ-पामिष श्लोकानामकारादिवर्णकमेण सूचीं च प्रदर्श्य परिष्कृतोऽध्येतॄणासुपका-राय प्रभूयादिखाशास्ते—

विदुषामनुचरः

पणशीकरोपाह्वो वासुदेवशर्मा।

# चन्द्रालोकविषयक्रमः।

#### とののである

| विषय:                     | মৃষ্ঠ. | विषयः                     | पृष्टं. |
|---------------------------|--------|---------------------------|---------|
| प्रथममयूखः १.             |        | तृतीयमयूखः ३.             |         |
| १ तत्र काव्यहेतुः         | 9      | ७ काव्यविशेषलक्षणानि      | ų       |
| २ काव्यलक्षणम्            | २      | चतुर्थमयूखः ४.            |         |
| ३ रूढियौगिकम्             | 3      |                           |         |
| ४ सामान्यपरिवृत्तिसिद्धकथ | नम् २  | ८ काव्यगुणवर्णनम्         | 4       |
| ५ कमेण तदुदाहरणानि .      | २      | पञ्चममयूखः ५.             |         |
| द्वितीयमयूखः २.           |        | ९ शब्दालंकारपरिसंख्यानम्  | 9       |
| ६ काव्यदोषवर्णनम्         | ३      | १० अर्थालंकारपरिसंख्यानम् | 6       |

# कुवलयानन्द्विषयऋमः।

| क्रमः    | विषयः              |     | पृष्ठं. | क्रमः विषयः               | पृष्ठं. |  |  |
|----------|--------------------|-----|---------|---------------------------|---------|--|--|
|          | मङ्गलाचरणम्        |     | 9       | १५ दीपकालंकारः            | 88      |  |  |
|          | ग्रन्थकरणप्रतिज्ञा |     | 2       | १६ आवृत्तिदीपकालंकारः     | 49      |  |  |
| 9        | उपमालंकारः         |     | 3       | १७ प्रतिवस्तूपमालंकारः    | 42      |  |  |
|          | अनन्वयालंकारः      | ••• | 9       | १८ दृष्टान्तालंकारः       | 44      |  |  |
| 70000    | उपमेयोपमालंकारः    | ••• | 90      | १९ निदर्शनालंकारः         | ५६      |  |  |
| -        | प्रतीपालंकारः      |     | 99      | २० व्यतिरेकालंकारः        | ६२      |  |  |
|          | रूपकालंकारः        |     | 94      | २१ सहोत्तयलंकारः          | ६३      |  |  |
|          | परिणामालंकारः      |     | 20      | २२ विनोत्तयलंकारः         | ६४      |  |  |
| the same | उल्लेखालंकारः      |     | 29      | २३ समासोत्त्यलंकारः       | ६५      |  |  |
|          | स्मृत्यलंकारः      |     | २३      | २४ परिकरालंकारः           | 69      |  |  |
|          | भ्रान्खलंकारः      |     | २३      | २५ परिकराङ्करालंकारः      | ७४      |  |  |
| 90       | संदेहालंकारः       |     | २३      | २६ श्लेषालंकारः           | ७४      |  |  |
| 99       | अपहुत्यलंकारः      |     | २५      | २७ अप्रस्तुतप्रशंसालंकारः | ७८      |  |  |
|          | उत्प्रेक्षालंकारः  | ••• | 39      | २८ प्रस्तुताङ्करालंकारः   | 68      |  |  |
|          | अतिशयोत्तयलंकारः   | ••• | 30      | २९ पर्यायोक्तालंकारः      | 60      |  |  |
|          | तुल्ययोगितालंकारः  | ••• | ४६      | ३० व्याजस्तुललंकारः       | 59      |  |  |

| क्रमः | विषयः                |     | पृष्ठं. | क्रमः | विषय:                 |     | विष्ठं• |
|-------|----------------------|-----|---------|-------|-----------------------|-----|---------|
| 39    | व्याजनिन्दालंकारः    |     | 88      | ६५    | मिथ्याध्यवसित्यलंकारः |     | १३६     |
| 32    | आक्षेपालंकारः        |     | ९६      | ६६    | लितालंकारः            |     | १३७     |
| 33    | विरोधाभासालंकारः     |     | 86      | ६७    | प्रहर्षेणालंकारः      | ,   | 938     |
| 38    | विभावनालंकारः        |     | 96      | 50    | विषादनालंकारः         |     | 989     |
| 34    | विशेषोत्तयलंकारः     |     | 909     | ६९    | उह्नासालंकारः         |     | 989     |
| ३६    | असंभवालंकारः         | ••• | 902     | 00    | अवज्ञालंकारः          | ••• | 983     |
| ३७    | असंगत्यलंकारः        |     | 902     | ७१    | अनुज्ञालंकारः         | ••• | 988     |
| 36    | विषमालंकारः          |     | 904     | ७२    | लेशालंकारः            | ••• | 988     |
| 39    | समालंकारः            | ••• | 990     | ७३    | मुद्रालंकारः          | ••• | १४६     |
| 80    | विचित्रालंकारः       |     | 992     | ७४    | रत्नावल्यलंकारः       | ••• | 980     |
| ४१    | अधिकालंकारः          | ••• | 993     |       | तद्भुणालंकारः         | ••• | 988     |
| ४२    | अल्पालंकारः          | ••• | 998     |       | पूर्वरूपालंकारः       | ••• | 988     |
|       | अन्योन्यालंकारः      | ••• | 998     |       | अतद्भुणालंकारः        | ••• | 9.40    |
| 88    | विशेषालंकारः         |     | 994     | 1     | अनुगुणालंकारः         | ••• | 949     |
| ४५    | व्याघातालंकारः       |     | 995     |       | मीलितालंकारः          | ••• | 949     |
| ४६    | कारणमालालंकारः       | ••• | 990     |       | सामान्यालंकारः        | ••• | १५२     |
| ४७    | एकावल्यलंकारः        |     | 996     |       | उन्मीलितालंकारः       | ••• | १५३     |
| 86    | मालादीपकालंकारः      | ••• | 996     | 63    | विशेषकालंकारः         | ••• | १५३     |
|       | सारालंकारः           |     | 999     | 63    | उत्तरालंकारः          | ••• | 948     |
| 40    | यथासंख्यालंकारः      |     | 920     | 68    | सूक्ष्मालंकारः        | ••• | 944     |
| 49    | पर्यायालंकारः        | ••• | 920     | 24    | पिहितालंकारः          | ••• | १५६     |
| 43    | परिवृत्त्यलंकारः     | ••• | 922     |       | व्याजोत्त्यलंकारः     | ••• | १५६     |
|       | परिसंख्यालंकारः      | ••• | 922     | 20    | गूढोत्तयलंकारः        | ••• | 940     |
| 48    | विकल्पालंकारः        |     | १२३     | 66    | विवृतोत्तयलंकारः      | ••• | 946     |
| 44    | समुचयालंकारः         | ••• | 923     | 68    | युत्तयलंकारः          | ••• | 940     |
|       | कारकदीपकालंकारः      | ••• | 928     | 90    | लोकोत्तयलंकारः        | ••• | 989     |
|       | समाध्यलंकारः         | ••• | 924     | 99    | छेकोत्तयलंकारः        | ••• | 959-    |
|       | प्रत्यनीकालंकारः     |     | 924     | 83    | वकोत्तयलंकारः         | ••• | 9 6 3   |
|       | अर्थापत्त्यलंकारः    | ••• | १२६     | 93    | स्वभावोत्तयलंकारः     | ••• | 983     |
|       | काव्यलिङ्गालंकारः    |     | 939     | 88    | भाविकालंकारः          | ••• | 958     |
| 49    | अर्थान्तरन्यासालंकार | :   | 939     | 34    | उदात्तालंकारः         |     | 958     |
| ६२    | विकखरालंकारः         | ••• | 938     | 38    | अत्युत्त्यलंकारः      |     | 958     |
|       |                      |     | 934     |       | निरुत्तयलंकारः        |     | 944     |
| ६४    | संभावनालंकारः        | ••• | १३५     |       | प्रतिषेधालंकारः       | ••• | 988     |

| क्रमः | विषय:                             |     | पृष्ठं. | क्रमः | विषयः                   | वृष्टं. |
|-------|-----------------------------------|-----|---------|-------|-------------------------|---------|
| 33    | विध्यलंकारः                       |     | 944     | 993   | आत्मतुष्टिप्रमाणालंकारः | 904     |
| 900   | हेत्वलंकारः                       |     | १६७     | 998   | श्रुखलंबारः             | 905     |
| 909   | रसवदलंकारः                        | ••• | 986     | 995   | अर्थापत्त्यलंकारः       | 900     |
| 902   | प्रेयोऽलंकारस्य भा-               |     |         | 995   | अनुपलब्ध्यलंकारः        | 900     |
|       | वालंकारत्वम्                      |     | 900     | 990   | संभवालंकारः             | 900     |
|       | ऊर्जखदलंकारः                      |     | 900     | 996   | ऐतिह्यालंकारः           | 900     |
|       | समाहितालंकारः                     |     | 909     | 998   | अलंकारसंस्रिष्टः        | 909     |
|       | भावोदयालंकारः                     | ••• |         | 920   | अङ्गाङ्गिभावसंकरः       | 908     |
|       | भावसंध्यलंकारः                    |     | १७२     | 929   | समप्राधान्यसंकरः        | 969     |
|       | भावशवलालंकारः                     | ••• | 902     | 922   | संदेहसंकरालंकारः        | 963     |
|       | प्रत्यक्षालंकारः<br>अनुमानालंकारः | ••• | १७२     | १२३   | एकवाचकानुप्रवेशसंकरः    | 968     |
|       | उपमानालंकारः                      | ••• | 908     | 928   | संकरसंकरालंकारः         | 964     |
|       | शाब्दप्रमाणालंकारः                |     | 908     | १२५   | प्रन्थावसाने कविनामादि  |         |
|       | स्मृत्यलंकारः                     |     | १७५     |       | वर्णनम्                 | 966     |
|       |                                   |     |         |       |                         |         |

# संपूर्णेयं कुवलयानन्दविषयानुक्रमणी।

بع وب

# पं0इन्द्र विद्यावाचरपति समृति संग्रह

श्री: ।

# चन्द्रालोकः।

# प्रथमो मयुखः १

श्रीगणेशाय नमः।

उचैरस्यति मन्दतामरसतां जाय्रत्कलङ्गेरव-ध्वंसं हस्तयते च या सुमनसामुहासिनी मानसे। धृष्टोद्यन्मद्नाद्यनार्चिरम्ला लोकत्रयीद्दिंका सा नेत्रत्रितयीव खण्डपरशोर्वाग्देवता दीव्यत ॥ १ ॥ हंहो चिन्मयचित्तचन्द्रमणयः संवर्धयध्वं रसा-वेरे स्वैरिणि निर्विचारकविते मास्मात्प्रकाशीभव। उह्यासाय विचारवीचिनिचयालंकारवारांनिधे-श्चन्द्रालोकममुं स्वयं वितनुते पीयृषवर्षः कृती ॥ २॥ युत्तयास्वाद्यलसद्रसैकवसतिः साहित्यसारस्वत-क्षीराम्मोधिरगाधतामुपद्धत्सेव्यः समाश्रीयताम्। श्रीरस्मादुपदेशकौशलमयं पीयृषमस्माज्ञग-ज्ञाग्रद्धास्वरपद्मकेशरशयः शीतांशुरस्माहुधाः ॥ ३ ॥ तं पूर्वाचार्यस्योंकिज्योतिः स्तोमोद्गतं स्तुमः। यं निपत्य प्रकाशन्ते महुणत्रसरेणवः॥ ४॥ नाशङ्कनीयं पूर्वेषां मतमेतेन दूष्यते। किंतु चशुर्मृगाक्षीणां कज्जलेनेव भूष्यते ॥ ५॥ काव्यहेतुमाह-

प्रतिभैव श्रुताभ्याससहिता कवितां प्रति। हेतुर्मृद्म्बुसंवद्धवीजन्यिकर्रुतामिव॥६॥

काव्यलक्षणमाह—

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता। सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाकाव्यनामभाक्॥ ७॥ अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृति। असौ न मन्यते कस्माद्नुष्णमनलं कृती ॥ ८॥ विभक्युत्पत्तये योग्यः शास्त्रीयः शब्द उच्यते। रूढयौगिकतन्मिश्रैः प्रभेदैः स पुनस्त्रिधा॥ ९॥ अव्यक्तयोगनियाँगयोगाभासैस्त्रिधात्रिमः। ते च वृक्षादिभूवादिमण्डपाद्या यथाक्रमम्॥१०॥ शुद्धतन्मूळसंभिन्नप्रभेदैयौँगिकस्त्रिधा। ते च भ्रान्तिस्फुरत्कान्तिकौन्तेयादिस्वरूपिणः॥११॥

रूढियौगिकमाह—

तन्मिश्रोऽन्योन्यसामान्यविशेषपरिवर्तनात्। नीरिधः पङ्कजं सौधं सागरो भूरुहः शशी॥ १२॥

सामान्यपरिवृत्त्या यत्सिद्धाति तदाह— क्षीरनीरिधराकाशपङ्कजं तेन सिध्यति । विभक्त्यन्तं पदं वाक्यं तद्यूहोऽर्थसमाप्तितः ॥ १३ ॥ युक्तार्थता तां च विना खण्डकाव्यं स इष्यते । वाक्यं च खण्डवाक्यं च पदमेकमिप क्रचित् ॥ १४ ॥

क्रमादुदाहरति-

धूमवत्त्वादिति यथा देवेत्यामन्त्रणं यथा। वाक्यान्येकार्थविश्रान्तान्याहुर्वाक्यकद्मवकम् ॥ १५॥ महादेवः सत्रप्रमुखमखविद्यकचतुरः

सुमित्रातद्भक्तिप्रणिहितमतिर्यस्य पितरौ । अनेनासावाद्यः सुकविजयदेवेन रचिते

चिरं चन्द्रालोके सुखयतु मयूखः सुमनसः ॥ १६॥ इति श्रीजयदेवकविविरचिते चन्द्रालोकालंकारे वाग्विचारो नाम प्रथमो मयूखः ।

# द्वितीयो मयूखः १ दोपनिरूपणम्—

स्याचेतोविशता येन सक्षता रमणीयता।
शब्देऽथें च कृतोन्मेषं दोषमुद्धोषयन्ति तम्॥१॥
भवेच्छुतिकटुर्वणः श्रवणोद्धेजने पटुः।
विदुष्यते व्याकरणविरुद्धच्युतसंस्कृतिः॥२॥
अप्रयुक्तं दैवतादौ शब्दे पुंलिङ्गतादिकम्।
असमर्थं तु हन्त्यादेः प्रयोगो गमनादिषु॥३॥
स हन्ति हन्त कान्तारे कान्तः कुटिलकुन्तलः।
निहतार्थं लोहितादौ शोणितादिप्रयोगतः॥४॥
एकाक्षरं विना भूभूश्मादिकं खतलादिवत्।
व्यनक्त्यनुचितार्थं यत्पदमाहुस्तदेव तत्॥५॥
इयमुद्धतशाखाय्रकेलिकौतुकवानरी।
निरर्थकं तुहीत्यादि पूरणैकप्रयोजनम्॥६॥

अर्थे विद्धदित्यादौ द्धदाद्यमवाचकम्। थत्ते नभस्तलं भास्वानरुणं तरुणैः करैः ॥ ७॥ अञ्लीलं त्रिविधं वीडा जगुप्साऽमङ्गलात्मना । आह्वादसाधनं वायुः कान्तानाशे भवेत्कथम्॥ ८॥ स्याद्यर्थमिह संदिग्दं नद्यां यान्ति पतित्रणः। स्याद्यतीतं शास्त्रकगम्यं वीतानुमाद्यित ॥ ९॥ शिथिलं शयने लिल्ये मिचतं ते शशिशिय। मस्तपृष्ठकटीलोष्टगहादि ग्राम्यमुच्यते ॥ १०॥ नेयार्थं लक्षणात्यन्तप्रसरादमनोहरम्। हिमांशोर्हारधिकारजागरे यामिकाः कराः॥ ११॥ क्किप्टमर्थो यदीयोऽर्थश्रेणितः श्रेणिमृच्छति । हरित्रियापितृवार (?)प्र वाहप्रतिमं वचः ॥ १२॥ अविमृष्टविधेयांदाः समासपिहिते विधौ। विशन्ति विशिखप्रायाः कटाक्षाः कामिनां हृदि ॥ १३ ॥ अपराधीन इत्यादि विरुद्धमतिकृनमतम्। अन्यसङ्गतमुत्तुङ्गहारशोभिपयोधरा ॥ १४ ॥ रथाद्यनुचिते वर्णे प्रतिकृलाक्षरं विदुः। न मामङ्गद जानासि रावणं रणदारुणम्॥ १५॥ यस्मिन्नुपहतो लुप्तो विसर्ग इह तत्तथा। कुसंधिः पटवागच्छ विसंधिर्नृपती इमौ ॥ १६॥ हतवृत्तमनुकोऽपि छन्दोदोषश्चकास्ति चेत्। विशाललोचने पश्याम्वरं तारातरङ्गितम् ॥ १७॥ नूनं त्वत्खद्गसंभूतं यशःपुष्पं नभस्तलम्। अधिकं भवतः शत्रून्दशत्यसिळताफणी ॥ १८॥ कथितं पुनरुक्ता वाक्छायाब्जश्यामलोचना । विकृतं दूरविकृतैरैयरुः कुञ्जराः पुरम्॥ १९॥ पतत्प्रकर्षेहीनानुप्रासादित्वे यथोत्तरम्। गम्भीरारम्भद्मभोलिपाणिरेष समागतः॥ २०॥ समाप्तपुनरात्तं स्यादेष पीयृषभाजनम्। नेत्रानन्दी तुषारांग्रुरेत्यम्बुनिधिबान्धवः ॥ २१ ॥ अर्घान्तरपदापेक्षि क्रीडानृत्येषु सस्सितम्। मेघारम्भं स्तुमः शम्भुमर्घरम्भोरुविग्रहम्॥ २२॥ अभवन्मतयोगः स्यान्न चेदमभितोऽन्वयः। येन वद्घोऽम्बुधिर्यस्य रामस्यानुचरा वयम्॥ २३॥ स एष लङ्कालंकारं रावणं हन्तुमुद्यतः ।

द्विषां संपदमाच्छिद्य यः शत्रून्समपूरयत्॥ २४॥ अस्थानस्यसमासन्नविद्वज्जनमनोरमम्। मिथः पृथंग्वाक्यपदैः संकीर्ण यत्तदेव तत्॥ २५॥ वक्रेण भ्राजते रात्रिः कान्ता चन्द्रेण राजते। व्रह्माण्डं त्वद्यशःपूरगर्भितं भूरिभूषणम् ॥ २६ ॥ आकर्णय पयःपूर्णसुवर्णकलशायते। भग्नप्रक्रममारव्यशब्दनिर्वाहहीनता ॥ २७ ॥ अक्रमः कृष्ण पूज्यन्ते त्वामनाराध्य देवताः। अमत्तार्थान्तरं मुख्येऽमुख्ये वार्थे विरोधकृत् ॥ २८॥ त्यकहारमुरः कृत्वा शोकेनालिङ्गिताङ्गना। अपुष्टार्थो विशेष्ये चेन्न विशेषो विशेषणात् ॥ २९ ॥ विशन्ति हृद्यं कान्ताकटाक्षाः खञ्जनत्विषः। कष्टः स्पष्टाववोधार्थमक्षमो वाच्यसंनिभः ॥ ३०॥ व्याहतश्चेद्विरोधः स्यान्मिथः पूर्वापरार्थयोः। सहस्रपत्रमित्रं ते वक्रं केनोपमीयते ॥ ३१ ॥ कुतस्तत्रोपमा यत्र पुनरुक्तः सुधाकरः। दुःक्रमग्राम्यसंदिग्धास्त्रयो दोषाः क्रमादमी ॥ ३२ ॥ त्वद्भक्तः कृष्ण गच्छेयं नरकं स्वर्गमेव वा। एकं मे चुम्वनं देहि तब दास्यामि कञ्चकम्॥ ३३॥ बूत किं सेव्यतां चन्द्रमुखी चन्द्रकिरीटयोः। अनौचित्यं कीर्तिलतां तरङ्गयति यः सदा ॥ ३४ ॥ प्रसिद्ध्या विद्यया वापि विरुद्धं द्विविधं मतम्। न्यस्तेयं पश्य कन्दर्पप्रतापधवलद्युतिः ॥ ३५ ॥ केतकी शेखरे शम्भोर्धत्ते चन्द्रकलात्लाम्। सामान्यपरिवृत्तिः स्यात्कुण्डलच्छविवित्रहा ॥ ३६॥ विशेषपरिवृत्तिः स्याद्यिता मम चेतसि । द्वे स्तः सहचराऽचारुविरुद्धान्योन्यसङ्गती ॥ ३७ ॥ ध्वाङ्काः सन्तश्च तनयं स्वं परं च न जानते। सरोजनेत्र पुत्रस्य मुखेन्दुमवलोकय ॥ ३८॥ पालयिष्यति ते गोत्रमसौ नरपुरन्दरः। पदे तदंशे वाक्यांशे वाक्ये वाक्यकदम्बके ॥ ३९ ॥ यथानुसारमभ्यूहेद्दोषाञ्छन्दार्थसंभवान् । दोषमापतितं स्वान्ते प्रसरन्तं विश्वह्वलम् ॥ ४०॥ निवारयति यस्त्रेधा दोषाङ्करामुशन्ति तम्। दोषो गुणत्वं तनुते दोषत्वं वा निरस्यति ॥ ४१ ॥

#### लक्षणनिरूपणम् ।

10

भवन्तमथवा दोषं नयत्यत्याज्यतामसौ ।
मुखं चन्द्रश्चियं धत्ते श्वेतदमश्चकराङ्करैः ॥ ४२ ॥
अत्र हास्यरसोद्देशे त्राम्यत्वं गुणतां गतम् ।
तव दुग्धाव्धिसंभूतेः कथं जाता कलङ्किता ॥ ४३ ॥
कवीनां समयाद्विद्याविरुद्धो दोषतां गतः ।
द्धार गौरी हृद्ये देवं हि-मकराङ्कितम् ॥ ४४ ॥
अत्र श्लेपोद्यान्नेव त्याज्यं हीति निर्थकम् ।

इति श्रीजयदेवकविवरविरचिते चन्द्रालोके दोपनिरूपणो नाम द्वितीयो मयृखः॥

# तृतीयो मयुखः ३

#### अथ लक्षणानि—

अन्त्याक्षरा विचित्रार्थस्यातिरक्षरसंहतिः। उषाकान्तेनानुगतः शूरः शौरिरयं पुनः ॥ १ ॥ शोभाख्यातोऽपि यद्दोषो गुणकीर्त्या निविध्यते। मुधा निन्दति संसारं कंसारिर्यत्र पूज्यते ॥ २ ॥ अभिमानो विचारश्चेदृहितार्थनिषेधकृत्। इन्दुर्यदि कथं तीवः सूर्यो यदि कथं निशि॥ ३॥ हन्तुस्त्यक्त्वा बहून्पक्षान्युत्तयैकस्यावधारणम्। नेन्दुर्नाकोऽयमौर्वाग्निः सागरादुत्थितो दहन्॥ ४॥ प्रतिषेधः प्रसिद्धानां कारणानामनाद्रः। न युद्धे न भ्रुवोः स्पन्दे नैव धीरा निवारिताः॥ ५॥ निरुक्तं स्यान्निवंचनं नाम्नः सत्यं तथानृतम्। ईट्दशैश्चरितैर्जाने सत्यं दोषाकरो भवान् ॥ ६॥ स्यान्मिथ्याध्यवसायश्चेद्सती साध्यसाधने। चन्द्रांशुसूत्रप्रथितां नभःपुष्पस्रजं वह ॥ ७ ॥ सिद्धिः ख्यातेषु चेन्नाम कीर्त्यते तुल्यतोक्तये। युवामेवेह विख्यातौ त्वं वलैर्जलियर्जलैः ॥ ८॥ युक्तिर्विशेषसिद्धिश्चेद्विचित्रार्थान्तरान्वयात्। नवस्त्वं नीरदः कोऽपि स्वर्ण वर्षसि यन्मुद्दः॥९॥ कार्यं फलोपलम्मश्चेद्यापाराद्वस्तुतोऽथवा । असाबुदेति शीतांशुर्मानच्छेदाय सुभुवाम् ॥ १०॥

१ अत्र स्वर्णपदेन कनकं पक्षे सुष्ठु अर्णः उदकम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

#### चन्द्रालोकः ।

ξ·

इत्यादि लक्षणं भूरि काव्यस्याहुर्महर्षयः । स्वर्णभ्राजिष्णुभानुत्वप्रभृतीय महीभुजः ॥ ११ ॥ इति श्रीजयदेवकविवरविरचिते चन्दालोके लक्षणनिरूपणो नाम तृतीयो मयुखः॥

# ·चतुर्थो मयूखः ४ अथ गुणः—

श्लेषो विघटमानार्थघटमानत्ववर्णनम्। स तु शब्दैः सजातीयैः शब्दैर्वन्धः सुखावहः ॥ १ ॥ उल्लसत्तुतां नीतेऽनन्ते पुलककण्टकैः। भीतया मानवत्येव श्रियास्त्रिष्टं हरिं स्तुमः॥ २॥ यस्मादन्तःस्थितः सर्वः स्वयमथौऽवभासते। सिळल्येव स्कस्य स प्रसाद इति स्मृतः ॥ ३॥ समतालपसमासत्वं वर्णाद्यैस्तुल्यताथ वा। इयामला कोमला वाला मरणं शरणं गता ॥ ४॥ समाधिरर्थमहिमा लसद्दनरसात्मना। स्यादन्तर्विशता येन गात्रमङ्करितं सताम्॥ ५॥ माधुर्य पुनरुक्तस्य वैचिज्यचारुतावहम् । वयस्य पर्य पर्यास्य चञ्चलं लोचनाञ्चलम् ॥ ६॥ ओजः स्यात्प्रौढिरर्थस्य सङ्खेपो वातिभूयसः। रिपुं हत्वा यदाः कृत्वा त्वद्सिः कोशमाविशत्॥ ७॥ सौकुमार्यमपारुष्यं पर्यायपरिवर्तनात्। स कथाशेषतां यातः समाळिङ्गय मरुत्सखम् ॥ ८॥ उदारता तु वैदग्ध्यमग्राम्यत्वात्पृथङ्मता । मानं मुञ्ज प्रिये किंचिह्नोचनं समुद्ञ्यय ॥ ९ ॥ युङ्गारे च प्रसादे च कान्त्यर्थं व्यक्तिसंग्रहः। अमी दश गुणाः काव्ये पुंसि शौर्यादयो यथा॥ १०॥ तिलकाद्यमिव स्त्रीणां विदग्धहृदयंगमम्। व्यतिरिक्तमलंकारप्रकृतेर्भूषणं गिराम् ॥ ११ ॥ विचित्रलक्षणन्यासो निर्वोहः प्रौढिरौचिती। शास्त्रान्तररहस्योक्तिः संग्रहो दिक् प्रदर्शिता॥ १२॥

इति श्रीजयदेवकविवरविरचिते चन्द्रालोके गुणनिरूपणो नाम चतुर्थो मयूखः॥४॥

## पत्रमो मयुखः ५

### शब्दालंकारपरिसंख्यानम्-

शब्दार्थयोः प्रसिद्ध्या वा कवेः प्रौढिवशेन वा। हारादिवदलंकारसंनिवेशो मनोहरः॥१॥ स्वरव्यञ्जनसंदोहव्यृहाः संदोहदोहदाः। गौर्जगज्जायदुत्सेकाच्छेकानुप्रासभासुरा ॥ २॥ आवृत्तवर्णसंपूर्णे वृत्त्यनुप्रासवद्वाः। अमन्दानन्दसंदोहस्वच्छन्दस्यन्दमन्दिरम्॥३॥ लाटानुप्रासमूर्भिन्नाभिप्राया पुनरुक्तता। यत्र स्यान्न पुनः शत्रोगीर्जितं तर्जितं जितम् ॥ ४॥ क्षोकस्यार्धे तद्धें वा वर्णावृत्तिर्यदि ध्रुवा। तदा मता मतिमतां स्फ्रटानुप्रासता सताम्॥ ५॥ उपमेयोपमानादावर्थानुप्रास इप्यते। चन्दनं खलु गोविन्दचरणद्वनद्वनम्॥ ६॥ पुनरुक्तप्रतीकाशं पुनरुक्तार्थसंनिभम्। अंश्रकान्तं शशी कुर्वन्नम्वरान्तमुपैत्यसौ ॥ ७॥ आवृत्तवर्णस्तवकं स्तवकन्दाङ्करं कवेः। यमकं प्रथमाधुर्य माधुर्य वचसो विदुः॥८॥ काव्यवित्पवरैश्चित्रं सङ्गवन्धादि लक्ष्यते। तेष्वाद्यमुच्यते स्रोकद्वयी सज्जनरिक्षता ॥ ९ ॥ कामिनीव भवेत्खङ्गलेखा चारुकरालिका। काश्मीरसेकरकाङ्गी शत्रुकण्ठान्तिकाचिका ॥ १०॥

शब्दालंकाराज्ञिरूप्यार्थालंकारमाह । तत्रैपामलंकाराणां अनुक्रमणिका लिख्यते—

उपमानन्वयावादावुपमेयोपमानता।
प्रतीपं रूपकं चैव परिणामस्ततो मतः॥१॥
उल्लेखः स्मृतिमद्भान्तिमत्संदेहा अपह्नुतिः।
उत्प्रेक्षातिशयोक्ती च ततः स्यान्तृल्ययोगिता॥२॥
दीपकालंकृतिश्चैव तत आवृत्तिदीपकम्।
प्रतिवस्तूपमा चैव स्यादृष्टान्तो निदर्शना॥३॥
व्यतिरेकः सहोक्तिश्च विनोक्तिस्तदनन्तरम्।
समासोक्तिः परिकरस्तथा परिकराङ्करः॥४॥
श्लेषो क्षेयोऽप्रस्तुतप्रशंसा च प्रस्तुताङ्करः।
पर्यायोक्तं ततो व्याजस्तुतिः स्याद्याजनिन्दनम्॥५॥

#### चन्द्रालोकः ।

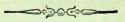
6

आक्षेपालंकृतिश्चेव विरोधाभास एव च। विभावना विशेषोक्तिरसंभव उदाहतः॥ ६॥ असङ्गतिश्च विषमं समं चैव विचित्रकम्। अधिकालंकृतिश्चाल्पालंकृतिस्तद्नन्तरम्॥ ७॥ अन्योन्यं च विशेषश्च व्याघातालंकृतिस्ततः। हेतुमालैकावली च मालादीपकसाधकौ ॥ ८॥ . यथासंख्यं च पर्यायः परिवृत्तिस्ततो मता। परिसंख्यालंकृतिः स्याद्विकल्पस्तद्नन्तरम् ॥ ९ ॥ समुचयस्ततः प्रोक्तस्ततः कारकदीपकम्। समाधिः प्रत्यनीकं च काव्यार्थापत्तिरेव च ॥ १०॥ काव्यिकः ततश्चार्थान्तरन्यास उदाहृतः। विकस्वरः स्यात्प्रौढोक्तिः संभावनमतः परम् ॥ ११ ॥ मिथ्याध्यवसितिश्चेव लिलतं च प्रहर्षणम्। ततो विषदनोह्यासाववज्ञालंकृतिस्ततः ॥ १२ ॥ अनुज्ञा शैलमुद्रा च रत्नावल्यपि तद्रुणः। स्यात्पूर्वरूपालंकारोऽतहुणानुगुणावपि ॥ १३ ॥ मिलितं चैव सामान्यमुन्मीलितनिमीलितौ। उत्तरं सुक्ष्मपिहितं व्याजोक्तिस्तदनन्तरम् ॥ १४ ॥ गूढोकिविंवृतोकिश्च युक्तिस्तोकोक्तिरेव च। छेकोक्तिश्चेव वक्रोक्तिः स्वभावोक्तिश्च भाविकम् ॥ १५॥ उदात्तं तत्तदात्युक्तिर्निरुक्तिस्तद्नन्तरम्। प्रतिषेधो विधिहेत्रित्यलंकृतयः शतम् ॥ १६ ॥

इत्यलंकारानुक्रमणिका ॥

## श्रीः । श्रीमदप्पैयदीक्षितविरचितः

# कुवलयानन्दः।



#### अलंकारचन्द्रिकाख्यव्याख्यासमेतः।

श्रीगणेशाय नमः । अमरीकवरीभारश्रमरीमुखरीकृतम् । दूरीकरोतु दुरितं गौरीचरणपङ्कजम् ॥ १ ॥

परस्परतपःसंपत्फलायितपरस्परौ । प्रपञ्चमातापितरौ प्राञ्चौ जायापती स्तुमः ॥२ ॥

#### अलंकारचन्द्रिका।

अनुचिन्त्य महालक्ष्मीं हरिलोचनचन्द्रिकाम् । कुर्वे कुवलयानन्दसदलंकारचन्द्रिकाम् ॥ १ ॥

चिकीर्षिताविद्यसिद्धय इष्टदेवतां स्ताति —अमरीति ॥ अत्र चरणमेव पद्ध-जमिति मयुरव्यंसकादिसमासाश्रयणात्परिणामालंकारः । चरण आरोप्यमाणस्य पङ्कजस्यारोपविषयचरणात्मतापरिणति विना द्रितदूरीकरणिकयार्थत्वासंभवात्। 'परिणाम: कियार्थश्चेद्विषयी विषयात्मना' इति तल्लक्षणात् । नच पङ्कजिमव चर-णमिति पूर्वपदार्थप्रधान उपमितसमास एवास्त्वित शक्क्यम् । अमरीणां कवरी-भारस्य केशपाशस्य संबन्धिनी सौगन्ध्यलोभात्तत्संसृष्टा या भ्रमरी तया मुखरी-कृतमिति विशेषणस्यानुगुण्याभावात्तस्य पङ्कजगतत्वेनैव प्रसिद्धेरिति एतद्विशेषणा-व्गतेन च पादपतनेनाभिव्यज्यमाना गौरीविषया सुराङ्गनागता रतिः कविगता तां प्रणातीति प्रेयोलंकारोऽपि वोध्यः ॥ १ ॥ परस्परेति ॥ प्राञ्चौ पुरातनौ जायापती अर्थादुमामहेश्वरौ स्तुमः । किंमूतौ । प्रपन्नस्य जीववर्गस्य मातापितृ-रूपो निरुपाधिकृपाश्रयत्वाद्धितोपदेष्टत्वाच । तथा परस्परसंवन्धिन्यास्तपःसंपत्तेः फलवदाचरितं परस्परखरूपं ययोस्तौ । अत्र परशब्दस्य कियाविनिमयविवक्षायां 'कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्रो हे वाच्ये' इति वार्तिकेन द्विभीवे असमासवद्भावे 'पूर्व-पदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः' इत्यनेन सुपः खादेशे च परस्परशब्दव्युत्पत्तेः पार्वती-तपःसमृद्धिफलायितः परमेश्वरः परमेश्वरतपःसंपत्फलायिता च पावतीत्वर्थो लभ्य-ते । तपःसंपत्तेश्व फलं निरतिशयानन्द इति तदुपमया परस्परं परमप्रेमास्पदत्व-लक्षणः श्रङ्गारो व्यज्यमानः सौभाग्यातिशयव्यज्ञनमुखेन शिवयोर्भावप्रकर्षे पर्यव-

3

[ उपोद्धातः १

उद्घाट्य योगकलया हृद्याव्जकोशं धन्येश्चिराद्पि यथारुचि गृह्यमाणः । यः प्रस्फुरत्यविरतं परिपूर्णरूपः श्रेयः स से दिशतु शाश्चतिकं सुकुन्दः ॥ ३ ॥

अलंकारेषु वालानामवगाहनसिद्धये । लिलतः क्रियते तेपां लक्ष्यलक्षणसंग्रहः ॥ ४॥ येपां चन्द्रालोके दृश्यन्ते लक्ष्यलक्षणक्षोकाः ।

स्यतीति सहृद्येराकलनीयम् । मातापितराविति रूपकाभ्यामुक्तोपमयोः संसृष्टिः । परस्परं चोपमयोः फलायिते खेकवाचकानुप्रवेशलक्षणः संकर इति दिक् ॥ २ ॥ संप्रति प्रतिपिपाद्यिषितानामलंकाराणां व्युत्पत्तेः स्वतोऽपुरुषार्थतया फलत्वा-योगात्तस्या रसास्वादौपयिकत्वेन फलत्वं प्रेक्षावतां प्रकृतप्रन्थप्रवृत्तये सूचियतुं श्रृङ्गाररसाधिदैवतं श्रीकृष्णंप्रति रसाखादानन्दं प्रार्थयते — उद्घाट्येति॥ स मु-कुन्दों में मह्यं शश्चद्भवं शाश्वतिकं भन्नावरणतया सदा प्रकाशमानं श्रेयो विगिल-तवेद्यान्तरमानन्दं 'रसो वै सः' इति श्रुतेः रसपदाभिधेयं दिशतु ददात्वि-त्यर्थः । यथाश्रुते मुक्तिप्रार्थनायाः प्रकृतेऽसंगलापत्तेः । स कः। यो धन्यैर्महा-महिमपुण्यज्ञालिभिर्नारदादिमुनिभिर्योगकलया योगकौशैलेन हृदयाञ्जस्य उरसो मध्यवर्तिनो हृदयपुण्डरीकस्य कोशं मुकुलमधोमुखतया विद्यमानमुद्धाट्य रेचक-प्राणायामेनोध्वीमुखं कृत्वा चिराद्व्कालं यथारुचि यथेच्छं गृह्यमाणोऽपि रामकृ-ल्णायभिमतमूर्तिध्यानगोचरीक्रियमाणोऽपि परितः पूर्णे रूपमस्य तथाभूतोऽपरि-च्छिन्नब्रह्मरूपोऽविरतं निरन्तरं मुक्तिदशायां प्रस्फुरति प्रकाशत इति विरोधालं-कारः । औपासनिकरूपस्य कल्पितत्वेन च तत्परिहारः । अथवा योगिभिरप्यचि-न्त्यखरूप इति माहात्म्यातिशयवर्णनम् । अत्र योगिगतभगवद्विषयकरिभावस्य कविगतं तं प्रसङ्गतया प्रेयोलंकारः ॥ ३ ॥ चिकीर्षितस्य प्रन्थस्य प्रयोजनाभि-थेये प्रदर्शयति —अलंकारेष्विति ॥ एतचोभयान्वयि । अलंकारेष्वर्थालंकारे-पूपमादिषु विषये वालानामन्युत्पन्नानां तेष्ववगाहनस्य न्युत्पत्तेः सिद्धय इत्यर्थः। तेषां ये लक्ष्यलक्षणे तयोः संब्रह इति नित्यसापेक्षत्वात्समासः । लक्ष्यमुदाहरण-म् । अलंकारत्वं च रसादिभिन्नव्यक्त्यभिन्नत्वे सति शब्दार्थान्यतरनिष्ठा या विष-यितासंबन्धाविच्छना चमत्कृतिजनकतावच्छेदकता तदवच्छेदकत्वम् । अनुप्रा-सादिविशिष्टशब्दज्ञानादुपमादिविशिष्टार्थज्ञानाच चमत्कारोदयात्तेषु लक्षणसमन्व-यः । शब्दार्थयोर्ज्ञाननिष्टचमत्कृतिजनकताया विषयितयावच्छेदकत्वेन तद्विशेष-णीभूतानुप्रासोपमादेस्तिवृष्टावच्छेदकतावच्छेदकत्वात् । रसवदाद्यलंकारसंप्रहाय व्यक्त्योपमादिवारणाय च भेदद्वयगर्भसत्यन्तोपादानम् ॥ ४॥ परकीयप्रन्थाप-हारशङ्कानिरासायाह—येषामिति ॥ येषामलंकाराणां चन्द्रालोके चन्द्रालोका-

१ 'कौशल्येन'.

प्रायस्त एव तेपामितरेपां त्वभिनवा विरच्यन्ते ॥ ५ ॥

### उपमालंकारः १ उपमा यत्र साद्देयलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः । हंसीव कृष्ण ते कीर्तिः स्वर्गङ्गामवगाहते ॥ ६ ॥

ख्यप्रन्थे । त एवेत्यनन्तरं िळ्यन्त इति शेषः । स्थितानामिष केषांचिद्छेखना-त्प्राय इत्युक्तम् । यथानन्तरश्लोकस्योत्तरार्थम् । तत्रवं दश्यते 'हृद्ये खेळतोरु-चैत्तन्वज्ञीस्तनयोरिव' इति । खयं त्वन्यदेव विरचितमिति । एवंच तदीयत्वेन कथनादाशङ्कानिरासः ॥ ५ ॥

संप्रत्यर्थालंकारेषु निरूपणीयेषु वहलालंकारघटकतया सुप्रसिद्धतया च प्रथम-मुपमालंकारं लक्षयति—उपमेति ॥ अयं च लक्ष्यनिर्देशः । शेषं लक्षणम् । सादृश्यलक्ष्मीश्रमत्कृतिजनकता । तद्विशिष्टसादृश्यमिति यावत् । धर्मधर्मिणोरभे-दोपचाराह्रक्षणं व्याचष्टे—यत्रेति ॥ यत्र काव्ये वृत्तित्वं सप्तम्यर्थः । तच क्षक्ति-्लक्षणान्यतरसहकारेण वोधकत्वसंबन्धेन । उपमानमधिकगुणं चन्द्रादि उपमेयं वर्ण्यमानं कामिनीवदनादि सहृदयः काव्यभावनापरिपक्षवृद्धिः व्यक्नयस्य मर्यादा प्रतीतिनियमरूपा यया सा व्यञ्जनेखर्थः । अत्र चोपमानोपमेययोरिति खरूपक-थनं नतु लक्षणान्तर्गतं व्यावर्तनीयाभावादात्माश्रयापादकत्वाच । उपमानत्वो-पमेयत्वयोरुपमाघटितत्वात् । एतचाप्रे व्यक्तीभविष्यति । इत्थं चालंकारत्वे सति साद्दयमुपमालंकारलक्षणं वोध्यम् । एवमग्रेऽप्यधिकारप्राप्तमलंकारत्वविशेषणं बोध्यम् ॥ हंसीत्यादि ॥ अत्र ताबदिवार्थे साहर्ये निरूपितत्वसंसर्गेण हंस्या-देरन्वयः । साद्द्यस्य प्रयोजकत्वसंसर्गेण स्वर्गङ्गावगाहनाश्रयत्वरूपे साधारणधर्मे तस्य च खरूपसंबन्धेन कीर्तौ साहइयस्य निपातार्थतया नामार्थे प्रति साक्षात्संब-न्धेन विशेष्यत्वे विशेषणत्वे च वाधकाभावात्। तथाच हंसीनिरूपितसादश्यप्रयो-जकस्वर्गङ्गाकर्मकावगाहनाश्रयत्ववती कीर्तिरिति बोधः । नचैवं स्वर्गङ्गावगाहन-मिवशब्दश्रेलाद्यिमग्रन्थे धात्वर्थस्य समानधर्मत्वोक्तिर्विरुद्धेति वाच्यम् । तदा-श्रयत्वस्य समानधर्मत्वे तस्य तथात्वस्यौचित्यायातत्वेन विरोधाभावात् । तथा सित तत्रेव कुतो न साद्यान्वय इति चेत्र । धात्वर्थनिष्ठविशेष्यतानिरूपितप्रका-रतासंसर्गेण शाब्दबोधे विशेष्यतया विभक्तयर्थोपस्थितेहेंत्त्वात् । नच निपा-तार्थभित्रवृत्तित्वेन प्रकारता विशेषणीयेति वाच्यम् । घटो न पर्यतीत्यादौ घटाय-न्विताभावस्य कर्मतासंसर्गेण द्र्यनेऽन्वयापत्तेः । यदि तु धात्वर्थेऽपि तात्पर्यव-शात्साद्यान्वयोऽनुभवसिद्धस्तदा धात्वर्थनिष्ठविशेष्यतानिरूपितप्रकारतासंवन्धे-नान्वयवुद्धि प्रति नजन्योपस्थितेः प्रतिवन्धकत्वमात्रं परिकल्प्य घटो न पर्यती-त्यादौ पूर्वोक्तान्वयबोधो निराकरणीय इति दिक् । एवमरविन्दमिव सुन्दरवदन-मिलादावरविन्दादिनिरूपितसाद्द्यस्य प्रयोजकतासंसर्गेण सुन्दरपदार्थेकदेशेऽपि मुन्दरत्वेऽनुभववलादन्वयस्तद्विशिष्टस्य चाभेदेन मुखादौ । इतथं चारविन्दिनह-

पितसाद्द्यप्रयोजकसौन्दर्यवद्भिन्नं वदनमित्यन्वयबोधः । अरविन्दसुन्दरमितिस मासे त्वरविन्दपदेनारविन्दिन रूपितसाद्दयप्रयोजकं लक्ष्यते।तचाभेदेन पदार्थेकदेशे सौन्दर्येऽन्वेति । एवंचारविन्दनिरूपितसाद्यप्रयोजकाभिन्नसौन्दर्यवदभिन्नं वद-नामित्यन्वयबोधः । एकदेशान्वयायोगादरविन्दपदमेव लक्षणया सर्वार्थबोधकं सु-न्दरपदं तु तात्पर्यप्राहकमिखेके । अरविन्दामेव वदनमिखत्रारविन्दानिरूपितसाद-इंग्वैद्वर्दनमिति बोधः। साद्द्यस्य निपातार्थतया भेदेन नामार्थान्वये वाधकाभावा-त्ं। अरविन्द्रिमेवं भातीत्यत्र भातेर्ज्ञानार्थंकत्वेऽरविन्द्पद्स्यारविन्दिनरूपित-साहृश्यप्रकारकज्ञानविषये लक्षणा । तस्य चाभेदेन मुखादावन्वयः । शेषं तात्प-र्यप्राहर्कम् । पूर्वोक्तदिशा वा सादश्यस्यैव प्रकारितासंसर्गेण धात्वर्थेऽन्वयः । अ-त्रेव सौन्दर्यणेति धर्मोपादाने तृतीयार्थस्य प्रयोज्यत्वस्य सादृश्येऽन्वयात्सौन्दर्यः प्रयोज्यारविन्दनिरूपितसाद्दयप्रकारकज्ञानविषय इति बोधः । आद्यकलेप त्वरवि-न्दपदमेव सर्वार्थवोधकमितरत्तात्पर्यप्राहकमिति ध्येयम्। इयंच साददयस्य पदार्था-न्तरत्वमते शाब्दबोधरीतिरुपदर्शिता । तस्य समानधर्मरूपत्वे तु चन्द्र इव मुख-मित्यादौ चन्द्रवृत्तिधर्मवन्मुखमिति बोधः । अत्रैवाह्नादकमिति समानधर्मोपादाने इवार्थस्य धर्मस्याह्णादकत्वे पदार्थेकदेशेऽन्वयः । तदसहिष्णुतायां तु चन्द्रनिष्ठा-ह्वादकत्ववति आह्वादकपदस्य लक्षणा । चन्द्रादिपदं तात्पर्यमाहकम् । चन्द्रसह-शमिल्यत्राप्येकदेशे सादश्ये चन्द्रान्वयः । ससंवन्धिकत्वात् । सदशपदं वा चन्द्र-साद्यविशिष्टे लाक्षणिकम् । अत्रैवाह्नाद्कत्वेनेत्युक्तावभेदस्तृतीयार्थस्तस्य च सद-शपदार्थेंकदेशे धर्मेऽन्वयः। तथा चाह्रादकत्वाभित्रचन्द्रवृत्तिधर्मवदभित्रं मुखमि-ति बोधः । सदृशपदमेव वा सर्वार्थबोधकामितरत्तात्पर्यमाहकामित्येवंविधान्वयसर-णिश्रेणयस्तत्र तत्र शब्दव्युत्पत्तिनिपुणेरनुसंधेया इत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्तपरिचिन्त-नेन ॥ पूर्णोपमेतीत्यनन्तरमालंकारिकैरिति पूरणीयम् । तत्त्वं च विशेषत उपात्त-शब्दशक्तिप्रतिपादितोपमानोपमेयकत्वे सति विशेषतः शब्दोपात्तसमानधर्मकत्वे च सित विशेषतः खनिरूढशब्दगम्यत्वं खपदमुपमापरम् । उपमानलुप्तायामपि लक्षणयोपमानप्रतिपत्तेस्तद्वारणाय शक्तीति । उपमेयल्लप्तायां स्मरवधूयन्तीत्यादा-वात्मन उपमेयस्याध्याहृतेनात्मानमिति शब्देन वोधनादुपात्तेति शब्दविशेषणम्। एवमपि तन्वीत्यनेनात्रोपमेयस्य काव्यस्य सदशं न दश्यत इत्येवंविधायां छप्तो-पमायामुपमानस्य च सहशपदोपात्तत्वाद्विशेषत इति उपमेयोपमानतावच्छेदक-रूपेणेलर्थः । धर्मछप्तायामप्युपमावाचकेन सामान्यतो धर्मस्योपात्तत्वाद्विशेषत इति । उपमाप्रयोजकतावच्छेदकरूपेणेखर्थः । वाचकछप्तायामपि लक्षणयोपमा-नादिपदेनोपमावगमात्तद्वारणाय विशेषतः स्वनिरूढेति । उपमायां च निरूढा 'इव-बद्वायथाशब्दा' इत्याद्यभियुक्तोक्तिसंगृहीता इवादयः । अत्र निपातरूपस्येवादेरु-पर्सगवइचोतकत्वमेव । कथमन्यथा'शरैरुस्नैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन्रसानिव' इत्यादा-वुस्रादिपदोत्तरतृतीयादिसङ्गतिः । उस्रादेरुद्धरणिकयां प्रत्यकरणत्वात्, इवार्थे सा-दृश्यान्वयित्वेन करणीभूतशरविशेषणत्वाभावाच द्योतकत्वे तूस्रादिपदस्योस्रसद-

#### उपमालंकारः १ ] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

यत्रोपमानोपमेययोः सहद्याह्वाद्कत्वेन चारुसाद्द्यमुद्भृततयोहसित व्यङ्गयमर्थादां विना स्पष्टं प्रकाशते तत्रोपमालंकारः । हंसीवेत्युदाहरणम् । इयंच पूर्णोपमेत्युच्यते । हंसी कीर्तिः स्वर्गङ्गावगाहनमिवशब्दश्चेत्येतेपामुप-मानोपमेयसाधारणधर्मोपमावाचकानां चतुर्णामप्युपाद्मनाव् । स्थावपाद्मा

'गुणदोषो बुधो मृह्णविन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः चन्द्रलोक, जनाहर नगर शिरसा श्रावते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति ॥'

शरसा श्रावत पूर्व पर कण्ठे नियच्छित ॥'
अत्र यद्यप्युपमानोपमेययोनेंकः साधारणो धर्मः । उपमाने ईश्वरे चन्द्रगरलयोग्रहणसुपादानं तयोर्मध्ये पूर्वस्य चन्द्रस्य शिरसा श्राधने विहन्सितः स्

शपरतयोखसदशैः शरैरिति शरविशेषणत्वेन तृतियादिसङ्गतिरिति वैयाकरणमतं तु नादरणीयम् । उपास्यते गुरुरित्यादौ धात्वर्थासनिकयाया अकर्मकतया कर्मछ-कारानुपपत्तिरूपबाधकस्योपसर्गवाचकतायामिवेवादिवाचकतायामभावेन दृष्टान्त-वैषम्यस्य स्फटत्वात् । विशेषणविशेष्ययोः समानविभक्तीकतायां 'विशेष्येण सहै-कार्थं भवेयत्र विशेषणम् । तत्र लिङ्गादयः प्रायो विशेष्यस्था विशेषणे ॥' इत्यन्शा-सनस्येवोपमानोपसेययोरपि तस्यां 'लिङ्गसंख्याविभेदेऽपि खपमानोपसेयता । विभ-क्तिः पुनरेकैव उपमानोपमेययोः ॥' इत्यनुशासनस्य सत्त्वेनोपमानपदोत्तरतृतीयादेः साधुत्वार्थतयोपपत्तेश्व । तस्माद्वाचकत्वमेवेवादीनाम् । युक्तं चैतत् । अन्यथा सक-लालंकारिकसंमतस्येवशब्दप्रयोगे श्रोतीत्यस्य दत्तजलाञ्जलित्वापत्तेः । रूढिप्रयोज-नयोरन्यतरस्याभावेन चन्द्रादिपदेन चन्द्रसहशलक्षणायां निविद्धलाक्षणिकत्वरूप-नेयार्थत्वरूपदोषापत्तेश्व । अपिच इवादेर्योतकत्वनये चन्द्रादेरुपमानस्य पदार्थे-कदेशतया तत्र साधारणधर्मान्वयानुपपत्तिरिति दिक् ॥—उपमानेत्यादि ॥ उपमानत्वं चोपमानिरूपकत्वेन विवक्षितत्वं, तदाश्रयत्वेन विवक्षितत्वं चोपमेय-त्वम् । साधारणत्वं च धर्मस्वारसिकमौपचारिकं विम्वप्रतिविम्बभावकृतं श्लेपकृतं वस्तुप्रतिवस्तुभावेन समासभेदाश्रयणेनेत्यनेकथा चित्रमीमांसायां प्रपश्चितम् । तत्र स्वर्गङ्गावगाहनस्य तथात्वमौपचारिकं कीर्तौ तस्य स्वारिक त्वाभावात् । उपादानादिति वाचकस्योपादाननिर्देशः । इतरेषां तु शब्देन प्रतिपादनं तदिति चिन्तनीयम् ॥साधारण्यप्रकारविशेषोपदर्शनायोदाहरणान्तरमाह—यथावेति॥ गुणदोषाविति ॥ गुणदोषावर्थात्परस्य गृह्णन् जानन् बुधः पण्डितः पूर्वे पूर्वनि-र्दिष्टं गुणं शिरसा श्लाघते आन्दोलितेन शिरसाभिनन्दयति । परं परतो निर्दिष्टं दो-षं कण्ठे नियच्छति निरुणिद । वाचा कण्ठाद्वहिर्नोद्घाटयतीत्यर्थः । क इव । इन्दु-क्वेडौ चन्द्रगरले गृह्ण नुपाददान ईश्वरो हर इव । सोऽपि पूर्व चन्द्रं शिरसा श्ला-घते तत्पूर्वकं धारयति । परं च गरलं कण्ठे नियच्छति स्थापयतीति । 'क्ष्वेडस्तु गरलं विषम्' इत्यमरः ॥ शङ्कते-अत्र यद्यपीति ॥ साधारणस्तत्त्वेनाभिमतो धर्मः 'गृह्णम् शिरसा श्लाघते पूर्वम्' इत्यादिनोक्तो यद्यपि नैको न साधारण इति योजना । गृह्णित्यादिनोक्त एकोऽपि धर्मः साधारणो नेति वा । यथाश्रुते साधा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

4

तयोर्भध्ये पूर्वस्य गुणस्य शिरसा श्राघनं शिरःकम्पेनाभिनन्दनसुत्तरस्य दो-पस्य कण्ठे नियमनं कण्ठादुपिर वाचानुद्धाटनियति भेदात् । तथापि चन्द्र-गरलयोर्गुणदोपयोश्च विम्वप्रतिविम्बभावेनाभेदादुपादानज्ञानादीनां गृह्णक्ति-त्येकशव्दोपादानेन भेदाध्यवसायाच साधारणधर्मतेति पूर्वस्माद्विशेषः । व-स्तुतो भिन्नयोरप्युपमानोपमेयधर्मयोः परस्परसादश्यादभिन्नयोः पृथगुपादा-नं विम्बप्रतिबिम्बभाव इत्यालंकारिकसमयः ॥ ६ ॥

# वर्ण्योपमानधर्माणाम्रपमावाचकस्य च । एकद्वित्र्यनुपादानैभिन्ना छप्तोपमाष्ट्रधा ॥ ७ ॥

रणस्य साधारणत्वाभावोक्तेरसङ्गतत्वापत्तेः । साधारण्याभावे हेतुरुपमान इत्यार-भय इति भेदादिखन्तेनोक्तः । समाधत्ते-तथापीति ॥ वस्तुगला साधारण्या-भावेऽपीलर्थः । चन्द्रगरलयोरिलादि यथाकमं चन्द्रगुणयोर्गरलदोषयोश्चेलर्थः । विम्बप्रतिविम्बभावेन प्रतीयमानसाद्ययोहपमानोपमेयधर्मयोभिन्नशब्दोपात्तत्व-रूपेणाभेदाध्यवसायात । एतच साधारणधर्मतेत्ययेतनेनान्वितम । ज्ञानादीत्यादिना शिरसा वहनाभिनन्दनयोः कण्ठस्थापनतद्वहिर्तुद्धाटनयोश्च संग्रहः । गृह्णत्रितीत्या-दिना च शिरसा श्वाघते, कण्ठे नियच्छतीत्यनयोः संग्रहः॥ अभेदाध्यवसाया-दिति ॥ अभेदस्याध्यवसायादाहार्यनिश्चयादित्यर्थः॥ साधारणधर्मतेतीति ॥ साधारणधर्मत्वाभिमानविषयतेतीत्यर्थः । पूर्वस्मात्पूर्वोदाहरणादिति विशेष इत्यन्व-यः। न चैवं साधर्म्यप्रतीत्युपपादनेति । वस्तुतस्तदभावात्कथसुपमालक्षणसमन्वय इति वाच्यम् । चमत्कार्विशेषप्रयोजकसाधारणत्वाध्यवसायविषयधर्मत्वस्यवोपमा-लक्षणत्वमित्यभिप्रायादिति । लोके विम्वप्रतिविम्बभावव्यपदेशस्य गगनजलाशया-दिगतचन्द्रादिविषयतया प्रसिद्धेः कथं प्रकृते तद्वचपदेश इलाशङ्कायामाह - वस्तु-त इत्यादि ॥ अभिन्नयोक्तथाध्यवसितयोः पृथगिति भिन्नशब्देनेत्यर्थः ॥ विम्वप्र-तिविम्बभाव इति ॥ विम्बप्रतिबिम्बभावपद्वाच्यमित्यर्थः । समय इति । स-क्केत इत्यर्थः ॥ ६ ॥ पूर्णायामुपमानादिसमग्रतानियमप्रसिद्धेस्तद्विपरीतायां छप्तोप-मायां सर्वलोपनियमाशङ्कानिरासाय लक्षणपूर्वकं तां विभजते - वर्ण्यत्यादि-ना ॥ चकारो वाशब्दार्थे। तदनन्तरं च लोपे इलध्याहार्यम् । एवं चेतरेतरयो-गाविवक्षया, वर्ण्यस्योपमानस्य धर्मस्योपमावाचकस्य वा लोपेऽन्यतमानुपादाने छप्तोपमा । सा च एकद्विज्यनुपादानैरष्ट्या भिन्नेति पूर्वापराभ्यामुक्तं भवति । त-डिदिलायुदाहरणान्यर्थतो व्याचष्टे—उपमेयादीनामिति॥ वस्तुतो लाघवात्पु-र्णाभिन्नत्वं लक्षणं वोध्यम् । लक्षणवाक्यगतं क्रममुपेक्ष्योदाहरणक्रमानुसारेण वि-मागं दर्शयति - यथेत्यादि ॥ वाचकलुप्तेति ॥ वाचकत्वं चात्रानुपूर्वीविशे-षवत्तयोपमाबोधने निरूढत्वम् । तच शक्तया निरूढलक्षणया वा । तत्राद्यमिवा-देर्द्वितीयं तु सुहत्पदादेरिति । तदभावात्तिडिहोरीत्यादौ वाचकलोपः । समासानु-

१ 'दानाद्भित्रा'.

ति द्वीरीन्दुतुल्यास्या कर्पूरन्ती दशोर्मम । कान्त्या सरवध्यम्ती दृष्टा तन्वी रहो मया ॥ ८ ॥ यत्त्या मेलनं तत्र लाभो मे यश्च तंद्रतेः । तदेतत्काकतालीयमवितिर्कतसंभवम् ॥ ९ ॥

उपसेयादीनां चतुणीं सध्ये एकस्य द्वयोखयाणां वा प्रतिपादकशब्दाभावेन छप्तोपमेत्युच्यते । सा चाष्टधा । यथा—वाचकछप्ता १, धर्मछुप्ता २, वर्मवाचकछप्ता ३, वाचकोपमेयछप्ता ४, उपमानछप्ता ५, वाचकोपमानछप्ता ६, धर्मोपमानछप्ता ७, घर्मोपमानवाचकछप्ता च ८ इति । तत्रोपमानछोपरिहता- अत्वारो भेदास्तिहिहोरीत्यादिश्लोकेन प्रदर्शिताः । तद्वन्तो भेदा उत्तरश्लोकेन द्शिताः । तत्र तिहहोरीत्यत्र वाचकछोपस्तिहिव गौरीत्यर्थे 'उपमानानि सामान्यवचनैः' इति समासविधायकशास्त्रकृतः । इन्दुतृत्यासेत्यत्र धर्मछोपः स त्वैच्छिको न शास्त्रकृतः । कान्त्या इन्दुतृत्यासेत्यपि वक्तं शक्यत्वात् । कर्षूरन्तीत्यत्र धर्मवाचकछोपः । कर्पूरमिवाचरन्तीत्यर्थे विहितस्य कर्पूरवदानन्दात्मकाचारार्थकस्य किप इवशब्देन सह छोपात् । अत्र धर्मछोप ऐन्चिछकः । नयनयोरानन्दात्मकत्या कर्पूरन्तीति तदुपादानस्यापि संभवादिति ।

शासनेन निरूढलक्षणावगमेऽप्यानुपूर्वीविशेषवत्तया शब्दविशेषस्य तद्वोधना-त् ॥ शास्त्रकृत इति ॥ शास्त्रप्रयुक्त इत्यर्थः ॥ कर्परन्तीत्यत्रेति ॥ अत्र 'स-र्वप्रातिपदिकेभ्यः किञ्वा वक्तव्यः' इत्यनेन विहितः किपू छप्तोऽपि स्मर्यमाणो धर्ममात्ररूपमाचारं वोधयति । कर्पूरपदं च लक्षणया कर्पूरसादर्यम् । तस्य चाति-रिक्तत्वे पूर्ववतप्रयोजकतासंसर्गेणाचारेऽन्वयो धर्मरूपत्वे त्वभेदेन । वस्तुतस्त क्षिच्लोपाप्रतिसन्धानेऽपि तथा बोधात्कपूरादिशब्दा एव कपूरादिसादस्यप्रयो-जकाभित्रं तत्सादर्याभित्रं वाचारं लक्षयन्तीति युक्तम् । ननु वाचकस्येवादेरनु-पादानाहोपो युक्तः साधारणधर्मस्य त्वाचाररूपस्य क्रिबुपात्ततया कथं छोपस्तत्राह ---कर्परवदानन्दात्मकाचारार्थस्य किप इति ॥ कर्परसेवेतीवार्थे वतिः । ञ्जानन्दात्मको जनकतासंबन्धेन । वस्तुगला आनन्दस्वरूपो य आचारस्तद्वोधकस्ये -्र्यर्थः । ननु क्रिच्लोपाज्ञानेऽप्याचारप्रतीतेः कर्पूरादिपदानामेव तद्बोधकत्वपक्षे कथं = अमेलोपः संगमनीय इति चेत्। अत्र प्राञ्चः। एवमपि तद्वाचकतया विहितस्य कि-ाो लोपात्तल्लोपव्यपदेशः। अत एवात्र समानार्थकः क्यच् नोपात्तस्तस्यालुप्तत्वादि-<u>च्याहुः। नव्यास्तु धर्ममात्ररूपस्याचारस्योपादानेऽप्यानन्दत्वादिना विशेषरूपेणानु-</u> 🖃 ादानाद्धर्मलोपो युक्त एव। अन्यथा इन्दुतुल्यास्येलादेधर्मर्छप्तोदाहरणस्यासङ्गत-वापत्तेः । न चैवं क्यजादाविष धर्मछप्ता स्वादिति वाच्यम् । इष्टापत्तेरित्वाहुः ॥

कान्त्या स्मरवध्यन्तीत्यत्र वाचकोपमेयलोपः । अत्र कान्त्येति विशेषणसामध्यात्स्वात्मानं कामवधूमिवाचरन्तीत्यर्थस्य गम्यमानत्या स्वात्मन उपमेयस्य
सहोपमावाचकेनानुपादानात्स त्वैच्छिकः। स्वात्मानं स्मरवधूयन्तीत्युपमेयोपादानस्यापि संभवात् । काकतालीयमित्यत्र काकतालश्चद्दौ वृत्तिविषये काकतालसमवेतिकयावितेनो तेन काकागमनिमव तालपतनिमव काकतालिमतीवार्थे 'समासाच तद्विषयात्' इति ज्ञापकात्समासः । उभयत्रोपमेयं स्वस्य
क्रिवद्गमनं तत्रेव रहिस तन्व्या अवस्थानं च । तेन स्वस्य तस्याश्च समागमः
काकतालसमागमसदश इति फलति । ततः काकतालिमव काकतालीयिमिति
द्वितीयस्मित्रवार्थे 'समासाच तद्विषयात्' इति सूत्रेण 'इवे प्रतिकृतौ' इत्यधिकारस्थेन छप्रत्ययः । तथाच पतनदिलतं तालफलं यथा काकेनोपभुक्तमेवं
रहोदर्शनक्षुभितहृद्या तन्वी स्वेनोपभुक्तित तदर्थः । ततश्चात्र काकागमनतालपतनसमागमरूपस्य काककृततालफलोपभोगरूपस्य चोपमानस्यानुपादा-

स्मरवध्यन्तीत्यत्रेति ॥ ननु 'उपमानादाचारे' इति कर्मभूतादुपमानादाचारे क्यचो विधानात्सारवधूं रतिमिवाचरन्तीत्यवगमेऽप्यात्मानमन्यां वेति कथं निर्ण-यस्तत्राह-विशेषणेति ॥ रखनुरूपाचरणस्य कान्तिकरणकत्वरूपविशेषणसा-मर्थ्यादित्यर्थः । कान्तेः खरसतः खीयत्वावगमादिति भावः । न चात्मन उपमेयस्य तन्वीपदेनोपादानात्कथं लोप इति वाच्यम् । तस्या द्वितीयान्ततया कर्मभूतोपमे-यासमर्पकत्वादात्मानमित्यध्याहतेनैव तद्वोधात् । अत्रच स्मरवधूपदेन स्मरवधू-सादृश्यं लक्ष्यते । तस्य च प्रयोजकत्वसंसर्गेणाभेदेन वाचारेऽन्वयः। तथाच स्मर-वधूसाद्द्याभिन्न आत्मकर्मको य आचारस्तदाश्रयस्तन्वीति वोधः ॥काकताली-येति ॥ वृत्तिविषये समासविषये ॥ ज्ञापकादिति ॥ इवार्थे समासाभावे तद्वि-षयादित्यनेनेवार्थविषयसमासानुवादोऽनुपपन्नस्तज्ज्ञापक इत्यर्थः । उभयत्र काका-गमनतालपतनयोः । उपमेयमिल्यनन्तरं क्रमेणेति शेषः ॥ तेनेति ॥ काकताल-समवेतिकयापरयोः काकतालपदयोरिवार्थे समासेनेत्यर्थः । काकतालसमागमेति॥ अयं भावः । काकागमनतालपतनयोरूपमानत्वे तदुपमेययोः स्त्रीयगमनतन्व्यव-स्थानयोः पृथगनुपात्तत्वेनोपमेयतयान्वयायोगात्काकतालसमागम एवोपमानम्। इत्थंच काकतालसमागमसदशं काकतालपदार्थस्तस्य चाभेदेन खीयतन्वीसमाग-मरूप उपमेयेऽन्वय इति ॥ तत इति ॥ तादशसमासोत्तरमित्यर्थः ॥ इति तदर्थ इति ॥ काकतालपदलक्षितस्य काककृततालफलोपभोगसदशस्याभेदेन तन्वीरतिलाभरूपेणोपमेयेनान्वयादिति भावः । अत्र पतनदलितमिति रहोदर्शन-क्षुभितहृदयेति च विम्बप्रतिविम्बभावापत्रधर्मस्वरूपकथनं नत्वेवमन्वयाकार इति वोध्यम् । नच सकृदुचारिताभ्यां काकतालपदाभ्यां कथमुपमानद्वयावगम इति वाच्यम् । अनुभवानुसार्यनुशासनेन व्युत्पत्तिवैचित्र्यस्य स्फुटं प्रतिपत्तेरिति॥एवं दुरूहत्वात्पद्यं व्याख्याय तत्रोपमानलुप्तादींश्चतुरोऽपि भेदान्प्रदर्शयितुमाह-तत-श्चेति ॥ काकागमनेत्यादि ॥ काकागमनतालपतनरूपो यः समागमस्तद्रूप- नात्प्रत्ययार्थोपमायामुपमानलोपः । समासार्थोपमायां वाचकोपमानलोपः । सर्वोऽप्ययं लोपर्छप्रत्ययविधायकशास्त्रकृतः । अवितर्कितसंभविमिति साधा-रणधर्मस्यानुपादाने प्रत्ययार्थोपमायां धर्मोपमानलोपः । समासार्थोपमायां धर्मोपमानवाचकलोप इति स्क्ष्मया दृष्ट्यावधारितव्यम् । एतेपामुदाहर-णान्तराणि विस्तरभयान्न लिख्यन्ते ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

अनन्वयालंकारः २

उपमानोपमेयत्वं यदेकस्यैव वस्तुनः । इन्दुरिन्दुरिव श्रीमानित्यादौ तदनन्वयः ॥ १०॥ एकस्येव वस्तुन उपमानोपमेयत्ववर्णनमनन्वयः । वर्ण्यमानमि स्वस्य

स्येखर्थः । इदंच काकागमनिमव तालपतनिमविति महाभाष्यगतिवयहवाक्यवि-रोधश्रङ्कापिरहारायोक्तम् । समागमस्य तादशिक्रयाद्वयाभिन्नत्वेनोक्तयुक्तया तस्योक्तार्थं एव पर्यवसानात् । विशिष्टोपमायां विशेषणोपमावगतिवत्समागमोपमा-यामि तद्वयविक्रययोर्थथायोगं गम्यमानामुपमामिभिष्रेल्य महाभाष्यकृतां तादशिवयहवाक्यप्रणयनिम्लाशयः ॥ धर्मस्यानुपादान इति ॥ तत्स्थाने 'अभवतिंक व्रवीमि ते' इति पाठ इति भावः ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्तत्सदुपाख्यरामभद्दसूरिवरात्मजवैद्यनाथविरचितायामलंकारचन्द्रि-काख्यायां कुवलयानन्दव्याख्यायामुपमाप्रकरणं संपूर्णम् ॥ १ ॥

यद्यप्युपमाननिरूपणानन्तरं तन्मूलालंकारेषु संभवत्साद्दयोपमेयोपमैव प्रथमं निरूपियतुमुचिता न त्वारोपितसाद्दयनिवन्धनोऽनन्वयस्तथापि तं द्वितीयसद्श-व्यवच्छेदफलकतया तृतीयसदशव्यवच्छेदफलिकामुपमेयोपमामपेक्य शीघ्रोपस्थि-तिकमभिप्रेल प्रथमं निरूपयति — उपमानोपमेयत्वमिति॥ उपमानत्वमुपमे-यत्वं चेत्यर्थः । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात् । विवक्ष्यत इति च शेषः । एवं चैकस्यैव वस्तुनो यदुपमानत्वमुपमेयत्वं च विवक्ष्यते तदनन्वय इत्यन्वयः । असंभवशङ्कानि-रासाय मध्ये उदाहरणोक्तिः । ननूक्तलक्षणस्य 'भणितिरिव मतिर्मतिरिव चेष्टा' इलादिरशनोपमायामतिव्याप्तिः । तत्र मलादेरेकस्येव वस्तुन उपमानत्वस्योपमेय-त्वस्य च वर्णनात् । अथैकस्य वस्तुनो यदेकनिरूपितमुपमानत्वमुपमेयत्वं चेति विवक्षितमेकपदस्यावृत्तिकल्पनात् । इत्थंच रशनोपमायां मलादेश्वेष्टादिनिरूपि-तमुपमानत्वं भणित्यादिनिरूपितं तूपमेयत्वमित्येकनिरूपितोपमानोपमेयत्वविर-हानातिव्याप्तिरित्युच्यते । तदा 'खमिव जलं जलमिव खम्' इत्युपमेयोपमाया-मतिब्याप्तिः। तत्रैकस्यैव वस्तुनो गगनस्यैकजलनिरूपितस्योपमानत्वस्योपमेयत्वस्य च वर्णनादिति चेन्मैवम् । एकस्यैवेति विरोधद्योतकैवकारबलेन स्वाश्रयनिरूपित-योरुपमानोपमेयत्वयोर्लाभेन काप्यतिप्रसङ्गाभावात् । अस्ति हि 'इन्दुरिन्दुरिव' इल्पनन्वये उपमानत्वमुपमेयत्वं च खाश्रयेन्दुनिरूपितं नतु रशनोपमायामुपमेयो-पमायां वेति संक्षेपः । अनन्वयपदप्रवृत्तिनिमित्तमाह-वर्ण्यमानमपीति ॥

स्वेन स्वाधम्यं नान्वेतीति च्युत्पत्तेः । अनन्वयिनोऽप्यर्थस्याभिधानं सदशा-न्तरच्यवच्छेदेनानुपमत्वद्योतनाय । इन्दुरिन्दुरिव श्रीमानित्युक्ते श्रीमत्त्वेन चन्द्रस्य नान्यः सदशोऽस्तीति सदशान्तरच्यवच्छेदो लक्ष्यते । ततश्च स्वेनापि सादद्यासंभवादनुपमेयत्वे पर्यवसानम् ॥ यथावा—

> गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः । रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥

पूर्वोदाहरणे श्रीमत्त्वस्य धर्मस्योपादानमस्ति । इह तु गगनादिषु वैपुल्या-देर्धर्मस्य तन्नास्तीति विशेषः ॥ १० ॥

# उपमेयोपमा ३ पर्यायेण द्वयोस्तचेदुपमेयोपमा मता। धर्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीरथीं धर्म इव त्विय ॥ ११॥

नान्वेतीति॥न संबध्यत इस्रथः। साधम्यस्य भेदघटितत्वादिति भावः। नन्वेवं सस्यसंबद्धप्रलापत्वापत्तिरिस्यत आह—अनन्वियनोऽपीति॥ वाधितस्यापीन्स्रथः। अर्थस्य साधम्यस्य अभिधानमाहार्यारोपरूपतया प्रतिपादनं सहशान्तर्व्यावृत्तिबोधद्वारेण। एतदेव विश्वदयति—इन्दुरित्या-दिना॥ इत्थंच सहशान्तरत्यावृत्तिबोधद्वारेण। एतदेव विश्वदयति—इन्दुरित्या-पिता॥ इत्थंच सहशान्तरत्यावृत्तिसूचनद्वारानुपमत्वद्योतनरूपप्रयोजनवत्त्वादा-पाततो रुद्ररोदनार्थवादवद्वारमात्रतया साहश्यप्रतिपादनेऽपि नासंबद्धप्रलापता-पत्तिरिति भावः। उदाहरणान्तरमाह—यथावेति।गगनाकारं गगनसदशम्। इवेत्यतः प्राक् युद्धमित्यध्याहार्यम्। उदाहरणान्तरप्रदर्शने वीजमाह—पूर्वोदा-हरणेति॥ वेपुल्यादेरित्यादिपदाद्वाम्भीर्यदारुणत्वयोः संप्रहः ॥१०॥ इत्यनन्वयालंकारप्रकरणम् ॥ २॥

अथोपमेयोपमां लक्षयति—पर्यायेणेति ॥ अयौगपयेनेत्यर्थः । वाक्यभेदेनेति यावत् । तत् उपमानोपमेयत्वं विवक्ष्यत इति शेषोऽत्रापि वोध्यः । उपमेन्योपमेति लक्ष्यनिर्देशः । उपमेयेनोपमेति न्युत्पत्तः । धर्मोऽर्थ इवेत्युदाहरणम् । अर्थो धनम्। पूर्णश्रीः पूर्णसमृद्धिः । अत्र च धर्मार्थयोर्द्वयोर्वाक्यभेदेनोपमानत्वमुप्मेयत्वं च वर्णितम् । तत्राद्यवाक्येऽर्थस्योपमानत्वं धर्मस्योपमेयत्वम् । द्वितीये तु तद्विपर्यासेन धर्मस्योपमानत्वमर्थस्योपमेयत्विमिति लक्षणसमन्वयः । उपमानोपमे-यत्वमात्रोक्तावनन्वयेऽतिन्याप्तर्द्वयोरित्युक्तम् । एवमि (समत्वं शरिद प्रापुरहो कुमुदतारकाः' इत्युभयविश्रान्तसादृश्यामुपयामायामित्व्याप्तिः । तत्र द्वयोः कुमुद्रतारकयोः सादृश्याश्रयत्वरूपोपमेयत्वस्येव तत्प्रतियोगित्वरूपस्योपमानत्वस्याप्यर्थतः प्रतीतेरतः पर्यायेणेत्युक्तम् । ननु 'भणितिरिव मतिमितिरिव चेष्टा चेष्टेव कीर्तिरिविमला' इति रशनोपमायामितिन्याप्तिः । तत्र द्वयोमितिचेष्टयोर्वाक्यभेदेनोपमानोपमेयत्ववर्णनादिति चेन्न । द्वयोरित्यनेन परस्परमुपमानोपमेयत्वस्य विवक्षितत्वात् । अन्यथा पर्यायपदेनैवानन्वयवार्णे तद्वैयर्थापत्तेरिति संक्षेपः ॥

द्वयोः पर्यायेणोपमानोपमेयत्वकल्पनं तृतीयसदशब्यवच्छेदार्थम् । धर्मा-थयोः कस्यचित्केनचित्सादृश्ये वर्णिते तस्याप्यन्येन सादृश्यमर्थसिद्धमिष मु-खतो वर्ण्यमानं तृतीयसदृशब्यवच्छेदं फलति ॥ यथावा—

खिमव जलं जलिमव खं हंस इव चन्द्रश्चन्द्र इव हंसः। कुमुदाकारास्तारास्ताराकाराणि कुमुदानि॥

पूर्वत्र पूर्णश्रीरिति धर्म उपात्तः । इह निर्मल्यादिधर्मो नोपात्त इति भेदः । उदाहरणद्वयेऽपि प्रकृतयोरेवोपमानोपमेयत्वकल्पनम् । राज्ञि धर्मार्थसमृद्धेः शरिद गगनसिल्लादिनैमेल्यस्य च वर्णनीयत्वात् । प्रकृताप्रकृतयोर्प्येपा संभवति ॥ यथा—

गिरिरिव गजराजोऽयं गजराज इवोचकैविभाति गिरिः। निर्झर इव मद्धारा मद्धारेवास्य निर्झरः स्रवति॥ ३१॥

प्रतीपालंकारः ४

प्रतीपम्रुपमानस्थोपमेयत्वप्रकल्पनम् । त्वह्योचनसमं पद्मं त्वद्वऋसदृशो विधुः ॥ १२ ॥

प्रसिद्धोपमानोपमेयभावप्रातिलोम्यात्प्रतीपम् । यथावा—

ननूपमाप्रतीपोभयरूपाया उपमाद्वयरूपाया वा उपमेयोपमाया अलंकारान्तरत्वे किं बीजमित्यत आह — द्वयोरिति ॥ तथा चार्थविशेषद्योतकतया चमत्कृति-वैलक्षण्यमेव तत्र बीजमिति भावः । कथं तृतीयसदशव्यवच्छेदलाभस्तत्राह—धर्मार्थयोरिति ॥ धर्मार्थयोर्मित् भावः । क्वतः शब्देन । तथाच प्राप्तस्य पुनर्वचनं तदितरपरिसंख्यार्थमिति न्यायादिहापि तृतीयसदशव्यादृत्तिलाभ इति भावः ॥ खमिवेति ॥ शरद्वर्णनिमदम् । खमाकाशमिव जलं कालुष्यापगमेन निर्मलत्वातिशयात् । शेषं स्पष्टम् । निर्मलत्वादीत्यादिपदेन शैत्यातिशयपरिप्रहः ॥ गिरिरिवेति ॥ अत्र गजः प्रकृतः । अयमिति प्रकृतपरामार्शसर्वनामनिर्दिष्ट-त्वात् । अत एवोपक्रमादयेऽप्यस्य मद्धारेत्यन्वयो बोध्यः । अत्र पूर्वार्धे उच्च-किंवभातीति समानधर्मे उपात्तः । उत्तरार्धे च स्रवतीति स उक्त इति दिक् ॥ इत्युपमेयोपमाप्रकरणम् ॥ ३ ॥

प्रतीपमिति ॥ प्रतीपमिति लक्ष्यिनिर्देशः । नन्पमानोपमेयभावस्य वैविक्षक-तया मुखादेरप्युपमानत्वसंभवाचन्द्र इव मुखमित्युपमायामितव्याप्तिरित्यत आह —प्रसिद्धेति ॥ प्रतिद्धोपमानस्योपमेयभाव उपमेयत्वं प्रतीपं प्रतीपपदवाच्यम् । कुतः । प्रातिलोम्यात्प्रसिद्धोपमानप्रतिकूलत्वात् । उपमेयभावप्रातिलोम्यादित्यवि-सर्गपाठेऽपि प्रसिद्धोपमानस्य य उपमेयभावस्तस्य प्रातिलोम्यादुपमानप्रतिकूलत्वा-दुपमानस्योपमेयत्वकल्पनं प्रतीपमित्युच्यत इति व्याख्येयम्। नतु प्रसिद्धस्योपमा-

१ 'मानस्याप्युपमेयत्व'.

यस्वन्नेत्रसमानकान्ति सिलले मझं तिद्नदीवरं मेघरन्तरितः त्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी। येऽपि त्वद्रमनानुसारिगतयस्ते राजहंसा गता-स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे देवेन न क्षम्यते॥ १२॥

अन्योपमेयलाभेन वैर्ण्यस्यानादरश्च तत्। अलं गर्वेण ते वक्र कान्त्या चैन्द्रोऽपि ताद्यः॥१३॥

अत्युत्कृष्टगुणतया वर्ण्यमानस्यान्यत्र स्वसाद्दश्यमसहमानस्योपमेयं किंचि-त्प्रदृश्यं तावता तस्य तिरस्कारो द्वितीयं प्रतीपं पूर्वस्मादिष विच्छित्तिविशे-पशाि । यथावा—

> गर्वमसंवाद्यमिमं लोचनयुगुलेन किं वहसि भद्ने । सन्तीदशानि दिशि दिशि सरस्सु ननु नीलनलिनानि ॥ १३ ॥

नोपमेयभावस्य वेपरीत्यादिति यथाश्रुतरीत्यैवविधप्रातिलोम्यस्य तृतीयपञ्चमप्रती-पभेदाव्यापित्वेन प्रतीपपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वायोगादिति । एवं चोक्तप्रकारेणोपमान-प्रातिकृल्यस्य प्रतीपपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वकथनेन प्रसिद्धोपमानप्रतिकृलधर्मः प्रतीप-मिति प्रतीपपञ्चकसाधारणं सामान्यलक्षणमिति सूचितम् । अतएव पञ्चमप्रती-पव्याख्यानावसरे वक्ष्यति । उपमानप्रातिलोम्यादिति । प्रतिकृलत्वं च तिरस्का-रप्रयोजकत्वम् । एतस्य च सकलप्रतीपभेदसाधारण्यं तत्र तत्र स्फूटीकरिष्यते —यथावेति ॥ प्रोषितस्य प्रियां प्रति वियोगवेदनानिवेदनमिदम् । अथि प्रिये, त्वदीयसादर्येन विनोदनं विनोदो विरहयापनं तन्मात्रमपि मम दैवेन न क्षम्य-ते ॥ एतदेव दर्शयति -यदित्यादिना ॥ त्वनेत्रयोः समाना साधारणी का-न्तिः शोभा यस्य तथाविधं यदिन्दीवरं तत्सिछिछे मम्म । वर्षर्तुना जलवृद्धेः । तव मुखस्य च्छायया कान्त्या अनुकारी सदृशः शशी मेघेरन्तरितस्तिरोहितः। येऽपीलपिभिन्नकमः । त्वद्गमनसद्शगतयो ये राजहंसास्तेऽपि गता इति । अत्र कान्तीत्यादिधर्मोपादानात्पूर्वोदाहरणवैलक्षण्यं वोध्यम् । ननूपमानादुपमेयस्या-धिक्यवर्णनारूपाद्वचितरेकालंकारादस्य को भेदः । उच्यते । तत्र वैधर्म्यप्रयुक्त-मुपमेयस्याधिक्यं विवक्षितमिह तूपमानतामात्रप्रयुक्तत्वात्साधर्म्यप्रयुक्तमिति ॥१२॥ प्रतीपान्तरमाह—अन्योपमेयेति ॥ अन्यदवर्ण्यमुपमानं तद्रुपं यदुप-मेयं तस्य लाभेन वर्णनीयस्य मुखादेरनादरो गर्वपरिहारोऽपि तत्प्रतीपमित्यर्थः। तस्य गर्वप्रसक्तिपूर्वकत्वेनोपमेयताया अपि पूर्वमप्राप्त्योपमानतिरस्कृतिविशेषप्र-योजकत्वादिति भावः । अतएव लाभेनेत्युक्तं न तु सत्त्वेनेति । अप्राप्तप्राप्तिर्ला-भशब्दार्थत्वात् ॥ विच्छित्तिविशेषेति ॥ चमत्कारोत्कर्षः इत्यर्थः । उक्तरी-त्योपमानितरस्कारातिशयप्रतीतेरिति भावः ॥ गर्वमिति ॥ असंवाद्यं संवह-नायोग्यम् । अपरिमितमिति यावत् । भद्रे शोभने इति संबोधनम् । नन्विति

१ 'वर्णस्य'. २ 'चन्द्रो भवादृशः'.

वर्ण्यापमेयलाभेन तथान्यस्याप्यनादरः।
कः कौर्यदर्पस्ते मृत्यो त्वत्तुल्याः सन्ति हि स्त्रियः॥१४॥

अत्युत्कृष्टगुणतया कचिद्प्युपमानभावमसहमानस्यावण्यंस्य वण्यं सुपमेथं परिकल्प्य तावता तस्य तिरस्कारः । पूर्वप्रतीपवैपरीत्येन तृतीयं प्रतीपम् ॥ यथावा—

अहमेव गुरुः सुदारुणानामिति हालाहुल मास्म तात दृष्यः।
नतु सन्ति भवादशानि भूयो भुवनेऽस्मिन्वचनानि दुर्जनानाम्॥ १४॥
वैण्येनान्यस्योपमाया अनिष्पत्तिवचश्च तत्।
सुधापवादो सुग्धाक्षि त्वन्सुखाभं किलाम्बुजम्॥ १५॥

अवण्यें वण्योपिमत्यनिष्पत्तिवचनं पूर्वेभ्य उत्कर्पशास्त्रि चतुर्थे प्रतीपम् । उदाहरणे सुधापवादरवोक्तयोपिमत्यनिष्पत्तिरुद्धाटिता । यथावा—

आकर्णय सरोजाक्षि वचनीयमिदं सुवि । शशाङ्कस्तव बक्रेण पामरैरुपमीयते ॥ ५५ ॥ प्रतीपमुपमानस्य कैमर्थ्यमपि मन्वते ।

दृष्टं चेद्रदनं तस्याः किं पद्मेन किमिन्दुना ॥ १६॥

उपमेयस्यैवोपमानप्रयोजनधूर्वहत्वेनोपमानकैमर्थ्यमुपमानप्रातिलोम्यात्प-ज्जमं प्रतीपम् । यथावा—

हैत्वर्थे । अन्ययानामनेकार्थत्वात् । पूर्वोदाहरणे कान्स्येति समानधर्मोपादानमिह त नेति भेदः ॥१३॥ वर्ण्यापमेयेति ॥ अन्यस्य वर्ण्यस्य । अनादरोऽपि तथा । प्रतीपमित्यर्थः ॥ अहमेवेति॥ सुदारुणानामतितीवाणाम् । गुरुः श्रेष्टः । तातेति सानुकम्पसंबोधने । मास्म दृप्य इति । दुर्पे मा कृथा इल्यर्थः ॥ १४ ॥ वर्ण्येनान्यस्येति ॥ निरूपितत्वं तृतीयार्थः । वर्ण्यनिरूपिता यान्यस्यावर्ण्य-स्योपमा तस्या इत्यर्थः । अनिष्पत्तिवचः । उच्यमाना अनिष्पत्तिः । 'कृद्भिहि-ते' इति न्यायात् । तत्प्रतीपम् ॥ मधिति ॥ किलेति वार्तायाम् । त्वन्मुखाभ-सम्बजिमिति वार्ता मुधा निष्प्रयोजनोऽपवादः । अलीकार्थकत्वेनापवादस्य नि-ष्प्रयोजनत्वम् ॥ उत्कर्षेति ॥ उपमानतिरस्कारातिशयप्रयोजकत्वरूपेत्वर्थः ॥ मधापवादत्वोत्तयेति ॥ उक्तार्थमेतत्॥ आकर्णयेति॥वचनीयमठीकतया निन्दितम् । अतएव भुवीत्युक्तम् । लोकान्तरे मुखसंनिधानेन विशेषादर्शनाद-लीकत्वग्रहायोगात् । संनिधानेऽपि विशेषाग्रहणात्पामरेरित्युक्तम्। अत्र वचनीयं पामरैरिलेताभ्यामुपमितेरनिष्पत्तिः प्रकाइयते ॥१५॥ प्रतीपमिति ॥ कः अर्थः प्रयोजनं यस्य तत्तथा । अनर्थकमिति यावत् । तस्य भावः कैमर्थ्यं तदपि प्रतीपं मन्वते। आलंकारिका इति शेषः। ननुपमानस्य पद्मचन्द्रादेराहादविशेषहपप्रयो-जनसत्त्वात्कथमनर्थकत्वमत आह—उपमेयस्यैवेति ॥ उपमानधूर्वहत्वेनोप-

१ 'वण्योंपमानीप'. २ 'मिथ्यावादो हि मुग्धाक्षि'. ३ 'मन्यते'.

तदोजसस्तद्यशसः स्थिताविमो वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा । तनोति भानोः परिवेपकैतवात्तदा विधिः कुण्डलनां विधोरिप ॥

केचिदनन्वयोपमेयोपमाप्रतीपानामुपमाविशेषत्वेन तदन्तर्भावं मन्यन्ते । अन्ये तु पञ्चमं प्रतीपप्रकारमुपमानाक्षेपरूपत्वादाक्षेपालंकारमाहुः ॥ १६ ॥

मानकार्यकारित्वेन । अयं चोपमानकैमर्थ्यं हेतुः । अतश्चोपमानकैमर्थ्यमित्यध्या-हार्यम् । आह्वाद्विशेषादेरन्यलभ्यत्वेन प्रयोजनत्वासंभवात्कैमर्थ्यमिति भावः । उपमानप्रयोजकधूर्वहत्वेनेति पाठे उपमानं प्रयोजकं यस्या इति वहुवीहिः । ननु 'उ-पमानकैमर्थ्यस्योपमानाक्षेपश्चाक्षेपः' इति वामनसूत्रेणाक्षेपालंकारत्वेनोक्तत्वात्कथं प्रतीपत्वमतआह—उपमानप्रातिलोम्यादिति । उपमानप्रतिकूलत्वादित्य-र्थः । प्रतिकृलत्वं च तिरस्कारप्रयोजकत्वमित्युक्तम् । तथाच प्रतीपसामान्यल-क्षणाकान्तत्वात्प्रतीपान्तर्भाव एवोचित इति भावः ॥ तदोजस इति ॥ नैष-धीये नैषधवर्णनमिदम् । विधिर्वद्मा तस्य नलस्यौजसः प्रतापस्य तद्यशसश्च स्थितौ सलामिमौ सूर्यचन्द्रौ वृथा प्रतापज्योत्स्नादेः कार्यस्य ताभ्यामेवोपपत्ते-र्निरर्थकाविति चित्ते यदा यदा कुरुते तदा भानोर्विधोश्च परिवेषस्य परिधेः कै-तवाच्छलात्कुण्डलनां वैयर्थ्यसूचिकां रेखावेष्टनां करोतीलन्वयः । अत्रच नायं परिवेषः किंतु कुण्डलनेत्यपहुतौ कैमर्थ्यरूपप्रतीपस्याङ्गत्वात्तयोरङ्गाङ्गिभावलक्षणः संकरः । यग्रत्पापमित्यादिवच तत्पदे वीप्साया अकरणं न दोष इति बोध्यम । केचिद्दण्डीप्रसृतयः ॥ अनन्वयोपमाप्रतीपानामिति ॥ प्रतीपपदेन चात्रा-द्यभेदत्रयमेव गृह्यते न त्वन्त्यभेदद्वयमपि । तत्रोपमितिकियानिष्पत्तेरभावेनोप-मान्तर्भावस्यासंभवात् । वस्तुतस्त्वाद्यभेदत्रयस्यापि नोपमान्तर्गतिर्युक्ता । चम-त्कारं प्रति साधम्यस्य प्राधान्येनाप्रयोजकत्वात् । सामर्थ्यनिवन्धन उपमानित-रस्कार एव हि तत्र चमत्कृतिप्रयोजकतया विवक्षितो न तु साधर्म्यमेव मुखत-श्चमत्कारितया विवक्षितमिति सहृदयसाक्षिकम् । एवमनन्वयोपमेयोपमयोरिप न साद्यस्य चमत्कारितया प्राधान्येन विवक्षा किंतु द्वितीयतृतीयसद्शव्यवच्छे-दोपायतयेति न तयोरप्युपमान्तर्गतिर्युज्यते । अन्यथा सादद्यवर्णनमात्रेणोप-मान्तर्भावे 'धैर्यलावण्यगाम्भीर्यप्रमुखैस्त्वमुदन्वतः । गुणैस्तुल्योऽसि भेदस्त् वपुषेवेदशेन ते ॥' इति व्यतिरेकालंकारस्याप्युपमान्तर्गतिः स्यात् । तत्र साध-म्यसमानाधिकरणं वैधर्म्यमेव चमत्कारे प्रधानं न तु साधर्म्यमिति चेत्तत्यमिदं प्रतीपादिष्वपीति सहदयैराकलनीयम् । एतावदेवाखरसवीजमभिसंधायोक्तं के-चिदिति । अन्ये वामनादयः । अत्र चाखरसवीजं प्रागेवावेदितम् ॥ १६॥ इति प्रतीपप्रकरणम् ॥ ४ ॥

रूपकालंकारः ५

विषय्यभेदतांद्र्प्यरञ्जनं विषयस्य यत् । रूपकं तित्रधाधिक्यन्यूनत्वानुभयोक्तिभिः ॥ १७ ॥ अयं हि धूर्जिटिः साक्षाद्येन दग्धाः पुरः क्षणात् । अयमास्ते विना शम्भ्रस्तातींयीकं विलोचनम् ॥ १८ ॥ शम्भ्रविश्वमवत्यद्य स्वीकृत्य समदृष्टिताम् । अस्या मुखेन्दुना लब्धे नेत्रानन्दे किमिन्दुना ॥ १९॥

रूपकं लक्षयति--विषय्यभेदेति ॥ रूप्यते इतरव्यावृत्ततया ज्ञायते धर्मी अनेनेति रूपं तदूपमस्यासौ तदूपस्तस्य भावस्तादूप्यं चन्द्रकार्यकारित्वादि विष-यिण उपमानस्याभेदतादृष्याभ्यां विषयस्योपमेयस्य यद्रजनिमव रजनम् । स्रो-परक्तबुद्धिविषयीकरणमिति यावत् । तद्रृपकमित्यर्थः।रूपकं तदित्येव पाठः। रूपकं त्विति पाठे तु तदिलभ्याहार्यम् । उपात्तविम्वाविशिष्टविषयधर्मिकाहार्यारोपनि-. श्रयविषयीभूतमुपमानाभेदताद्र्प्यान्यतररूपकमिति तु निष्कर्षः। मुखं चन्द्र इत्या-दौ नामार्थयोरभेदान्वयब्युत्पत्तिवशादाहार्यचन्द्राभेदनिश्चयाह्रक्षणसमन्वयः मुखमपरश्चन्द्र इत्यत्र तु न चन्द्राभेदो विषयः । अपर इति भेदस्य विवक्षितत्वात्। अपितु चन्द्रकार्यकारित्वरूपं ताद्र्प्यमिति तत्रापि लक्षणसंगतिः । नच तस्य मुखे सत्वात्कथमारोप इति वाच्यम् । चन्द्रकार्यसजातीयकारित्वस्येव मुखे स-त्वादिति । यद्यपि नामार्थयोरभेदान्वयानुरोधादिहापि चन्द्रपदलक्षितस्य तत्कार्य-कारिणोऽभेदसंसर्गेणैव मुखेऽन्वयादभेदरूपकमेव । तथाप्युपमानतावच्छेदंकरू-पेणाभेदभाने एवाभेदहपकत्वं कार्यकारित्वादिरूपेणाभेदभाने तु ताद्रप्यरूपक-त्वमिति तात्पर्यम्। अत्र 'कमलमनम्भसि कमले च कुवलये तानि कनकलित-कायाम्' इत्याद्यतिशयोक्तिवारणायोपात्तेति विषयविशेषणम् । आरोपश्च निषेधा-नङ्गकत्वेन विशेषणीयः। तेनापह्नतौ नातिव्याप्तिः । भ्रान्तिवारणायाहार्येति । 'त्वत्पादनखरलानां यदलक्तकमार्जनम् । इदं श्रीखण्डलेपेन पाण्डुरीकरणं विधोः ॥' इति । निद्र्शनावारणाय विम्वाविशिष्टेति । संशयोत्प्रेक्षयोर्निरासाय निश्चयेत्युक्तमिति संक्षेपः ॥ आधिक्येत्यादि ॥ आधिक्यमुपमानस्य स्वाभा-विकीमवस्थामपेक्ष्योपमेयतादात्म्यावस्थायां बोध्यम् । एवं न्यूनत्वमपि । अनुभन यमाधिक्यन्यूनलोभयरहितमभेदताद्रृप्यान्यतरमात्रम्॥ अयं हीत्यादि ॥ अयं वर्ण्यमानो राजा येन हेतुना पुरो नगर्यः। शिवस्यापि त्रिपुरदग्धृत्वात्स एवायमि-मि भावः। तार्तीयीकमिति तृतीयमेव तार्तीयीकम् 'तीयादीकक्खार्थे वा वाच्यः' इति वार्तिकानुसारात् । विलोचनं विनेखन्वयः॥शाम्भुरिति ॥ अत्राप्ययमिख-नुषज्जनीयम् । अन्यथातिशयोक्तयापत्त्या रूपकोदाहरणत्वासङ्गतेः । अद्य राजभा-

१ 'ताद्र्प्यं'.

कुवलयानन्दः।

[ रूपकालंकारः ५

## साध्वीयमपरा लक्ष्मीरसुधासाँगरोदिता । अयं कलङ्किनश्रन्द्रान्मुखचन्द्रोऽतिरिच्यते ॥ २०॥

विषय्युपमानभूतं पद्मादि विषयस्तदुपमेयं वर्णनीयं मुखादि विषयिणो रूपेण विषयस्य रक्षनं रूपकम् । अन्यरूपेण रूपवतः करणात्तच कचित्प्रसिद्धः-विषय्यभेदपर्यवसितं कचिद्भेदे प्रतीयमान एव तदीयधर्मारोपमात्रपर्यवसि-तम् । ततश्च रूपकं तावद्विविधम् । अभेदरूपकं तादूप्यरूपकं चेति । द्विवि-धमपि प्रत्येकं त्रिविधम् । प्रसिद्धविषय्याधिक्यवर्णनेन न्यूनत्ववर्णने-नानुभयोत्तया चैवं रूपकं पिड्डिधम् । अयं हीत्यादिसार्धश्चोकेनाभेदरूपकाणि अस्या मुखेन्दुनेत्यादिसार्धश्चोकेन ताद्रप्यरूपकाणि । आधिक्यन्यूनत्वानुभयो-त्तयुद्देशकमप्रातिलोम्येनोदाहतानि।येन दग्धा इति विशेषणेन वर्णनीये राज्ञि प्रसिद्धशिवाभेदानुरञ्जनान्छिवस्य पूर्वावस्थातो वर्णनीयराजभावावस्थायां

वावस्थायां समदृष्टितां समसंख्यलोचनतामेकरूपलोचनवत्तां च । मुखेन्द्नेति । अत्रेन्दुपदमिन्दुकार्यकारिपरम् । किमिन्दुनेति प्रसिद्धचन्द्राद्भेदविवक्षणात् । अत-श्चन्द्रताद्र्यरूपकमिदम् । न चात्रोत्तरपदार्थप्राधान्यादिन्दुकार्यकारिणि मुखाभेद-भानान्मुखाभेदरूपकं स्यात्र तु चन्द्रताद्रूप्यरूपकमिति वाच्यम् । व्युत्पत्तिवैचि-च्येण मुखस्य स्वनिष्ठाभेदप्रतियोगित्वसंसर्गेणान्वयाभ्युपगमाद्विशेषणानुयोगिक-स्यापि विशेषणसंबन्धतायाः स्वामित्वस्य षष्ट्यर्थत्ववादिभिः प्राचीनैश्वेत्रस्य धनमि-त्यादावङ्गीकारात्। एवंच मुखनिष्ठाभेदप्रतियोगी चन्द्रसत्कार्यकारी वेति बोधान मुखाभेदरूपकापत्तिर्मुखप्रतियोगिकाभेदस्याभानादित्येवमन्यत्राप्यूह्यम् ॥ असुधे-ति ॥ सुधासागरादुदितोत्पन्ना प्रसिद्धा लक्ष्मीरियं तु न तथेति न्यूनत्वोक्तिः ॥ अतिरिच्यत इति ॥ निष्कलङ्कतया अधिको भवतीत्वर्थः॥ लक्षणश्लोकं व्याच-हे-विषय्युपमानेत्यादि ॥ विषयिणो ८ भेदेन रूपेण चेति पाठः । रूपेण आहाद-कत्वादिना ताद्रूप्येण । क्रचित्ताद्रूप्येण चेलेव पाठः । परमार्थतस्तु प्रामाणिकपुस्त-केषु विषयिणो रूपेण विषयस्य रजनिमिति युक्ततरः पाठः । तेन तचेत्यादेर्न पौनरु-क्लामिति ध्येयम्। हरिद्रादिना पटादिरञ्जने प्रयुक्तला रजनशब्दस्येह प्रवृत्तौ वीज-माह--अन्यरूपेणेति ॥ रूपं रक्तपीतादिकम् । अभेदताद्रप्ये च तथा चान्यदी-यधर्मेणान्यस्य तद्वत्तासंपादनत्वसामान्यादिह गौणरञ्जनशब्दप्रयोग इति भावः ॥ तचेति ॥ रजनं चेलर्थः ॥ प्रसिद्धेति ॥ कविसंप्रदायप्रसिद्धोपमानाभेदेन लब्धा-त्मकमिल्यर्थः । रूपपद्स्याभेदताद्रूप्योभयसाधारणत्वादिति भावः । अभेदेन रूपेण चेति पाठे तु तचेत्यत्र चशब्दो हेत्वर्थकः । तेन पूर्वोक्तस्यैव समर्थनमिति न पौन-रुक्त्यम् । तावद्विधान्तरोक्तेः प्रागुद्देशकमप्रातिलोम्येनेति । निर्देशकमवैपरीलेने-त्यर्थः । एतदेव विशद्यति - येनेत्यादि ॥ विशेषणेनेति हेतौ तृतीया । पुरदग्र-त्वविशेषणहेतुकशिवाभेदानुरञ्जनादित्यर्थः । ननु न्यूनत्ववर्णने भेदापकर्षयोः प्र-

१ 'सागरोत्थिता'.

न्यूनत्वाधिक्ययोरवर्णनाचानुभयाभेद्रूपकमाद्यम् । तृतीयलोचनप्रहाणोक्त्या पूर्वावस्थातो न्यूनताप्रदर्शनाक्यूनाभेद्रू एकं द्वितीयम् । न्यूनत्ववर्णनमप्य-भेददार्ह्यापादकत्वाचमत्कारिविषयदृष्टित्वपरित्यागेन जगद्रक्षकत्वोक्त्या शिव-स्य पूर्वावस्थातो वर्णनीयराजभावावस्थायामुक्ष्मिवभावनाद्धिकाभेदरूपकं तृतीयम् । एवमुत्तरेषु तादूष्यरूपकोदाहरणेष्विप क्रमेणानुभयन्यूनाधिकभा-वा उन्नेयाः । अनेनैव क्रमेणोदाहरणान्तराणि—

> चन्द्रज्योत्स्नाविशदपुलिने सेकतेऽस्मिन्छरय्वा वाद्यूतं चिरतरमभृत्सिद्धयूनोः कयोश्चित् । एको वक्ति प्रथमनिहतं केटमं कंसमन्य-स्तत्वं सत्वं कथय भगवनको हतस्तत्र पूर्वम् ॥

अत्र स त्विमित्यनेन यः कंसकैटभयोईन्ता गरुडध्वजस्तत्तादात्म्यं वर्णनी-यस्य राज्ञः प्रतिपाद्य तं प्रति कंसकैटभवधयोः पौर्वापर्यप्रश्नब्याजेन तत्तादा-रम्यदार्ह्यकरणात्पूर्वावस्थात उत्कर्षापकर्षयोरविभावनाचानुभयाभेदरूपकम् ।

> वेधा द्वेधा असं चके कान्तासु कनकेषु च। तासु तेष्वण्यनासकः साक्षाद्वर्गो नराकृतिः॥

अत्र साक्षादिति विशेषणेन विरक्तस्य प्रसिद्धशिवतादात्स्यमुपदिश्य नरा-कृतिरिति दिव्यमूर्तिवैकल्यप्रतिपादनाक्यूनाभेदरूपकम् ।

तीतेः कथं चमत्कारितेत्यत आह—अभेददार्ढ्यापादकत्वादिति ॥ विशेष-निषेधस्य शेषाभ्यनुज्ञानफलकतया निषिद्धव्यतिरिक्तसकलगुणशालिताप्रतीतौ 'ए-कदेशविकृतमनन्यवद्भवति' इति न्यायेनाभेदनिश्चयसंपादकत्वादित्यर्थः । विभाव-नात्प्रकाशनात् ॥ चन्द्रज्योत्स्त्रोति ॥ राजानं प्रति कस्यचिदुक्तिः । हेभगवन्, चन्द्रज्योत्स्रावद्विशदं श्वेतं पुलिनं यस्य तथाभृतेऽस्मिन् शरय्वाः शरयूनामकनद्याः सैकते सिकतामयदेशे कयोश्वित्सद्धतरूणयोश्विरतरमतिचिरकालं वादरूपं यूतमभू-त्। कीदकतत्राह । एकः सिद्धुवा कैटमं दैल्यविशेषं प्रथमं निहतं वक्ति वदति, अन्यः कंसं प्रथमं निहतं वक्ति स कंसकैटभयोईन्ता त्वं तत्र तयोर्मध्ये पूर्वे को हत इति तत्त्वं कथयेखन्वयः । यद्यपि मुनिप्रभृतावेव भगवित्रसामन्त्रणमुचितं न राजादौ तथापि राज्ञो भगवत्तादात्म्यवर्णनादनौचित्यं परिहरणीयम् । कचित्त भवतेति पाठः । अत्र ज्योत्स्नापदेनैव चन्द्रिकालाभेऽपि चन्द्रपदं शारदपूर्णचन्द्र-परतया नापुष्टार्थम् । पुष्पमालेत्यत्र पुष्पपदिमवोत्कृष्टपुष्पपरतयेति बोध्यम् । वादयोग्यतासूचनाय यूनोरित्युक्तम् । अयं हीत्युदाहरणेऽभेदारोपहेतुभूतं पुरदा-हकत्वरूपं साधर्म्यमुपात्तं इह तु जगद्रक्षकत्वादिकं तद्रम्यमानमिति भेदः ॥ वेधा इति ॥ द्वेधा कान्ताधर्मिकत्वकनकधर्मिकत्वरूपविधाद्वययुक्तं भ्रमं वल-वदनिष्टाननुवन्धिसुखसाधनत्वभ्रमम् । सर्वेषामपि भ्रमाणां वेधसा निर्माणेऽपि प्राधान्यविवक्षयेलिभिधानम् । अयमास्त इत्युदाहरणे शंभुसादश्यं गम्यमानिमह

त्वय्यागते किमिति वेपत एप सिन्धु-स्त्वं सेतुमन्थकृदतः किमसौ विभेति । द्वीपान्तरेऽपि न हि तेऽस्त्यवशंवदोऽद्य त्वां राजपुङ्गव निषेवत एव लक्ष्मीः ॥

अत्र त्वं सेतुमन्थकृदिति सेतोर्मन्थनस्य च कर्त्रा पुरुषोत्तमेन सह वर्णनी-यस्य तादात्म्यमुक्त्वा तथापि त्वदागमनं सेतुबन्धाय मन्थनाय वेति समुद्रेण न भेतन्यम् । द्वीपान्तराणामपि त्वद्वशंवदत्वेन पूर्ववद्वीपान्तरे जेतन्याभा-वात्, प्राप्तलक्ष्मीकत्वेन मन्थनप्रसक्त्यभावाचेति पूर्वावस्थात उत्कर्षविभाव-नाद्धिकाभेदरूपकम् ।

किं पद्मस्य रुचिं न हन्ति नयनानन्दं विधते न किं वृद्धिं वा झपकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम् । वक्रेन्दों तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरुज्ञृम्भते दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्यस्येव विम्बाधरे ॥

अत्रापरः शीतांशुरित्यनेन वक्रेन्दोः प्रसिद्धचन्द्राद्धेद्माविष्कृत्य तस्य च प्रसिद्धचन्द्रकार्यकारित्वमात्रप्रतिपादनेनोत्कर्पापकर्षयोरप्रदर्शनादनुभयं तादू-प्यरूपकम् ।

भचतुर्वद्नो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः । अभालकोचनः शंभुर्भगवान्वाद्रायणः ॥ अत्र हरावपर इति विशेषणात्रिष्वपि ताद्र्ष्यमात्रविवक्षा विभाविता, च-

त्वनासक्तिरूपं तदुपात्तमिति भेदः ॥ त्वय्यागत इति ॥ राजानं प्रति कवेह-क्तिः । सेतुश्च मन्थश्चेति द्वन्द्वः । मन्थनं मन्थोऽमृतमन्थनम् । द्वीपान्तरेऽपीलः पिना सुतरामेतद्वीपे नास्तीति सूच्यते । अद्य राजभावावस्थायां शंभुविश्वमित्यत्र विश्वसंरक्षकत्वं साद्द्यमुपात्तमिह तु नेति भेदः ॥ कि पद्मस्येति ॥ दयितां प्रति नायकोक्तिः । तव वक्ररूपे इन्दुकार्यकारिणि सत्ययमपरः प्रसिद्धः शीतां-शुधन्द्रो यदुज्ममते उदितो भवति तस्मातव वक्त्रेन्दुः पद्मस्य इचि कान्ति न हन्ति किम् । 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' इति न्यायात्प्रयोजनस्या-न्यतः संभवे तदुज्जम्भणस्यासङ्गतेरिति। किं न हन्ति इति काका अपितु हन्ते-विति पर्यवसाने तदुज्ममणं मुधेति प्रतीतिपर्यवसानम्। एवमप्रिमवाक्ययोरिप। झषो मकरः केतनं चिह्नमस्य तथाभूतस्य समुद्रस्य कामस्य च आलोकनमालो-कः प्रकाशश्च तन्मात्रेण असृतेन दर्पोऽभिमान उज्जूम्भणहेतुः स्याचेद्युक्तमेतत्। यत इह वक्त्रेन्दौ विम्बाधरे तदप्यस्खेवेति समुचितपदाध्याहारेण योजनीयम्। यच्छव्दस्योत्तरवाक्यगतत्वेन तच्छव्दाक्षेपक्षमत्वान्न तद्नुपादानेऽपि न्यूनपदत्व-दोषः । कार्यकारित्वमात्रेत्यनेनाभेदव्यावृत्तिः । अस्या मुखेन्दुनेत्यत्र किमिन्दुने-ति पुनरुपादानमात्रं भेदविवक्षाज्ञापकम् । इह त्वपरशब्दस्याप्युपादानमिति वि-शेषः ॥ अचतुर्वद्न इति ॥ वाद्रायणो व्यासः । भाले लोचनं यस्येति व्य- तुर्वदनत्वादिवैकल्यं चोक्तमिति न्यूनताद्र्ष्यरूपकम्। इदं विशेषोत्तयुदाहरण-मिति वामनमतम् । यदाह--'एकगुणहानौ गुणसाम्यदार्ख्यं विशेषोक्तः'इति

किमसुभिग्र्छिपितेर्जेड मन्यसे मिय निमज्जतु भीमसुतामनः। मम किल श्रुतिमाह तद्र्थिकां नलमुखेन्दुपरां विबुधः स्मरः॥

अत्र दमयन्तीकृतचन्द्रोपालम्भे प्रसिद्धचन्द्रो न निर्याणकालिकमनःप्रवे-शश्चितितारपर्यविषयः । किंतु नलमुखचन्द्र एवेति । ततोऽस्याधिक्यप्रतिपाद-नाद्धिकताद्र्ष्यरूपकम् । रूपकस्य सावयवत्वनिरवयवत्वादिभेद्प्रपञ्चनं तु चित्रमीमांसायां दृष्ट्यम् ॥

धिकरणत्वेऽपि गमकत्वाद्वह्वीहिः। ननु हरावपर इति विशेषणात्तदंशे एव ताद्रप्यरूपकं स्यादितरांशे त्वभेदरूपकमेवेत्याशङ्कवाह-अत्रेति ॥ त्रिष्वपी-ति ॥ एकत्रानेकारोपरूपायां रूपकमालायामवैरूप्याय तात्पर्यप्राहकस्यैकत्र स्थितस्यापि साधारण्यमेवोचितमिति भावः । अयमेव च साध्वित्यादिपूर्वोदाह-रणाद्विशेषः । न्यूनरूपकस्य चमत्कारित्वं पूर्वमुक्तं वृद्धसंमत्या द्रढयति -इदिम-ति ॥ यदाहेत्यनन्तरं स इति शेषः। एकगुणहानावभिहितायामिति शेषः। गुण-साम्यदार्ह्यं शेषगुणप्रयुक्तसाम्यायोगव्यवच्छेदः। चतुर्वदनत्वाद्येकगुणव्यतिरेकस्य प्रमाणान्तरसिद्धस्य पुनर्वचनं शेपगुणाभावपरिसंदयार्थे पर्यवस्यतीति भावः। अत्रच रूपकप्रभेदत्वेनैव चमत्कारोपपत्तौ नालंकारान्तरत्वं न्यूनत्ववर्णनस्य यु-क्तम् । सामग्रीकालीनकार्याभावस्य त्वलंकारान्तरासंभित्रस्य तद्वक्ष्यमाणं युक्त-मिलखरसो मतमिलनेन सूचितः ॥ किमसुभिरिति ॥ जडेति मूर्खजलमये-ति साधारणं चन्द्रसंबोधनम् । ग्लिपतैर्नष्टेरसुभिर्निमित्तभूतैर्भीमसुताया दमय-न्या मनो मयि निमज्जतु निलीयतामिति मन्यसे किमिति सोपहासकाकुः । तेन मैवं मंस्था इत्यर्थः । अत्र हेतुमाह । किल निश्चितम् । मम विवुधः पण्डितः स्मरः तदर्थिकां सः प्राणनिर्गमकालीनमनःप्रवेशोऽर्थो यस्यास्तां श्रुतिम् । नलमु-खेन्दुपरां मनःप्रवेशाधिकरणत्वेन नलमुखचन्द्रतात्पर्यववीमाहेति । अयं कलङ्कित इत्युदाहरणे दोषग्रून्यत्वप्रयुक्तं शाब्दमाधिक्यम्, इह तु गुणविशेषप्रयुक्तं गम्य-मानं तदिति विशेषः ॥ सावयवत्वनिरवयवत्वादीति ॥ आदिना समस्त-वस्तुविषयत्वादिरूपैतत्प्रभेदानां परम्परितत्वरूपभेदान्तरस्य च परिप्रहः । तथा-हि सावयवं निरवयवं परंपरितं चेति त्रिविधं रूपकं प्रत्येकं कमेण द्विविधम् । समस्तवसुविषयमेकदेशविवर्ति च केवलं माला च श्विष्टवाचकमश्विष्टवाचकं चेति श्विष्टाश्विष्टभेद्योः केवलमालारूपत्वाभ्यामन्त्यं चतुर्विधमित्यष्टौ भेदाः । तत्र 'ज्योत्स्रा भस्मच्छरणधवला विभ्रती तारकास्थीन्यन्तर्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम् । द्वीपाद्वीपं भ्रमति द्वती चन्द्रमुद्रां कपाले न्यस्तं सिद्धाज-नपरिमलं लाञ्छनस्य च्छलेन ॥' इति पद्ये रात्रौ कापालिकीत्वारोपस्य प्रधान-तयावयविनोऽवयवरूपाणि ज्योत्स्नाभर्मेत्यादिरूपकाणीति सावयवत्वं समस्तस्य

िपरिणामालंकारः ६

## परिणामालंकारः ६ परिणामः कियार्थश्रेद्विपयी विषयात्मना । प्रसन्नेन दगब्जेन वीक्षते मदिरेक्षणा ॥ २१ ॥

वंता । अतस्तस्य प्रकृतदगारमनापरिणत्यपेक्षणात्परिणामालंकारः ॥ यथावा-

तीर्त्वा भूतेशमोलिस्रजममरधुनीमात्मनासौ तृतीय-स्तस्मे सौमित्रिमैत्रीमयमुपकृतवानातरं नाविकाय।

वस्तुन आरोप्यमाणस्य शब्दविषयत्वं च द्रष्टव्यम् । 'प्रौढमौक्तिकरुचः पयोमुचां बिन्दवः कुटजपुष्पवन्थवः । विद्युतां नभित नाट्यमण्डले कुर्वते स्म कुसुमाज-लिश्रियम् ॥' इत्यत्र प्रधानस्य नभिस नाट्यमण्डलत्वारोपस्यावयवभूतं विद्युतां नर्तकीत्वरूपणमार्थे न शाब्दमित्येकदेशे विशेषेण शाब्दतया वर्तनादेकदेशविव-र्तित्वम् । 'कुरङ्गीवाङ्गानि स्तिमितयति गीतध्वनिषु यत्सखीं कान्तोदन्तं श्रुतस-पि पुनः प्रश्नयति यत् । अनिद्रं यचान्तः खपिति तदहो वेद्यभिनवां प्रवृत्तोऽ-स्याः सेक्तं हृदि मनसिजः प्रेमलतिकाम् ॥' इत्यत्र प्रेमलतिकामित्यमालारूपं निरवयवम् । 'सौन्दर्यस्य तरिङ्गणी तरुणिमोत्कर्षस्य हर्षोद्गमः कान्तेः कार्मणकर्म नर्भरहसामुहासनावासभू: । विद्या वकगिरां विधेरनविधप्रावीण्यसाक्षात्किया वाणाः पञ्चशिलीमुखस्य ललनाचूडामणिः सा व्रिया॥' इत्यत्र च मालारूपं निरव-यवं बोध्यम् । एवम् 'अलोकिकमहालोकप्रकाशितजगत्रयः । स्तूयते देव सद्वंश-मुक्तारलं न कैर्भवान् ॥' इत्यत्र वेणुकुलयोः श्लिप्टेन वंशपदेन कुले वेणुत्वारोप-पूर्वक एव राज्ञि मुक्तारलत्वारोप इति श्विष्टवाचकं केवलपरम्परितरूपकं विद्व-न्मानसेत्यादावेतदेव मालारूपम् । चतुर्दशलोकविष्ठकन्द इत्यत्राश्विष्टवाचकं के-वलपरम्परितम् । 'पर्यङ्को राजलक्ष्म्याः' इत्यादौ 'आलानं जयकुजरस्य' इत्यादौ चाश्विष्टवाचकं माला परम्परितं च द्रष्टव्यम् । विस्तरभयान्नेह प्रपक्ष्यते ॥१०॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ इखलंकारचन्द्रिकायां रूपकप्रकरणम् ॥ ५ ॥

परिणामं लक्षयति—परिणाम इति ।। विषयिनिष्ठायाः प्रकृतकार्योपयोगि-ताया अवच्छेदिका विषयतात्मतापरिणतिः परिणामः । सा च विषयतादात्म्या-ध्यवसायविषयता । एवंच विषयाभेदस्यैव विषयिणि विवक्षणादृगभिनेनाञ्जेनेति स्वारसिक एव वोधो न तु रूपक इव दङ्निष्ठाभेदप्रतियोगिनाञ्जेनेत्सनुयोगित्व-

22

वहुभिर्वहुधोछेखादेकस्योछेख इष्यते।

स्त्रीभिः कामोऽर्थिभिः स्वर्द्धः कालः शत्रुभिरेक्षि सः ॥२२॥
यत्र नानाविधधमयोग्यं वस्तु तत्तद्धमयोगरूपनिमित्तभेदेनानेकेन ब्रहीत्रानेकधोछिष्यते तत्रोछेखः । अनेकधोछेखने रुच्यर्थित्वभयादिकं यथाई प्रयोजकम् । रुचिरभिरतिः । अर्थित्वं छिप्सा । स्त्रीभिरित्याद्यदाहरणम् । अत्रैक एव राजा सौन्दर्यवितरणपराक्रमशालीति कृत्वा स्त्रीभिरर्थिभिः प्रत्यर्थिभिश्च रुच्यर्थित्वभयेः कामकल्पतरुकालरूपो दृष्टः । यथावा—

मुख इति रूपकाद्भेदो वोध्यः । असमासेऽप्युदाहरति—तीत्वेति॥मुरारिनाट-कगतमेतत्पद्यम् । आत्मना तृतीयः । सीतालक्ष्मणसिहत इति यावत् । असौ प्रकान्तो रामः भूतेशस्य शंभोमौलिमालारूपाममरनदीं गङ्गांतीर्त्वा तस्म नावि-काय गुहसंज्ञाय निषादपतये सौमित्रेर्लक्ष्मणस्य मैत्रीरूपमातरं तरणमूल्यमुपकृत-वान् उपकाररूपतया दत्तवान् । अथो अनन्तरं चित्रकूटं प्रति प्रतस्थे प्रस्थित-वान् । कीदशः । व्यामेन तिर्थक्षप्रसारितभुजद्वयान्तरालेन प्राह्मो तावत्परिणाहौ सत्नौ यासां तथाभूताभिः शवराणां व्याधानां युवितिभिः कोतुकेनोद्बन्ति विक-सन्त्यक्षीणि यत्र कियायां तथा कृच्छात्क्षेशात् अतएव क्षणमन्वीयमानोऽनुगम्य-मान इत्यर्थः ॥ २०॥ इति परिणामालंकारप्रकरणम् ॥ ६॥

[ उल्लेखालंकारः ७

गजत्रातेति वृद्धाभिः श्रीकान्त इति यौवतैः। यथास्थितश्च बालाभिर्देष्टः शौरिः सकौतुकम्॥

अत्र यस्तथा भीतं भक्तं गजं त्वरया त्रायते सा सोऽयमादिपुरुपोत्तम इति
वृद्धाभिः संसारभीत्या तदभयार्थिनीभिः कृष्णोऽयं मधुरापुरं प्रविशन् दृष्टः ।
यस्तथा चञ्चलत्वेन प्रसिद्धायाः श्रियोऽपि कामोपचारवेदग्ध्येन नित्यं वह्नभः
सोऽयं दिन्ययुवेति युवितसमूहैः सोत्कण्ठैर्देष्टः । बालाभिस्तद्वाद्यगतरूपवेषालंकारदर्शनमात्रलालसाभिर्यथास्थितवेषादियुक्तो दृष्ट इति बहुधोह्नेखः ।
पूर्वः कामत्वाद्यारोपरूपकसंकीर्णः । अयं तु शुद्ध इति भेदः ॥ २१ ॥

एकेन वहुधोछेखेऽप्यसौ विषयभेदतः । गुरुर्वचस्यर्जुनोऽयं कीर्तौ भीष्मः शरासने ॥ २३ ॥

यहीतृभेदाभावेऽि विषयभेदाइहुधोल्लेखनादसाबुल्लेखः । उदाहरणं श्ले-पसंकीर्णम् । वचोविषये महान्पदुरित्यादिवहृहस्पतिरित्याद्यर्थान्तरस्यापि क्रो-डीकरणात् ।

निधिमागतम् । पर्यन्ति विवुधाः शूराः स्त्रियो वृद्धाश्च कौतुकात् ॥' इत्यत्राति-व्याप्तिरतोऽनेकप्रकारत्वमित्युक्तम् । नचोहिष्ट्यमानप्रकारत्वमित्येवास्तु । उ-क्तोदाहरणे प्रकारस्य कस्याप्यनुहेखादेवानतिप्रसङ्गादिति वाच्यम्। एवमपि 'नृ-त्यत्त्वद्वाजिराजिप्रसरखरपुटप्रोद्धतैर्धूलिजालैरालोकालोकभूमीधरमतुलनिरालोक-भावं प्रयाते । विश्रानितं कामयन्ते रजनिरिति धिया भूतले सर्वलोकाः कोकाः कन्दन्ति शोकानलविकलतया किंच नन्दन्त्युल्काः॥' इत्यत्र धूलिजालरूपस्यैकस्य वसुनोऽनेकैलंकिकोकोलुकैर्प्रहीतृभिरेकेनैव रजनीत्वेन प्रकारेणोल्लेखनादतिव्या-सेर्वारणाय प्रकारेsनेकत्वोपादानस्यावश्यकत्वात् । 'सिजानैर्मजरीति स्तनकलश-युगं चुम्वितं चच्चरीकेंस्तत्रासोहासलीलाः किसलयमनसा पाणयः कीरदृष्टाः। त-ह्रोपायालपन्त्यः पिकनिनद्धिया ताडिताः काकलोकैरित्थं चोलेन्द्रसिंह त्वद्रिम्-गद्दशां नाप्यरण्यं शरण्यम् ॥' इत्यनेकभ्रान्तिपरम्परायामतिप्रसङ्गवारणार्थमेक-स्येत्युक्तमिति संक्षेपः ॥ यथाईमिति ॥ स्त्रीभिः कामत्वोहेखे तासां रुचिरनु-रागः प्रयोजकः । अर्थिभिः कल्पतहत्वोह्नेषे तेषां लिप्साः प्रयोजिका । शत्रुभि-र्यमत्वोक्षेखे तेषां भयं प्रयोजकमित्येवं यथायोग्यमित्यर्थः । उदाहरणान्तरमाह--यथावेति ॥ गजत्रातेति ॥ श्रीकृष्णस्य मधुराप्रवेशवर्णनम् । शौरिः श्रीकृष्णः वृद्धाभिर्गजत्रातेति दृष्ट इत्याद्यन्वयः । सकौतुकं सोत्कण्ठमिति दर्शनिकयाविशेषणं सर्वत्र संवध्यते । श्लोकं व्याचष्टे-य इति ॥ तथा महाप्राहप्रहणेन । युव-तिसमूहैस्तरणीसमूहैः ॥ पूर्वमिति ॥ उदाहृत इति शेषः । उहेख इलानुषज्यते । आरोपरूपकसंकीर्ण इति पाठे आरोपखरूपं यदूपकं तत्संकीर्ण इत्यर्थः। आरो-परूपरूपकेति पाठस्तु स्पष्टार्थ एव ॥ २१॥ उल्लेखप्रभेदान्तरमाह—एकेनेति ॥ व्याचष्टे- ग्रहीत्रिति ॥ विषयभेदादित्यनन्तरमेकस्येति शेषः । विषयपद-माश्रयसंविधनोहपलक्षणम् । अत एव लक्षणे प्रहीत्विषयादीत्यादिपदेन

शुद्धो यथा---

अकृशं कुचयोः कृशं विलग्ने विपुलं चक्षुपि विस्तृतं नितम्बे। अधरेऽरुणमाविरस्तु चित्ते करुणाशालि कपालिभागधेयम्॥

स्मृतिभ्रान्तिसंदेहालंकाराः ८-१० स्यात्स्मृतिभ्रान्तिसंदेहेस्तदङ्कालंकृतित्रयम् । पङ्कजं पश्यतः कान्तामुखं मे गाहते मनः ॥ २४ ॥ अयं प्रमैत्तमधुपस्त्वन्मुखं वेत्ति पङ्कजम् । पङ्कजं वा सुधांशुर्वेत्यसाकं तु न निर्णयः ॥ २५ ॥

स्मृतिअान्तिसंदेहैः साद्यान्निवध्यमानैः स्मृतिमान्आन्तिमान्संदेह इति स्मृत्यादिपदाङ्कितमलंकारत्रयं भवति । तच क्रमेणोदाहृतम् ॥ तत्संप्रहः कृतः । तत्र विषयसप्तमीनिर्दिष्टो विषय इत्युच्यते । अधिकरणसप्तमी-निर्दिष्टस्त्वाश्रयः पष्ट्यादिनिर्दिष्टः संवन्धीति विवेकः । गुरुरित्यस्यार्थकथनं महानिति । 'गुरुर्महित बाच्यवत्' इति विश्वकोशात् । पद्धरिति तु तात्पर्यपर्य-वितार्थकथनम् । पर्दुर्देक्ष इत्यादीत्यादिना कीर्तिविषयेऽर्जुनो धवल इतिवत्पार्थ इलर्थान्तरस्य धनुर्विषये भीष्मो भीषण इतिवद्गाङ्गेय इलर्थान्तरस्य च संप्रहः । 'भीष्मस्तु भीषणे रुद्रे गाङ्गेये च निशाचरे।' इति विश्वः । कोडीकरणादेक-वृन्तगतफलद्वयन्यायेन संप्रहात् ॥ अक्कशमिति ॥ कपालिनो हरस्य भागधेयं भाग्यं तत्त्वेनाध्यवसितं पार्वतीखरूपं चित्ते आविरस्तु प्रकटीभवत्विति संबन्धः। किंभूतम् । कुचयोः कुचविषये अकृशं स्थूलम् । एवमग्रेऽपि । विलग्नो मध्यः । 'विलग्नो मध्यलग्नयोः' इति विश्वः । विपुलमायतम् । अधरे अधरोष्टे अरुण-मारक्तम् । अरुणाधरमिति पाठस्तु प्रक्रमभङ्गाद्युक्तः । चित्ते इति करुणा-शालीत्यत्रापि मध्यमणिन्यायेन संवध्यते । एवम् 'तुपारास्तापसत्राते तामसेषु च तापिनः । दगन्तास्ताडकाशत्रोर्भूयासुर्मम भूतये ॥' इत्यादावधिकरणानेकत्व-प्रयुक्तः 'यमः प्रतिमहीसतां हुतवहोऽसि तत्रीवृतां सतां खळु युधिष्ठिरो धनप-तिर्धनाकाङ्किणाम् । गृहं शरणमिच्छतां कुलिशकोटिभिर्निर्मितं त्वमेक इह भूतले बहुविधो विधात्रा कृतः॥' इत्यादौ संवन्धिभेदप्रयुक्तश्रोहेखो द्रष्टव्य इति दिक् ॥ २२ ॥ इत्यलंकारचन्द्रिकायामुहेखप्रकरणम् ॥ ७ ॥

अथ ज्ञानप्राधान्यसाम्यात्स्मृत्यादीनलंकारान् लक्षयति—स्यादिति ॥ स्मृतिम्रान्तिसंदेहैर्व्यवहर्तव्यतया हेतुभूतेस्तदङ्कं तेषामङ्कस्तदङ्कः तदङ्को विद्यतेऽस्मि-स्त्याभूतम् । मत्वर्थीयाच्प्रत्ययात् । अङ्कश्चिहं संज्ञेति यावत् । तेन तत्संज्ञासंज्ञि-तिम्त्यर्थः । अलंकृतित्रयं व्यवहारविषयः स्यादिति योजना । एवंच स्मृतित्वभ्रानितत्वसंदेहत्वानि त्रीणि लक्षणानि । तत्र स्मृतित्वं तावत्स्मरामीत्यनुभवसाक्षिको

१ 'प्रमत्तो मधुपः'.

दिव्यानामपि कृतविस्मयां पुरस्ता-दम्भस्तः स्फुरदरविन्दचारुहस्ताम् । उद्दीक्ष्य श्रियमिव कांचिदुत्तरन्ती-मस्मार्षीजलनिधिमन्थनस्य शौरिः ॥

पूर्वत्र स्मृतिमदुदाहरणे सदृशस्थैव स्मृतिरत्र सदृशलक्ष्मीस्मृतिपूर्वकं त- स्संबन्धिनो जलनिधिमन्थनस्यापि स्मृतिरिति भेदः।

पलाशमुकुलभ्रान्या शुकतुण्डे पतत्यलिः।
सोऽपि जम्बूफलभ्रान्या तमलिं धर्तुमिच्छति॥
अत्रान्योन्यविषयभ्रान्तिनिबन्धनः पूर्वोदाहरणाद्विशेषः।
जीवनग्रहणे नम्रा गृहीत्वा पुनस्त्रताः।
किं कनिष्ठाः किमु ज्येष्ठा घटीयत्रस्य दुर्जनाः॥
पूर्वोदाहृतसंदेहोऽप्रसिद्धकोटिकोऽयं तु कल्पितकोटिक इति भेदः२३॥२४॥

जातिविशेषः । भ्रान्तित्वं विशेष्यावृत्तिप्रकारकज्ञानत्वम् । संदेहत्वं तु निश्चयभि-त्रत्वे सति संभावनाभित्रज्ञानत्वं पारिभाषिकम् । स्मृतिभ्रान्खादिवारणाय सत्य-न्तम् । उत्प्रेक्षावारणाय संभावनाभिन्नेति । चमत्कारित्वं पुनरखिलालंकारसाधारणं लक्षणत्रयेऽपि निवेशनीयम् । तेन स घट इति स्मृताविदं रजतिमिति भ्रान्ता-वयं स्थाणः पुरुषो वेति संशये नातिप्रसङ्ग इति ध्येयम् । गाहते आकलयति । स्मरतीति यावत् । साद्द्यानिबध्यमानैरिति चमत्कारित्वोपलक्षकम् । न त्वेत-स्यापि स्वातच्चेण लक्षणे प्रवेशः । सादश्यामूलकानामपि स्मृलादीनां चमत्कारि-त्वेऽलंकारताया अनिवार्यत्वात्, चमत्कारितैकजीवातुत्वात्तस्याः । अचमत्कारित्वे तु तेनैव वारणमिति व्यर्थे सादद्यहेतुकत्विवशेषणम् । न चैतदेवोपादीयतां नतु चमत्कारित्वविशेषणमिति वाच्यम् । उदाहृतेषु सादश्यमूलकस्मृत्यादिष्वतिप्रसङ्ग-वारणार्थे तस्यावर्यकत्वादिति संक्षेपः ॥ दिट्यानामिति ॥ माघे जलकीडाव-र्णनप्रसावे पद्यमिदम् । शौरिः श्रीकृष्णोऽम्भस्तो जलादुत्तरन्तीं निर्गच्छन्तीं श्रि-यमिव श्रीसद्शीं कांचित्परस्तादमे उद्बीक्ष्य जलनिधिमन्थनस्य अस्मार्धात्समृत-'वान् । 'अधीगर्थ-' इति कर्मणि पष्टी । किंभूताम् । दिवि भवा दिव्यास्तेषां देवा-नामि सौन्दर्यातिशयेन कृताश्चर्याम् । तथा स्फुरता अरविन्देन कमलेन चारू रमणीयो हस्तो यस्यास्तथाभूताम् । तथा चैवंविधनायिकासदशलक्ष्मीस्मरणात्तत्सं-बन्धिजलनिधिमन्थनस्परणमिति भावः । अत्र श्रियमिवेत्युपमायाः स्मृत्यङ्गत्वा-त्तयोरङ्गाङ्गित्वलक्षणः संकरः ॥ पलाशेति ॥ विक्रमलौहित्यरूपसादृश्याङ्गान्तिः। अलिर्भ्रमरः । सोऽपि शुकोऽपि ॥ भ्रान्तिनिबन्धन इति ॥ भ्रान्तिप्रयुक्त इत्यर्थः ॥ जीवनेति ॥ जीवनं जलं प्राणसंयोगश्च । अथवा जीवन्त्यनेनेति जी-वनं धनम् । नम्रा अधोमुखा विनीताथ । उन्नता ऊर्ध्वमुखा उद्धताथ । घटी-

२५

अपहुत्यलंकारः ११

# शुद्धापह्नतिरन्यस्यारोपार्थो धर्मनिद्धवः । नायं सुधांशुः किं तर्हि व्योमगङ्गासरोरुहम् ॥ २६ ॥ वर्णनीये वस्तुनि तत्सदशधर्मारोपफलकस्तदीयधर्मनिद्धवः कविमतिवि-

यन्त्रमेकरज्जुसंबद्धघटमालारूपम् । भाषायां 'राहाट' इति प्रसिद्धम् ॥ किटिप-तेति ॥ घटीयन्त्रसंबिन्धनोर्ज्येष्ठकनिष्ठयोः कोट्योरप्रसिद्धेरिति भावः ॥२२॥२४॥ इत्यलंकारचन्द्रिकायां स्मृतिम्रान्तिसंदेहप्रकरणम् ॥ ८॥ ९॥ १०॥

अथापद्वतिः । तत्र तावद्भेद्प्रतिपत्तिनिरूपिताङ्गाङ्गित्वान्यतर्वात्रिषेधोऽपद्व-तिरित्यपहुतिसामान्यलक्षणम् । निषेधश्च नत्रादिसत्त्वे वाच्यः । क्रचित्त तद्भा-वात्कैतवादिपदैः परमतत्वोपन्यासादिभिश्र व्यङ्गयः । तथा कचिदभेदप्रतिपत्ति-समानाधिकरणः कचितु तक्क्षथिकरण इति विवेकः । एवमभेदः कचिदारोप्य-माणः कचित्त खाभाविकः । एवं तत्प्रतिपत्तिरिप कचिद्वाज्ञनया प्रायशस्त् वा-च्यवृत्त्येति वोध्यम् । निषेधोऽपहुतिरित्येतावदुक्तौ 'न यूतमेतित्कतव कीडनं निशितैः शरैः' इति प्रसिद्धनिषेधानुवादरूपे प्रतिषेधालंकारैऽतिव्याप्तिरतोऽभे-दप्रतिपत्तिर्निरूपितेत्यादिविशेषणमुपात्तम् । तत्र हि युद्धप्रवृत्तं कितवं प्रति युद्धे यूतत्वाभावो निर्ज्ञातोऽपि कीर्ल्यमानो यूत एव तव प्रागल्भ्यं न तु युद्धे इत्युप-हासार्थी न तु युद्धाभेदप्रतिपत्त्यङ्गम्, तस्यास्तदुपन्यासं विनापि सिद्धत्वात् । ना-प्यङ्गिभूतः। निर्ज्ञातत्वेन तदुपायानपेक्षणादिति तद्वारणम्। अभेदप्रतिपत्तिनिरूपि-ताङ्गित्वमात्रोक्तौ शुद्धापह्नतिहेत्वपह्नतिपर्यस्तापह्नतिकैतवापह्नतिष्वव्याप्तिः। तत्र सर्वत्र 'नायं सुधांशुः' इत्यादेनिषेधस्य व्योमगङ्गासरोरुहाद्यभेदप्रतिपत्त्यर्थत्वेन तद्रज्ञतयाङ्गित्वाभावात्। अभेदप्रतिपत्तिनिरूपिताङ्गत्वमात्रोक्तौ च भ्रान्तापह्नति-च्छेकापह्रत्योरव्याप्तिः। तयोर्भ्रान्तिशङ्कानिवारणरूपनिषेधस्य प्राधान्येनाभेदप्रति-पत्त्यङ्गत्वाभावादतस्तद्न्यतरवत्त्वनिवेशः । तदाहुः—'साम्यायापहृवो यत्र सा विज्ञेया त्वपहुतिः । अपहवाय साददयं यस्मिन्नेषाप्यपहुतिः ॥' इति । सर्वे चैत-त्तदुदाहरणव्याख्यानावसरे व्यक्तीभविष्यतीति न प्रपश्चितम् । एवं सामान्यल-क्षणं मनसि निधाय शुद्धापहुत्यादींसद्भेदान्वक्तुमुपक्रमते — शुद्धापह्नतिरिति॥ लक्षणं व्याचष्टे-वर्णनीय इति ॥ कविमतेर्विकासः स्फूर्तिशालिता । तथा चोपमेय उपमानारोपफलक उपमेयधर्मत्वाभिमतनिषेधः ग्रुद्धापद्वतिरिति लक्षण-मिति भावः । अत्र चानुक्तनिमित्तत्वं कैतवादिपदाव्यङ्गयत्वं च निषेधविशेषणं बोध्यम् । तेन हेत्वपह्नतौ कैतवापह्नतौ च नातिप्रसङ्गः । 'कान्तः किं नहि नुपुरः' इति छेकापहुतावुपमेयधर्मस्य कान्तत्वस्य निषधसत्त्वादतिप्रसङ्गवारणायाद्यं वि-शेषणम् । तत्र हि न कान्तत्वनिषेधो नूपुरारोपार्थोऽपि तु नूपुरारोप एव शक्कि-तकान्तत्वनिषेधार्थ इति तद्वयावृत्तिः । पर्यस्यापह्नतिवारणायोपमेयधर्मेत्युक्तम् तत्रोपमानधर्मस्यैव सुधांशुत्वादेनिषेध इति नातिव्याप्तिरिति सर्वे सुस्थम् ॥

[ अपहुत्यलंकारः ११

कासोर्धेक्षितधर्मान्तरस्यापि निह्नवः शुद्धापह्नुतिः । यथा चन्द्रे वियन्नदीपुण्ड-रीकत्वारोपफलकस्तदीयधर्मस्य चन्द्रत्वस्यापह्नवः ॥ यथावा—

अङ्कं केऽपि शशिङ्करे जलनिधेः पङ्कं परे मेनिरे सारङ्गं कितिचिच्च संजगिद्दिरे भूच्छायमैच्छन्परे । इन्दो यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्यामं द्रीदृश्यते तत्सान्द्रं निशि पीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमाचक्ष्महे ॥ अत्रौत्प्रेक्षिकधर्माणामप्यपद्धवः परपक्षत्वोपन्यासाद्र्थसिद्धः ॥ २५ ॥ २६ ॥

स एव युक्तिपूर्वश्रेदुच्यते हेत्वपह्नुतिः । नेन्दुस्तीत्रो न निक्यर्कः सिन्धोरीर्वोऽयम्रुत्थितः ॥ २७॥

अत्र चन्द्र एव तीव्रत्वनेशत्वयुक्तिभ्यां चन्द्रत्वसूर्यत्वापह्नवो वडवानलत्वा-रोपार्थः ॥ यथावा—

> मन्थानभूमिधरमूलशिलासहस्र-संघटनवणिकणः स्फुरतीन्दुमध्ये।

पुण्डरीकेति॥ 'पुण्डरीकं सिताम्भोजम्' इत्यमरः। एवंच सरोरुहपदं विशेष्य-परमिति भावः ॥ अङ्कमिति ॥ इन्दौ दलितस्य स्फुटितस्येन्द्रनीलमणेः शकल-वच्छ्यामं यहरीहर्यते तत्केऽपि कवयोऽङ्कं कलङ्कं शशङ्किरे शङ्कितवन्तः, परे-Sन्ये जलनिधे: पह्नं मेनिरे, कतिचित्पुनः सारङ्गं संजगदिरे अव्ववन्, परे इतरे भुवो भूमेरछाया भूच्छायं ऐच्छन्। 'विभाषा सेनासुराच्छाया-' इत्यादिना क्रीव-त्वम् । वयं तु सान्द्रं घनं निशि रात्रौ पीतम् अतएव कुक्षिस्थमन्धतमसं गाढ-ध्वान्तमाचक्ष्महे ब्रमह इत्यन्वयः । औत्प्रेक्षिका उत्प्रेक्षामात्रविषयाः कलङ्काद-यः । अपिना स्वाभाविकस्य भूच्छायत्वस्य समुचयोऽर्थसिद्ध इति । 'नायं सुधां-शुः' इत्यत्र नेतिशब्दोपात्तत्वाच्छाब्दः । इहतु परमतत्त्वोत्कीर्तनेन खानभिमत-त्वसूचनादर्थगम्य इलार्थः । एकत्रानेकापह्ववरूपतयाप्यत्र वैचित्र्यं वोध्यम् ॥ २५ ॥ हेत्वपह्नतिमाह—स एवेति ॥ शुद्धापह्नव एवेत्सर्थः ॥ युक्तिपूर्व इति ॥ योज्यते साध्यमनेनेति युक्तिर्हेतुस्तत्पूर्वस्तत्सहित इत्यर्थः। तथाच शुद्धा-पह्नवलक्षण एवानुक्तनिमित्त इलस्य स्थाने उक्तनिमित्त इत्युक्तौ हैत्वपह्नतिलक्ष-णं संपद्यत इति भावः । नेन्दुरित्यादिविरहाकुलोक्तिः । तीत्रो दारुणो यतोऽतो नेन्द्रः । निश्चि रात्रौ सत्त्वात्रार्कः । 'और्वस्तु वाडवो वडवानलः' इत्यमरः ॥ नैशत्वेति ॥ निशि भवो नैशस्तत्विमत्यर्थः । अत्रापि चन्द्रत्वं स्वाभाविको धर्मः । सूर्यत्वं त्वौत्प्रेक्षिकमिति वोध्यम् ॥ मन्थानेति ॥ मन्थानो मन्थनद-ण्डः स चासौ भूमिधरः पर्वतो मन्दरस्तस्य मूलभारो यच्छिलासहस्रं तेन संघ-हनाद्यो वणस्तस्य किणश्चिह्नमिन्दुमध्ये स्फुरति प्रकाशते । छाया भूमेः । सृगो हरिणः । शशकः शशः इत्येषा अतिपामराणां मूर्खतमानामुक्तिः । हि यस्मात्तेषां छायादीनां तत्रेन्दुमध्यभागे कथंचिदपि केनापि प्रकारेण प्रसक्तिर्नास्तीत्यन्वयः।

अपद्बत्यलंकारः ११ ] अलंकारचिन्द्रकासहितः ।

२७

छायासृगः शशक इत्यतिपामरोक्ति-स्तेपां कथंचिद्पि तत्र हि न प्रसक्तिः॥

अत्र चन्द्रमध्ये मन्थनकालिकमन्द्रशिलासंघट्टनवणिकणस्येव छायादीनां संभवो नास्तीति छायात्वाद्यपद्भवः पामरवचनत्वोपन्यासेनाविष्कृतः ॥२७॥

अन्यत्र तस्यारोपार्थः पर्यस्तापह्नतिस्तु सः । नायं सुधांशुः किं तर्हि सुधांशुः प्रेयसीमुखम् ॥ २८ ॥

यत्र क्विद्वस्तुनि तदीयधर्मनिह्नवः, अन्यत्र वर्णनीये वस्तुनि तस्य धर्म-स्यारोपार्थः पर्यस्तापह्नुतिः । यथा चन्द्रे चन्द्रत्वनिह्नवो वर्णनीये मुखेतदारो-पार्थः ॥ यथावा—

हालाहलो नैव विषं विषं रमा
जनाः परं व्यत्ययमत्र मन्वते ।
निपीय जागर्ति सुखेन तं शिवः
स्पृशक्तिमां मुद्धति निद्रया हरिः ॥
पूर्वोदाहरणे हेत्किर्नास्ति अत्र तु सास्तीति विशेषः । ततश्च पूर्वापह्नुति-वदत्रापि द्वैविध्यमपि द्रष्टव्यम् ॥ २८ ॥

'वैशाखमन्थमन्थानमन्थानो मन्थदण्डके ।' इत्यमरः ॥ नास्तीति ॥ इति हेतोरित्यर्थः ॥ २६ ॥ पर्यस्तापह्नतिमाह—अन्यत्रेति ॥ सः अपहवः । तथाच तदारोपार्थस्तस्यापहव इति लक्षणम् । निषेधस्य च न स्वाधिकरणे प्रतियोग्या-रोपार्थत्वसंभवो न वा स्वाधिकरणे स्वारोप इत्यर्थसिद्धमेवारोपस्यान्याधिकरणत्व-मन्यत्रेलनेनोक्तम् । अतएव पर्यस्तापह्नतिरित्युच्यते । पर्यस्ता आरोपविपरीता आरोपव्यधिकरणेति तदर्थात् । नच चन्द्रे चन्द्रत्वनिषेधस्य कथं मुखे तदारोपा-र्थत्वमिति वाच्यम् । आरोपदार्व्यसंपादकत्वेन निषेधस्य तदर्थताया अनुभवसि-द्धत्वात् । अतएव दढारोपरूपकमेवेदं नापह्वतिरिति प्राचां सिद्धान्तस्तदनुसारे-णैव च चित्रमीमांसायां 'प्रकृतस्य निषेधेन यदन्यत्वप्रकल्पनम्' इत्यपह्नतिलक्ष-णमुक्तम् । इह त्वलंकाररल्लाकराद्यनुसारेणायं प्रभेद उपदर्शितसामान्यलक्षणा-भिप्रायेणापह्नुतित्वेनोक्त इति निरवद्यम् ॥ हालाहल इति ॥ हालाहलो विषं नैव भवति किंतु रमा लक्ष्मीविषम् । जनाः परं केवलमत्रास्मिन्विषये व्यत्ययं वैपरीलं मन्वतेऽभ्युपगच्छन्ति । कुतस्तत्राह । यस्माच्छिवस्तं हालहलं निपीय सुखेन जागति । हरिस्तु इमां रमां स्पृशन्सन् निदया मुह्यति । स्परित्रति पाठे स्परत्रिप मुह्यति । किमु स्पृशत्रित्यर्थः । तथाच रमाया विपरूपत्वे मोहज-नकत्वं हेतुः हालाहलस्य तत्त्वापह्नवे च जागरसुखप्रयोजकत्विमिति वोध्यम् । 'हालाहलो विषे' इति विश्वः । अत्र स्पृशन्मुह्यतीति कार्यकारणयोः पौर्वापर्यवि-पर्ययरूपातिशयोक्तिरलंकारः । सा हेतूक्तिः ॥ तत्रश्चेति ॥ हेतूक्तितदन्किरू-

१ 'पहुतिश्च सा'.

[ अपहुत्यलंकारः ११

आन्तापह्नुतिरन्यस्य शङ्कायां आन्तिवारणे । तापं करोति सोत्कम्पं ज्वरः किं न सखि स्मरः ॥ २९ ॥ अत्र तापं करोतीति स्मरवृत्तान्ते कथिते तस्य ज्वरसाधारण्यादजुबुच्चा सख्या ज्वरः किमिति पृष्टे न सखि स्मर इति तत्त्वोत्तरण आन्तिवारणं कृतम्। यथावा—

नागरिक समधिकोन्नतिरिह महिपः कोऽयमुभयतःपुच्छः ।
निह निह करिकलभोऽयं शुण्डादण्डोऽयमस्य न तु पुच्छम् ॥
इदं संभवद्घान्तिपूर्विकायां आन्तापह्नुताबुदाहरणम् ॥
किल्पतआन्तिपूर्वो यथा—

जटा नेयं वेणीकृतकचकलापो न गरलं गले कस्तूरीयं शिरसि शशिलेखा न कुसुमम् । इयं भूतिनांङ्गे प्रियविरहजन्मा धवलिमा पुरारातिश्रान्त्या कुसुमशर किं मां प्रहरसि ॥ अत्र कल्पितश्रान्तिर्जटा नेयमित्यादिनिषेधमात्रोङ्गेया पूर्वप्रश्नाभावात् । दण्डी त्वत्र तत्त्वाख्यानोपमेत्युपमाभेदं मेने ।

पभेदादित्यर्थः । पूर्वापद्भतिवच्छदापद्भतिवत् द्वेविध्यं शुद्धपर्यस्तापद्धतिर्हेतुपर्यस्ता-पहुतिरित्येवं द्विप्रकारत्वम् ॥ भ्रान्तापह्नतिरिति ॥ अन्यस्य प्रकृतस्य भ्रान्ति-वारणे वार्यतेऽनेनेति वारणम् । तथाच भान्तिवारके तत्त्वाख्याने सतीत्यर्थः । आन्तं भ्रमः । भावे क्तः । भ्रान्खपह्नतिरित्थर्थः । एवंच तत्त्वकथनहेतुकभ्रान्ति-विषयनिषेधो भ्रान्तापह्नतिरिति लक्षणं बोध्यम् । तस्य तापकारित्वरूपस्मरवृत्ता-न्तस्य ॥ नागरिकेति ॥ नगरे भवो नागरिकस्तं प्रति प्रामीणस्य प्रश्नः । सम-धिका पश्चन्तरेभ्य उन्नतिरुचता यस्यैवंभूत उभयतो मुखपृष्ठभागयोः पुच्छं य-स्यैवंभूतश्च कोऽयं महिष इति । नहिनहीत्युत्तरम् । महिष इत्यनुपज्यते । अयं करिकलभः करिशावकः । 'कलभः करिशावकः' इति कोशात्कलभ इत्येतावतैव सिद्धे करिपद्मुत्कृष्टकरिवोधार्थम् । अयमस्य शुण्डादण्डो न तु पुच्छिमिति । पुच्छ इति पाठोऽप्यर्धर्चादित्वात्साधुरेव । अप्रयुक्तत्वं तु तत्र परं विचार्यमिति पूर्वोदाहरणे संदेहरूपभ्रान्तिविषयज्वरत्वापह्नवः । ज्वरः किमिति प्रश्लेन तद्वि-षयसंदेहावगमात् । इह तु महिषत्वनिश्चयरूपभ्रान्तिविषयस्य महिषत्वस्येति ततो भेदः ॥ जटेति ॥ विरहिण्या इयमुक्तिः । हे कुसुमशर, पुरारातेईरस्य भ्रान्सा मां किं कुतः प्रहरिस पीडयिस । यतो नेयं जटा किंतु वेणीकृतः अवेणी वेणी संपद्यते तथा कृतः कचानां कलापः, तथा गले गरलं नैतद्पि त्वियं कस्त्री, एवं शिरसि नैषा शशिलेखा किंतु कुसुमम्, तथा इयमक्ने भूतिर्भस्म न भवति परंतु थ्रियविरहाज्जनम यस्यैवंभूतो धवलिमा पाण्डिमेति । 'अवज्यी बहुवीहिर्व्य-धिकरणो जन्मायुत्तरपदः' इति वामनसूत्राह्मधिकरणोऽपि बहुव्रीहिर्न दुष्टः ॥ किंपतेति ॥ कुषुमशरे उत्प्रेक्षितेत्यर्थः ॥ निषेधमात्रोन्नेयेति ॥ निषेधस्य

यदाह—

न पद्मं मुखमेवेदं न भृङ्गो चक्षुषी इमे । इति विस्पष्टसाददयात्तत्वाख्यानोपमा मता ॥ २९ ॥ इति ॥

छेकापह्नतिरन्यस्य शङ्कातस्तर्थ्यनिह्नवे । प्रजल्पन्मत्पदे लग्नः कान्तः किं न हि नूपुरः ॥ २९ ॥

कस्यचित्कंचित्प्रति रहस्योक्तावन्येन श्रुतायामुक्तेस्तात्पर्यान्तरवर्णनेन तथ्य-निह्नवे छेकापह्नतिः । यथा नायिकया नर्मसर्खी प्रति प्रजल्पनमत्पदे लग्न इति

स्वनायकवृत्तान्ते निगद्यमाने तदाकण्यं कान्तः किमिति शङ्कितवतीमन्यां

प्रति नुपुर इति निह्नवः।

सीत्कारं शिक्षयित वणयत्यधरं तनोति रोमाञ्चम्। नागरिकः किं मिलितो नहि नहि सिख हैमनः पवनः॥ इदमर्थयोजनया तथ्यनिह्नवे उदाहरणम्।

प्रसक्तिपूर्वकत्वादिति भावः । मेने इत्यस्वरसोद्भावनम् । तद्वीजं तूपमाबोधकस्य-वादेरसत्त्वेऽपि तदुपगमे रूपकस्याप्युपमात्वं स्यादिति स्पष्टमेव ॥ २८ ॥ छेकापहृतिरिति ।। छेको विदम्धस्तत्कृतापहृतिइछेकापहृतिरिति लक्ष्यनिर्देशो वाक्यान्यथायोजनहेतुकः शङ्किततात्त्विकवस्तुनिषेध इति लक्षणम् । अन्यस्य शङ्कात इत्यन्यशङ्काया निवर्तनीयत्वेन हेत्रतया व्यपदेशः । संतापात्स्नातीतिवत् । अत्रच गुद्धापद्वतिवारणायाद्यं विशेषणम् । 'मम किल श्रुतिमाह तद्र्थिकाम्' इल्यधिकताद्रप्यरूपकवारणाय शिक्कतेति । नचानेनैव गुद्धापह्नुतिवारणाद्वाक्येला-दि व्यर्थमिति वाच्यम् । 'कस्य वा न भवेद्रोषः प्रियायाः सत्रणेऽधरे । समृतं पद्ममाघ्रासीर्वारितापि मयाधुना ॥' इति व्याजोक्तावतिप्रसङ्गवारकत्वेन तत्सार्थ-क्यात् । यद्वक्ष्यति । छेकापह्नतेरस्याश्चायं विशेषो यत्तस्यां वचनस्यान्यथानयने नापहवः । अस्यामाकारस्य हेत्वन्तरवर्णनेन गोपनिमति तथ्यनिह्नवे इति तात्वि-कनिषेधे इत्यर्थः । नूपुरो मजीरः । 'मजीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । नर्मस-खी कीडासखी । अत्र कान्तपरायाः 'प्रजल्पन्मत्पदे लग्नः' इत्युक्तेर्नूपुरतात्पर्य-कत्ववर्णनेन कान्तत्वापह्नवो मुख्यो नुपुराभेदप्रतिपत्तिस्तु तदङ्गमिति बोध्यम्॥ सीत्कारमिति॥ सीत्कारं तद्नुकारिमुखध्वनिं शिक्ष्यति, अधरमधरोष्ठं त्रणयति वणोऽस्यास्तीति वणी वणिनं करोतीत्यर्थे 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्। तथा रोमाञ्चं तनोति विस्तारयतीति वाक्यत्रयं नागरिकाभिप्रायेण प्रियसखीं प्रति कया-प्युक्तं तदाकर्ण्यं नागरिकः किं मिलित इति शङ्कितवतीमन्यां प्रति तच्छङ्कानिवृत्तये नहीत्यादिना हैमन्तिकपवनपरत्ववर्णनेन तात्विकस्य नागरिकस्यापह्वः । सी-त्कारशिक्षादिकर्तृत्वस्य नागरिक इव पवनेऽपि सत्त्वात् । तदाह-अर्थयोजन-येति ॥ विविक्षताविविक्षतसाधारणस्यार्थस्याविविक्षतार्थसंविन्धत्ववर्णनयेस्यर्थः ।

१ 'स्तस्य निह्नवे'.

शब्दयोजनया यथा-

पद्मे त्वन्नयने स्मरामि सततं भावो भवत्कुन्तले
नीले मुद्धाति किं करोमि महितैः कीतोऽस्मि ते विश्रमैः ।
इत्युत्स्वप्नवचो निश्चम्य सरुपा निर्भिर्तितो राधया
कृष्णस्तत्परमेव तद्यपदिशन्कीडाविटः पातु वः ॥
सर्वमिदं विषयान्तरयोजने उदाहरणम् । विषयैक्येऽप्यवस्थाभेदेन योजने
यथा—

वदन्ती जारवृत्तान्तं पत्यौ धूर्ता सखीधिया। पतिं बुद्धा सखि ततः प्रबुद्धास्मीत्यपुरयत्॥ २९॥

कैतवापह्नतिर्व्यक्ती व्याजाद्यैर्निह्नतेः पदैः। निर्यान्ति स्मरनाराचाः कान्ताद्यपातकैतवात् ॥ ३०॥

इदमित्युदाहरणमिति च जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । हेमन्तशब्दात् 'तत्र भवः' इत्यर्थे 'सर्वत्राण् च तलोपश्च' इत्यणि तलोपे च हैमन इति रूपसिद्धिः । प्रजल्प-त्रित्युदाहरणे एकस्य वाक्यस्यान्यथा योजनिमह त्वनेकेषामिति भेदः ॥ शब्द-योजनयति ॥ अर्थभेदेऽपि शब्दश्लेषमात्रेणेखर्थः ॥ पद्मे इति ॥ कीडाया विटो भोक्ता कृष्णो वो युष्मान् पातु रक्षत्विति संबन्धः । कीदशः । इत्युत्स्वप्रवचः खप्रे उद्गतमुत्खप्नं वचनमर्थात्कृष्णस्यानुभाष्यानूदा राधया निर्भर्तितः संस्तद्वचनं तत्परमेव राधापरमेव व्यपदिशन्कथयन् । इति किम् । हे पद्मे रमे, त्वन्नयने सततं स्मरामि । नीले भवत्याः कुन्तले केशपाशे मम भावोऽन्तःकर-णवृत्तिरूपः मुह्यति मोहं प्राप्नोति । ननु चित्तासङ्गो निवर्यतां तत्राह । किंक-रोमि अकिंचित्करोऽस्मि । यतस्ते तव महिनैः पूज्यैर्विभ्रमैर्विलासैः कीतोऽस्मि मूल्येन गृहीतोऽस्मीति । किंकरोऽस्मीति कचित्पाठो युक्ततरः । तत्र चास्मी-त्यहमर्थकमन्ययम् । अहं किङ्करो दासः कीतोऽस्मीलर्थः । राधापरत्वे तु । हे राघे, इत्यर्थात्संबोधनम् । पद्मरूपे त्वन्नयने स्मरामीति विशेषः । शेषं पूर्ववत् । क्षत्र रमासंबोध्यकस्तन्नयनस्मरणरूपो न वाक्यार्थोऽपि तु त्वत्संबोध्यकः पद्मरू-पत्वन्नयनस्मरणरूप इत्यपहृवस्तत्परमेव तद्वयपदिशनित्यनेन प्रकाश्यते । नचा-त्रार्थस्य रमाराधासाधारणत्वमि तु पद्मे इति लिङ्गवचनश्लिष्टशब्दयोजनैवेति॥ विषयान्तरेति ॥ विवक्षितविषयभिन्नेत्यर्थः । अवस्था जाप्रत्स्वप्नादिरूपा ॥ वदन्तीति ॥ पत्थौ भर्तरि सखीधिया सखीश्रमेण जारवृत्तान्तं खकामुकवार्ती बदन्ती धूर्ता काचित्पतिं बुद्धा सखीत्यादिवाक्यशेषमपूरयत्पूरितवती । सखीति पुनः संबोधनमप्रतार्थतासूचनाय। तत उक्तवृत्तान्तानन्तरं प्रवुद्धा जागरणवती। अत्र नासौ जाप्रदवस्थावृत्तान्तः किंतु स्वाप्रिक इत्यवस्थाभेदयोजनयापह्ववः सखी-स्यादिवाक्यशेषेण प्रकाश्यते ॥ २९ ॥ कैतवापह्नतिरिति लक्ष्यनिर्देशः । व्याजाद्यैः

१ 'व्यक्ते व्याजाद्योर्नेह्रवे'.

अत्रासत्यत्वाभिधायिना कैतवपदेन नेमे कान्ताकटाक्षाः किंतु स्मरनाराचा इत्यपह्नवः प्रतीयते ॥

> रिक्तेषु वारिकथया विषिनोदरेषु मध्याह्मजृम्भितमहातपतापतप्ताः । स्कन्धान्तरोत्थितद्वाग्निशिखाच्छलेन जिह्नां प्रसार्य तरवो जलमर्थयन्ते ॥ ३० ॥

> > उत्प्रेक्षालंकारः १२

संभावना स्यादुत्प्रेक्षा वस्तुहेतुफर्लांत्मना । उक्तानुक्तास्पदाद्यात्र सिद्धाऽसिद्धास्पदे परे ॥ ३१ ॥ धूमस्तोमं तमः शङ्के कोकीविरहञ्जष्मणाम् ।

पदैनिंद्वतेर्व्यक्तौ अभिव्यक्तौ सत्यां कैतवापहृतिरिति व्यवहर्तव्यमित्यर्थः। कैत-वेनापहृतिरिति व्युत्पत्तेः। व्याजाद्येरित्यनेन मिपकपटच्छलच्छद्मकैतवादयो गृह्यान्ते। एवंच कैतवादिपदव्यङ्गयापहृतित्वं लक्षणं वोध्यम्। नाराचा बाणाः।
हक्पाताः कटाक्षाः। अपहृवो निषेधः॥ प्रतीयत इति ॥ असत्यत्वस्य विषयबाधाधीनत्वादिति भावः॥ रिक्तेष्विति ॥ ग्रीष्मवर्णनम् । तरवो वृक्षा वारिणो जलस्य कथया वार्तयापि रिक्तेषु ग्रून्येषु विपिनस्यारण्यस्योदरेषु मध्यप्रदेशेषु जलमर्थयन्ते प्रार्थयन्ते। कीहशाः। मध्याहे जृम्भितः प्रवृद्धो यो महानातप्
उष्णं तस्य तापस्तपनं तेन तप्ताः संतप्ताः। किं कृत्वा। स्कन्धान्तरात्प्रकाण्डाभ्यन्तरादृत्थितो यो दवाग्निर्दावानलस्तस्य या शिखा ज्वाला तस्याः छलेन।
जिह्नां प्रसार्थेति। 'अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखाविधस्तरोः।' इत्यभरः। अत्र नेयं दवाग्निशिखा अपितु जिह्नेति च्छलपदात्प्रतीयते, अत्र चानभिहितवाच्यतादोषनिरासाय कथयापि वनोदरेष्विति पठनीयम्॥ ३०॥ इत्यलंकारचन्द्रिकायामपहृतिप्रकरणम्॥ १९॥

उत्प्रेक्षां लक्षयति—संभावनेति ॥ अत्रोत्प्रेक्षेत्यनन्तरं सा च त्रिषेत्यध्याहार्यम् । तथाच संभावना उत्प्रेक्षापद्वाच्या स्यात्सा च वस्तुहेतुफलरूपेण त्रिधेत्यर्थः। वस्तुहेतुफलानां च संभावनाधर्मत्वं स्विविधेयकत्वसंवन्धेन । तेन वस्तुहेतुफलिविधेयकत्वेनेति पर्यवसितार्थः। वस्तुत्वं च हेतुत्वेन फलत्वेन वा विवक्षितं
यत्तिद्भितत्वम् । नातो वस्तुत्वस्य केवलान्वियतया विभागसंगितः ॥ उक्तेत्यादि ॥ अत्र आसामुत्प्रेक्षाणां मध्ये आद्या वस्तूत्रेक्षा । उक्तं चानुक्तं नोक्तानुके आस्पदे यस्या इति विष्रहः। आस्पदं चोत्प्रेक्षाया धर्मिरूपो विषयः। सिद्धासिद्धेत्यत्र विष्रहः पूर्ववत्॥ धूमेति॥ तमः कोकीविरहग्रुष्मणां धूमस्तोमं शक्के

१ 'फलात्मता'. २ 'स्पदार्थाश्च'. ३ 'विरहसोध्मणम्'.

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्चनं नभः ॥ ३२ ॥
रक्तो तवाङ्गी मृदुलो भ्रवि विक्षेपणाञ्चवम् ।
त्वन्मुखाभेच्छया नूनं पंद्यवैर्रायते शशी ॥ ३३ ॥
मध्यः किं कुचयोर्धृत्ये वद्धः कनकदामभिः ।
प्रायोऽच्जं त्वत्पदेनैक्यं प्राप्तुं तोये तपस्यति ॥ ३४ ॥

अन्यधर्मसंबन्धनिमित्तेनान्यस्थान्यतादात्म्यसंभावनमुत्प्रेक्षा । सा वस्तु-

हेतुफलात्मतागोचरत्वेन त्रिविधा । अत्र वस्तुनः कस्यचिद्वस्त्वन्तरतादात्म्य-संभावना प्रथमा स्वरूपोत्प्रेक्षेत्युच्यते । अहेतोईंतुभावेनाफलस्य फलत्वेनो-इल्पन्वयः । कोकस्य चक्रवाकस्य स्त्री कोकी तस्या विरहरूपाणां शुष्मणामग्नीनां संबन्धिनं धूमसमूहमिलर्थः ॥ लिम्पतीवेति ॥ अत्र तम इति नभ इति च कर्तृपदम् । रक्तावित्यादि दयितांत्रति नायकस्योक्तिः । तव मृदुलौ सुकुमारावङ्गी चरणौ ध्रवं भ्रवि विक्षेपणाद्धेतो रक्तवर्णाविति ॥ त्वनमखेति ॥ पद्मगतायास्त्व-न्मुखकान्तेरिच्छया । हेतुनेलर्थः ॥ वैरायत इति ॥ वैरं करोतीलर्थे 'शब्द-वैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे' इति क्यङ् ॥ मध्य इति ॥ मध्यभागः कुच-योर्घृत्यै धारणार्थे कनकस्य दामभी रज्जुभिरिति निगीर्याध्यवसानरूपातिशयोत्तया वलीभिर्वद्धः किमिल्यर्थः ॥ प्राय इति ॥ अञ्जंकर्त् । प्रायो बहुधा त्वचरणेन सहैक्यं प्राप्तुं तोये जले तपस्यति । तपश्चरतीत्यर्थः । 'कर्मणो रोमन्यतपोभ्यां वर्तिचरोः' इति क्यङ् । 'तपसः परसौपदं च' इति परसौपदम् । लक्षणं परि-फुरते अन्यधर्मेति ॥ अन्यस्य विषयिणो यो धर्मस्तत्संवनधरूपेण निमित्ते-नान्यस्यान्यविषयकमन्यस्य विषयिणस्तादात्म्येन संभावनिमत्यर्थः । अन्यस्येति षष्ट्रयर्थो विषयता धर्मितारूपा। विषयिण इति षष्ट्यर्थस्तु विशेषणतारूपा विष-यता । अन्यत्वेनोत्कीर्तनं च संभावनाया आहार्यतासूचनाय । तथाच विषयि-निष्ठधर्मसंबन्धप्रयुक्तं विषयधर्मिकं तादातम्यसंसर्गेण विषयिविधेयकमाहार्यसंभा-वनमुत्प्रेक्षेति पर्यवसितम् । तनिष्टधर्मसंवन्धप्रयुक्तमाहार्यतत्संभावनमिति तु निष्कर्षः । इतरांशस्याव्यावर्तकतया खरूपकथनमात्रपरत्वात् । मुखं चन्द्रं म-न्य इत्युत्प्रेक्षायां चन्द्रनिष्ठाह्वादकत्वादिधर्मसंबन्धप्रयुक्तं मुखे चन्द्रसंभावनमाहा-र्यमस्तीति लक्षणसमन्वयः । वाधाद्यभावदशायां तु जायमाना मुखादौ चन्द्रादि-संभावनोत्प्रेक्षेति तद्वारणायाहार्येति । एतेन 'विरक्तसन्ध्यापरुषं पुरस्ताद्यथा र-जः पार्थिवमुजिहीते । शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः॥' इत्यत्र रजोभरोद्गमनरूपससैन्यप्रत्यद्गन्तृधर्मसंबन्धप्रयुक्तायां भरते तत्संभावना-

यामिष नातिव्याप्तिः । तस्या अनाहार्यत्वात् 'संभावनं यदीत्थं स्यादित्यूहोऽन्य-स्य सिद्धये' इति वक्ष्यमाणसंभावनालंकारिवषये 'यदि शेषो भवेद्वक्ता कथिताः स्युर्गुणास्तव' इत्यादावतिव्याप्तिवारणाय प्रयुक्तान्तम् । 'सर्वातिशायिसौन्दर्ये

१ 'पद्म वैरायते'.

त्प्रेक्षा हेत्त्प्रेक्षा फलोत्प्रेक्षेत्युच्यते । अत्र आद्या स्वरूपोत्प्रेक्षा उक्तवि-पयाऽनुक्तविषया चेति द्विविधा । परे हेतुफलोत्प्रेक्षे सिद्धविषयासिद्ध-विषया चेति प्रत्येकं द्विविधे । एवं पण्णामुत्प्रेक्षाणां धूमस्तोमेत्यादीनि क्रमेणोदाहरणानि । रजनीमुखे सर्वत्र विसत्वरस्य तमसो नैल्यद्दष्टिप्रतिरोध-कत्वादिधर्मसंबन्धेन गम्यमानेन निमित्तेन सद्यः प्रियविघटितसर्वदेशस्थि-तकोकाङ्गनाहृद्पगतप्रज्वलिष्यद्विरहानलधूमस्तोमतादात्म्यसंभावनास्यस्पो-त्प्रेक्षा तमसो विषयस्योपादानादुक्तविषया । तमोव्यापनस्य नभःप्रभृतिभूष-र्यन्तसकलवस्तुसान्द्रमलिनीकरणेन निमित्तेन तमःकर्तृकलेपनतादाहम्योह्ये-क्षा । नभःकर्तृकाञ्जनवर्पणतादात्म्योत्प्रेक्षा चानुक्तविषया स्वरूपोत्प्रेक्षा उभय-त्रापि विषयभूततमोव्यापनस्यानुपादानात् ॥ नन्वत्र तमसो व्यापनेन निमि-त्तेन लेपनकर्तृतादात्म्योत्प्रेक्षा नभसो भूपर्यन्तं गाढनीलिमन्याप्तत्वेन निमि-त्तेनाञ्जनवर्षणकर्तृतादात्म्योत्प्रेक्षा चेत्युत्प्रेक्षाद्वयमुक्तविषयमेवास्तु । मैवम् । लिम्पति वर्षतीत्याख्यातयोः कर्तृवाचकत्वेऽपि 'भावप्रधानमाख्यातम्' इति स्मृतेर्घात्वर्थिकियाया एव प्राधान्येन तदुपसर्जनत्वेनान्वितस्य कर्तुरुत्येक्षणी-यतया अन्यत्रान्वयासंभवात् । अतएव आख्यातार्थस्य कर्तुः क्रियोपसर्जनत्वे-नान्यत्रान्वयासंभवादेवास्योपमायामुपमानतयान्वयोऽपि दण्डिना निराकृतः।

शक्के सत्यवतो मुखम् । येन सा मृगशावाक्षी सावित्री तरलीकृता ॥' इत्यादाव-तिप्रसङ्गवारणाय तित्रष्ठेति संभाव्यमानवृत्तित्वं धर्मविशेषणम् । तत्र सावित्रीत-रलीकारकत्वरूपो धर्मो मुखबृत्तिर्न तु संभाव्यमानवृत्तिरिति नातिप्रसङ्ग इति दिक् । वस्तुहेतुफलात्मता वस्तुहेतुफलतादात्म्यम् । ननु संबन्धान्तरेणोत्प्रेक्षाया असंग्रह इति चेत्र । सर्वत्राभेदेनैबोत्प्रेक्षणमिति प्राचीनमतानुसारेणेत्थमभिधा-नादेतत्स्चनायैव लक्षणेऽत्र च तादात्म्योपादानमिति ॥ नन्वलंकारसर्वस्वकारा-दिभिः खरूपोत्प्रेक्षेति व्यवहृतायास्तुरीयाया अपि सत्त्वात्रिविधेत्ययुक्तमित्याश-क्याह-अत्रेति ॥ आसां मध्ये या प्रथमा वस्तूत्प्रेक्षा सैव खरूपोत्प्रेक्षेत्युच्य-त इल्रथः ।। विस्तत्वरस्येति ।। प्रसरणशीलस्येल्रथः । तमस इति संभावने-त्यनेनान्वेति । षष्ट्यथां विषयता । तमोविषयेत्यर्थः । प्रतिरोधकत्वादीत्यादिपदा-त्प्रसरणशीलत्वस्य संप्रहः । प्रियैः पतिभिर्विघटिता वियुक्ताः । व्यापनस्येति प-ष्ट्रयन्तस्य पूर्ववदुत्प्रेक्षापदेनान्वयः । एवमग्रेतनस्य तमस इत्यस्यापि ॥ अनु-पादानादिति ॥ विषयिवाचकाभ्यां लिम्पतिवर्षतिभ्यामन्येनानुपादानादिल्यर्थः। यथाश्रुते ताभ्यामेव साध्यावसानलक्षणयोपादानादसंगतेः ॥ उक्तविषयमेवे-ति ॥ सक्रदुचारिताभ्यां लिम्पतिवर्षतिभ्यां शक्तया लेपनवर्षणयोः साध्यवसान-लक्षणया च साधारणधर्मपुरस्कारेण व्यापनस्य चोपस्थापनस्य युगपदृत्तिद्वयिव-रोधेनासंभवादित्याशयः । स्मृतेनिंहक्तस्मृतेः । उत्प्रेक्षणीयतया उत्प्रेक्षाविषयत-या अन्यत्रोत्प्रेक्षायाम् ॥ अन्वयासंभवादिति ॥ निराकाहृत्वादिति भावः । अत एवाख्यातार्थस्य कर्तुः कियोपसर्जनत्वेनान्यत्रान्वयासंभवादेव कचिदतए-

'कर्ता यद्यपमानं स्वाद्यग्भूतोऽसो क्रियापदे। स्वक्रियासाधनव्ययो नालमन्यद्वयपेक्षितुम् ॥' इति ।

केचित्तु तमोनभसोविषयथोस्तत्कर्तृकलेपनवर्षणस्वरूपधर्मोत्प्रेक्षेत्राहुः। त-नमते स्वरूपोत्प्रेक्षायां धर्म्युत्प्रेक्षा धर्मोत्प्रेक्षा चेत्रेवं द्वैविध्यं द्रष्टव्यम्। चर-णयोः स्वतःसिद्धे रिक्तमिन वस्तुतो विक्षेपणं न हेतुरित्यहेतोस्तस्य हेतुत्वेन संभावना हेतृत्प्रेक्षा विक्षेपणस्य विषयस्य सत्त्वात्सिद्धविषया। चन्द्रपद्मवि-रोधे स्वाभाविके नायिकावदनकान्तिप्रेप्सा न हेतुरिति तत्र तद्धेतुत्वसंभावना हेतृत्प्रेक्षा वस्तुतस्तदिच्छाया अभावाद्सिद्धविषया। मध्यः स्वयमेव कुचौ धरित न तु कनकदामबन्धत्वेनाध्यवसिताया विख्नयशालिताया वलात् इति मध्यकर्तृककुचधतेस्तत्फलत्वेनोत्प्रेक्षा सिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा। जलजस्य

वेत्युत्तरमयमेव व्याख्यानप्रन्थः प्रमादलिखितो दश्यते ॥ न्यग्भृतेति ॥ गुण-भूत इसर्थः ॥ स्विक्रियेति ॥ कियां प्रति साधनत्वेनान्वित इसर्थः । न्यपे-क्षित्रमाकाक्कितुं नालं न समर्थः । तथाच निराकाक्कत्वादुपमानत्वेनान्वयो न सं-भवतीति भावः । एतेन तमसि छेपनकर्तृत्वमुत्प्रेक्ष्यमिखळंकारसर्वस्वकारमतम-पास्तम् । तस्यापि कर्तृविशेषणत्वाद्विवक्षितविवेकेन लेपनस्यैवोत्प्रेक्ष्यत्वाच । ए-वंच प्रधानभूतलेपनिकयागोचरा भावनैव निगीर्णव्यापनिवषयेति सिद्धम्। नच युगपदृत्तिद्वयविरोधः शङ्कचस्तदनभ्युपगमात् । केचिदिति मत इति चाखरसो-द्भावनम्। तद्वीजं तु तमोनभसोः कर्तृत्वेन विषयत्वेन च वारद्वयमन्वयक्केशः। तथा धर्म्युत्प्रेक्षा सा धर्मप्रयुक्ता धर्मोत्प्रेक्षा तु तत्सहचरितधर्मसंवन्धप्रयुक्तेति लक्षणान-नुगमः । नच तन्निष्ठतत्समानाधिकरणान्यतरत्वेन धर्मनिवेशानाननुगम इति वाच्यम् । सर्वत्र सादृश्यनिमित्ताया एवोत्प्रेक्षायाः संभवेनान्यतरत्वादिनिवेशप्र-युक्तगौरवस्यानुपादेयत्वादिति ॥ हेतुत्वेनेति ॥ हेतुरूपतयेत्यर्थः । हेतुत्वसं-भावनाहेतुरूपतासंभावना फलत्वेन फलरूपतया । एवमग्रेऽपि वोध्यम् ॥ अ-थोदाहृतासूत्प्रेक्षासु वोधप्रकारः प्रदर्श्यते । तत्र धूमस्तोमसिलादौ कोकाङ्गनावि-रहानलसंबन्धिधूमस्तोमाभिन्नतमोविषया संभावनेति बोधः। नामार्थयोरभेदा-न्वयात् । एवं 'सुखं चन्द्रं मन्ये' इत्यादाविष । नूनं मुखं चन्द्र इत्यादौ तु चन्द्र-प्रकारकसंभावनाविषयो मुखमिति वोधः । मुखविषया चन्द्रप्रकारिका च संभा-वना तादात्म्यसंसर्गिकैव तथानुभवाचमत्कारप्रयोजकस्य संसर्गान्तरस्याभावा-च । नचैवं चन्द्रत्वप्रकारिका तस्य चन्द्रोपसर्जनत्वात् । एवं ध्रुवेवादिशब्दसम-भिन्याहारेऽपि बोध्यम् । लिम्पतीवेखनुक्तविषयोत्प्रेक्षोदाहरणे तु लिम्पतिना साध्यवसानलक्षणयां लेपनव्यापनोभयसाधारणेन सान्द्रमलिनीकारकत्वादिना रूपेणोपस्थापिते तमोव्यापने लेपनसंभावनान्वयात्सान्द्रमलिनीकारकतमःकर्तृ-काङ्गकर्मकलेपनप्रकारकसंभावनाविषय इति वोधः । व्यञ्जनयोपस्थिते व्यापने तादशसंभावनान्वय इति प्रदीपकृतः । एवं वर्षतीत्यादाविप बोध्यम् । विक्षेप-णाद्भवमिलादिहेतूत्प्रेक्षोदाहरणे हेतुः पश्चम्यर्थः । तत्र चाभेदेन प्रकृलर्थान्वयः ।

जलावस्थितेरुद्वासतपस्त्वेनाध्यवसितायाः कामिनीचरणसायुज्यप्राप्तिनं फल-मिति तस्या गगनकुसुमायमानायास्तपःफल्वेनोत्प्रेक्षणादसिद्धविषया फलो-त्प्रेक्षा। अनेनैव क्रमेणोदाहरणान्तराणि।

वालेन्दुवकाण्यविकासभावाद्यभुः पलाशान्यतिलोहितानि । सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥

अत्र पलाशकुसुमानां वक्रत्वलोहितत्वेन संबन्धेन निमित्तेन सद्यःकृतन-खक्षततादात्म्यसंभावना उक्तविषया स्वरूपोत्प्रेक्षा ॥

हेतोश्र खप्रयोज्याश्रयत्वसंबन्धेन रक्तत्वविशिष्टे तस्य प्रकारतासंबन्धेन संभाव-नायां तस्याश्च विषयतया चरणयोरन्वयः । तथाच भूम्यधिकरणकविक्षेपणाभि-त्रहेतुकरक्तप्रकारकसंभावनाविषयावङ्गी इति बोधः । नच तादात्म्यसंबन्धेन हे-तुविधेयकत्वाभावान्नेयं हेतूत्रेक्षा स्यात्कित तादातम्येन तथाविधरक्तस्वरूपोत्रे-क्षेविति वाच्यम् । विवक्षितविवेकेन विक्षेपणे हेत्वभेदस्योत्प्रेक्षणीयतया विक्षेपणं प्रति विशेष्यभूतस्य।पि हेतोविंधेयत्वोपगमात् । मुखं चन्द्र इत्यादिरूपक इवानु-योगित्वमुखस्याभेदस्य विक्षेपणसंसर्गत्वाभ्युपगमेन च विक्षेपणे हेत्वभेदभानसं-भवात् । हेतुविशिष्टस्वरूपोत्प्रेक्षाया मुखतः प्रतीताविप विवक्षावशेन हेतूत्प्रेक्षा-त्वेनैव व्यपदेश: । यथा 'दध्ना जुहोति' इत्यत्र मुखतो दिधविशिष्टहोमप्रतीता-विष विवक्षितविवेकेन होमे दिधविधित्वव्यपदेश इति बोध्यम् । नच स्वप्रयो-ज्यत्वसंबन्धेन स्वप्रयोज्याश्रयत्वसंबन्धेन वा हेतुरूपधर्मोत्प्रेक्षेव रक्तादौ सीिक-यतां कृतमीदशकल्पनाक्केशेनेति वाच्यम् । धर्मोत्प्रेक्षाङ्गीकारे दूषणस्य प्रागेवावे-दितत्वात् । अतएव 'हर्षाह्रमा (मन्ये) लिलतत्तु ते पादयोः पद्मलक्ष्मीः' इति हेतूत्प्रेक्षामुदाहतवतः प्रकाशकृतोऽपि तत्र हर्षहेतुकलगनतादात्म्यसंभावनमे-व खाभाविके लगने ऽभिमतम् । अस्मदुक्तरीत्या तु लक्ष्मीरूपे विषये यथोक्त-हर्षहेतुकलगनतादात्म्यसंभावनमुचितम् । लगनस्य धर्म्युपसर्जनत्वेन संभावना-यामन्वयायोगादिति ध्येयम् । एवं त्वन्मुखाभेच्छया इत्यसिद्धविषयहेतूत्र्रेक्षाया-मपि बोध्यम् । विषयसिद्धत्वासिद्धत्वाभ्यां वोधे विशेषाभावात् । मध्यः किमि-त्यादिफलोत्प्रेक्षास्थले फलं चतुर्थ्यर्थः । तत्र चाभेदेन प्रकृत्यर्थान्वयः पूर्ववत् । फलस्य च प्रयोजकत्वसंसर्गेण वद्धत्वे तद्वारकेन तेनैव वद्धे वान्वयस्तत्तादातम्य-संसर्गकसंभावनाया मध्ये विषयतया । एवंच कुचधरणाभिन्नफलककनकदामक-रणकवद्धत्वाश्रयसंभावनाविषयो मध्य इति वोधः । एवं प्रायोऽव्जमित्यादाविष फलं तुमुनोऽर्थ इति पूर्ववदेव बोधः फलोत्प्रेक्षात्वं चोपद्शितरीत्योपपादनी-यमिति बहुवक्तव्येऽपि विस्तरभयादुपरम्यते ॥ वालेन्द्वकाणीति ॥ न वि-द्यते विकासो येषां तान्यविकासानि तेषां भावाद्विकासरहितत्वाद्धेतोर्बाछेन्द्रवत् द्वितीयाचन्द्रवद्वकाणि तथातिशयेन लोहितान्यारक्तानि पलाशानि पलाशाकुस-ःमानि वसन्तेन नायकेन समागमं प्राप्तानां वनस्थलीनामङ्गनानां सद्यस्तत्कालसं-

पूर्वोदाहरणे निमित्तभूतधर्मसंवन्धो गम्यः इह तूपात्त इति भेदः। नन्वि-वशब्दस्य सादृश्यपरत्वेन प्रसिद्धतरत्वादुपमैवास्तु । लिम्पतीवेत्युदाहरणे लेपनकर्तुरुपमानत्वाईस्य क्रियोपसर्जनत्ववदिह नखक्षतानामन्योपसर्जनत्व-स्योपमाबाधकस्याभावात् । उच्यते । उपमाया यत्र कचित्स्थितरिप नखक्षतैः सह वक्तं शक्यतया वसन्तनायकसमागतवनस्थलीसंबन्धित्वस्य विशेपण-स्यानपेक्षितत्वादिह तदुपादानं पलाशकुसुमानां नखक्षततादात्म्यसंभावना-यामिवशब्दमवस्थापयति । तथात्व एव तद्विशेपणसाफल्यात् । अस्ति च संभावनायामिवशब्दो दूरे तिष्ठन्देवदत्त इवाभातीति ॥

> पिनष्टीव तरङ्गाग्रैः समुद्रः फेनचन्दनम् । तदादाय करैरिन्दुर्लिम्पतीव दिगङ्गनाः ॥

भत्र तरङ्गाग्नैः फेनचन्दनस्य प्रेरणं पेपणतयोत्प्रेक्ष्यते । समुद्रादुत्थितस्य चन्द्रस्य प्रथमं समुद्रपूरे प्रसृतानां कराणां दिक्षु व्यापनं च समुद्रोपान्तफे-नचन्दनकृतलेपनत्वेनोत्प्रेक्ष्यते । उभयत्र क्रमेण समुद्रप्रान्तगतफेनचन्दनपु-श्लीभवनं दिशां धवलीकरणं च निमित्तमिति फेनचन्दनप्रेरणिकरणव्यापन-योविषययोरनुपादानादनुक्तविषये स्वरूपोत्प्रेक्षे । येषां तृपात्तयोः समुद्रच-नद्रयोरेव तत्कर्तृकपेपणलेपनरूपधर्मोत्प्रेक्षेति मतम् । तेषां मते पूर्वोदाहरणे धर्मिणि धर्म्यन्तरतादात्म्योत्प्रेक्षा । इह तु धर्मिणि धर्मसंसर्गोत्प्रेक्षेति भेदो-ऽवगन्तव्यः ॥

रात्रौ रवेर्दिवा चेन्दोरभावादिव स प्रभुः । भूमौ प्रतापयशसी सृष्टवान्सततोदिते ॥ रात्रौ रवेर्दिवा चन्द्रस्थाभावः सन्नपि प्रतापयशसोः सर्गे न हेतुरिति तस्य तद्धेतुत्वसंभावनासिद्धविषया हेतुत्प्रेक्षा ॥

विवस्ततानायिषतेव मिश्राः स्वगोसहस्रेण समं जनानाम् । गावोऽपि नेत्रापरनामधेयास्तेनेदमान्ध्यं खलु नान्धकारैः॥

भूतानि नखक्षतानीव वमुः शुशुभिर इत्यन्वयः ॥ पूर्वेति ॥ धूमस्तोममित्यत्रेत्यर्थः । ननु लोके संभावनायामिवशब्दो न दृष्ट इत्यत आह—अस्तिचेति ॥
पिनष्टीवेति ॥ समुद्रस्तरङ्गाणामप्रभागैः फेनरूपं चन्दनं पिनष्टीव । इन्दुस्ततफेनचन्दनमादाय करैः किरणैः दिश्रूपा अङ्गना लिम्पतीव । अनुलिम्पतीवेत्यर्थः॥
समुद्रोपान्तेति ॥ समुद्रस्योपान्ते तटे यत्फेनचन्दनं तत्कृतं यत्तासां दिशां
लेपनं तत्त्वेनेत्यर्थः । उभयत्र उभयोरुत्प्रेक्षयोः । येपामलंकारसर्वस्वकारादीनाम् ॥ रात्राविति ॥ स प्रकान्तः प्रभुभूपतिः भूमौ रात्रौ रवेरभावाद्धेतोरिव
दिवा चेन्दोरभावाद्धेतोरिव सततं निरन्तरमुदिते प्रतापयशसी सष्टवान् । निर्मितवानित्यर्थः । रक्तावित्युदाहरणे भावरूपो हेतुरिह त्वभावरूप इति भेदः ॥
विवस्वतेति ॥ विवस्रता सूर्येण स्तर्य गोसहस्रेण किरणसहस्रेण समं मिश्रा
मिश्रिता जनानां नेत्रापरनामधेया गावोऽप्यनायिषतेव नीता इव । यथा गोपा-

अत्र विवस्वता कृतं स्वकिरणैः सह जनलोचनानां नयनमसदेव रात्रावा-न्ध्यं प्रति हेतुरवेनोत्प्रेक्ष्यत इत्यसिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा ।

पूरं विधुर्वर्धयितुं पयोधेः शङ्केयमेणाङ्कमणि कियन्ति । पयांसि दोग्धि प्रियविष्रयोगे सशोककोकीनयने कियन्ति ॥

अत्र चन्द्रेण कृतं समुद्रस्य बृंहणं सदेव तदा तेन कृतस्य चन्द्रकान्तद्रा-वणस्य कोकाङ्गनावाष्पस्रावणस्य च फलत्वेनोत्प्रेक्ष्यत इति सिद्धविषया फ-लोत्प्रेक्षा।

रथस्थितानां परिवर्तनाय पुरातनानामिव वाहनानाम् । इत्पत्तिभूमौ तुरगोत्तमानां दिशि प्रतस्थे रविरुत्तरस्याम् ॥ अत्रोत्तरायणस्याश्वपरिवर्तनमसदेव फल्डत्वेनोत्प्रेक्ष्यत इत्यसिद्धविषया फ-लोत्प्रेक्षा । एता एवोत्प्रेक्षाः ।

> 'मन्ये शक्के ध्रुवं प्रायो नृनमित्येवमादिभिः। उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादशः॥'

लेन परकीयाभिगोंभिर्मिश्राः स्वीया गावो नीयन्ते तथा गोपदवाच्यत्वसाजात्ये-न मिश्रिता विवस्वतापि नीता इवेलर्थः। खलु संभावनायाम्। तेन नयनेन हेतुना इदमान्ध्यं न त्वन्धकारैरिखन्वयः । 'गौः स्वर्गे च वलीवर्दे रहमौ च कुलिशे पुमान् । स्त्रीसौरभेयीदग्वाणदिग्वागभूष्वप्सु भूमि च ॥' इति मेदिनी । अत्र चानायिषतेवेति विषयोत्प्रेक्षणपूर्वकं तस्य हेतुत्वेनोत्प्रेक्षणमिति पूर्वसमाद्धे-दः । एवं पूर्वत्र इच्छयेति गुणरूपो हेतुरिह तु कियारूप इलपि द्रष्टव्यम् । अत्र चोत्प्रेक्षाद्वयसत्त्वेऽपि हेतूत्प्रेक्षायाः प्राधान्यात्तत्त्वेनैव व्यपदेशो न तु स्वरूपोत्प्रे-क्षात्वेन । तस्या अङ्गत्वात् । एवमन्यत्रापि बोध्यम् ॥ पूरमिति ॥ अयं विधुश्व-न्द्रः पयोधेः पूरं वर्धयितुमेणाङ्कमाणं चन्द्रकान्तं कियन्ति लोकोत्तया अपरिमिता-नि पयांसि दोग्धीति राङ्के। तथा प्रियैः पतिभिर्विप्रयोगे वियोगे सित सशोकानां कोकाङ्गनानां नयने कर्मभूते । कियन्ति पयांसि दोग्धीति शङ्क इत्यन्वयः । दुहे-र्द्विकर्मकत्वादेणाङ्कमणिमिति द्वितीया । एवं नयने इत्यत्रापि । मध्यः किमित्यत्रैक-स्य बद्धत्वस्य फलत्वेन कुचधृतेरुत्प्रेक्षणमिह तु द्रावणस्रावणयोर्द्धयोः फलत्वेन प्रवर्धनस्य तदिति भेदः । वृंहणं वर्धनं तदा वर्धनकाले तेन चन्द्रेण ॥ रथस्थितानामिति ॥ रविः रथे स्थितानां नियुक्तानां पुरातनानां वा-हनानामश्वानां परिवर्तनायेव तुरगोत्तमानामुत्पत्तिभूमावुत्तरस्यां दिशि प्रतस्य इल्पन्वयः । प्रायोऽञ्जमिल्यत्रेक्यस्य गुणस्य फलत्वेनोरप्रेक्षणमिह तु प-रिवर्तनिकयाया इति भेदः । नन्वलंकारसर्वस्वकारादिभिरन्येपामपि जात्यादि-भेदानामुक्तत्वात्कुतस्तेन प्रदर्शिता इत्याशङ्क्याह—एता एवेति ॥ उक्तभेदा एवेत्यर्थः । उत्प्रेक्षा इलानन्तरं चमत्कारविशेषप्रयोजिका इति शेषः । तथाच इत्युत्प्रेक्षाव्यक्षकत्वेन परिगणितानां शब्दानां प्रयोगे वाच्याः । तेपाम-प्रयोगे गम्योत्प्रेक्षा ।

यथा—त्वत्कीर्तिर्भ्रमणश्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम् ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

# अतिशयोत्त्यलंकारः १३ रूपकातिशयोक्तिः स्यात्रिगीयोध्यवसानतः । पश्य नीलोत्पलद्धन्द्वान्तिःसरन्ति शिताः शराः ॥३५॥

विषयस्य स्वशब्देनोञ्जेखनं विना विषयिवाचकेंनैव शब्देन ग्रहणं विषय-निगरणं तत्पूर्वकं विषयस्य विषयिक्षपतयाध्यवसानमाहार्यनिश्चयस्तस्मिन्सति रूपकातिशयोक्तिः। यथा नीलोत्पलशारशब्दाभ्यां लोचनयोः कटाक्षाणां च ग्रहणपूर्वकं तद्रूपताध्यवसानम्। यथावा—

#### वापी कापि स्फुरति गगने तत्परं सूक्ष्मपद्या सोपानालीमधिगतवती काञ्चनीमन्द्रनीली।

जात्यादिभेदानां चमत्कारविशेषानाधायकत्वादप्रदर्शनमिति भावः ॥ इत्युत्प्रे-श्रेति ॥ इत्यनेनोत्प्रेक्षावोधकत्वेनेत्यर्थः ॥ त्वत्कीर्तिरिति ॥ अत्रानुपात्तस्व-र्गगमनविषया स्वर्गज्ञाप्रवेशतादातम्योत्प्रेक्षा, विशेषणीभृतभ्रमणश्रान्तत्वरूपहेतू-त्प्रेक्षा वा प्रतीयत इति वोध्यम् ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इति उत्प्रे-क्षाप्रकरणम् ॥ १२ ॥

विषयिरूपतयेति ॥ विषयिणो रूपमस्य तस्य भावस्तता तयेलर्थः । रूपं चा-भेदताद्रूप्यान्यतरत् ॥ तिस्मिन्सतीति ॥ सप्तमीसमर्थात्तसिरित्यभिप्रायेण । एवं चानुपात्तविषयधर्मिकाहार्यनिश्चयविषयीभूतम् । विषय्यभेदताद्रूप्यान्यतरद्रूपका-तिशयोक्तिरिति लक्षणं वोध्यम् । अत्र रूपकवारणायानुपात्तेति । अयमेव च रूप-कादस्यां विशेषोऽतिशय इत्युच्यते । भ्रान्तिवारणायाहार्येति । उत्प्रेक्षावारणाय निश्चयेति ॥ नीलोत्पलेति ॥ अत्र नीलोत्पलपदात्साध्यवसानलक्षणया शक्यल-क्योभयानुगतकान्तिविशेषादिपुरस्कारेणोपस्थिते कामिनीनयने शक्तयुपस्थितस्य नीलोत्पलत्वविशिष्टस्याभेदसंसर्गणान्वयः । शक्तयुपस्थितयोः कृतीष्टसाधनतयो-रिव शक्तिलक्षणाभ्यामुपस्थितयोरप्येकपदार्थयोस्तात्पर्यवशेनान्वयाङ्गीकारे वाध-काभावात् । एवंच नीलोत्पलाभिन्नकान्तिविशेषवद्वन्द्वादिति बोधादियमभेदातिश-योक्तिरित्युच्यते । नचैवं सति रूपकादवैलक्षण्यमिति वाच्यम् । रूपके विषयिभे-द्व्याप्यस्य विषयतावच्छेदकस्य भानेन वैलक्षण्यस्य स्फुटत्वात् । यदा त्वभेदभा-ने न तात्पर्ये किंतु भेदभाने तदा कान्तिविशेषादिरूपताद्रूप्यस्यैव बोधात्ताद्रूप्या-तिशयोक्तिर्वक्ष्यत इति बोध्यम् ॥ वापीति ॥ मध्यभागमारभ्य मुखपर्यन्तं अमे शैली सुकृतिसुगमी चन्दनच्छन्नदेशी तत्रत्यानां सुलभममृतं संनिधानात्सुधांशोः॥

भत्र वाप्यादिशब्दैर्नाभिप्रस्तयो निगीणाः । भत्रातिशयोक्तौ रूपकविशे-पणं रूपके दर्शितानां विधानामिहापि संभवोऽस्तीत्यतिदेशेन प्रदर्शनार्थम् । तेनात्राप्यभेदातिशयोक्तिस्ताद्र्प्यातिशयोक्तिरिति हैविध्यं द्रष्टव्यम् । तत्रा-प्याधिवयन्यूनताविभागश्चेति सर्वमनुसंधेयम् ॥ यथावा—

> सुधावद्धप्रासेरुपवनचकोरैरनुसृतां किर इयोत्स्नामच्छां छवछिफछपाकप्रणयिनीम् । उपप्राकाराभे प्रहिणु नयने तर्कय मना-गनाकाशें कोऽयं गछितहरिणः शीतकिरणः॥

नायिकाङ्गवर्णनमिदम् । गगने सूक्ष्मतया तद्वदुर्लक्ये मध्ये काप्यनिर्वचनीयशो-भा वापी तद्वद्रम्भीरा नाभिः स्फरित शोभते । तत्परं तद्धवेभागे ऐन्द्रनीली इन्द्रनीलघटिता सुक्ष्मपद्या सरणिस्तद्वच्छयामा रोमावलिः स्फुरतीत्यनुपज्यते । किंभूता । काञ्चननिर्मितां सोपानपिङ्क तत्सदशीं त्रिवलीमधिगतवती प्राप्तवती । तथा अप्रे तदू र्वदेशे शैलौ तदू जु विशालौ कुचौ स्फुरत इति विभक्तिविपरिणा-मेन संबध्यते । कीदशौ । सुकृतिनां पुण्यकृतां सुलभौ सुलभगमनौ सुलभौ च । पुनः कीहशौ । चन्दनतरुभिः चन्दनपङ्केन चाच्छन्नो व्याप्तो देशो ययोस्तथाभु-तौ । तत्रलानां तदाश्विष्टानां च सुधांशोस्तद्वदाङ्गदकस्य मुखस्य संनिधानादमृतं तद्वदाखाद्यमधरमाधुर्ये सुलभमिलन्वयः । विधानां भेदानाम् । इतीलस्य प्रद-र्शनार्थमिल्यनेनान्वयः ॥ अतिदेशेनेति ॥ सादृश्येनेल्यर्थः । मुख्यरूपकाभेद-स्यातिशयोक्तावभावाद्रपकपदं रूपकसदशपरम् । 'पण्मासमित्रहोत्रं जुह्वति' इत्य-त्राप्तिहोत्रपद्वद्धर्मातिदेशकमिलाशयः । आधिक्यन्यूनतेल्यत्रानुभयोक्तेरुक्तोदा-हरणेषु प्रसिद्धतरत्वादनुपादानं वोध्यम् । यत्त्वत्र कैश्चिदुक्तं विषयिवाचकपदस्य विषये साध्यवसानलक्षणायाः शक्यतावच्छेदकमात्रप्रकारकलक्ष्यविशेष्यकवोधत्वं कार्यतावच्छेदकम् । एवंच निगरणे सर्वत्र विषयतावच्छेदकधर्मरूपेणैव विषयस्य भानं न विषय्यभित्रत्वेनेति स्थितेऽभेदातिशयोक्तिस्तादृप्यातिशयोक्तिरिति द्वै-विध्यम्युक्तमिति, तत्प्रोडिविलसितम् । शक्यतावच्छेदकस्य लक्ष्ये पूर्वमप्रतीत-त्वेन तद्विशिष्टतया लक्षणाया असंभवात्, यद्धमीविशिष्टे शक्यसंबन्धग्रहस्तद्धमी-प्रकारकलक्ष्योपस्थितेः समानप्रकारकशाब्दबोधे हेतुत्वाल्लक्षणापरिहार्याया अतु-पपत्तेस्तद्वस्थत्वाच । एवमपि तात्पर्यवशात्तादशबोधाङ्गीकारे तद्वशादेव शक्याभे-द्प्रकारकबोधेऽपि वाधकाभावान्मात्रपदेन विषयतावच्छेदकस्यैव व्यावर्तनादिति दिक् ॥ सुधाबद्धेति ॥ विद्धशालभिकाख्यायां नाटिकायां स्फटिकप्राकारिश-सरगतां मृगाङ्कावलीमालोकयतो राज्ञो विदूषकं प्रत्युक्तिरियम् । प्राकारायसमीपे नयने प्रहिणु प्रेरय । मनाक् ईषत्तर्कय । अनाकाशे अनन्तरिक्षे कोऽयं शी-तिकरणश्चन्द्र इति मुखे चन्द्रगताहादकारित्वरूपताद्रप्याध्यवसानम् । कीदशः ।

इस्पत्र कोऽयमित्युक्तया प्रसिद्धचन्द्राद्धेदस्तत उत्कर्षश्च गर्भितः । एवमन्य-त्राप्यूहनीयम् ॥ ३५ ॥

यैद्यपहुतिगर्भत्वं सैव सापहवा मता ।
त्वत्सुक्तिषु सुधा राजन्भ्रान्ताः पश्यन्ति तां विधौ ॥३६॥
अत्र त्वत्सुक्तिमाधुर्यमेवामृतमित्यतिशयोक्तिश्चन्द्रमण्डळस्थममृतं न भवतीत्यपहुतिगर्भा ॥ यथावा—

मुक्ताविद्वममन्तरा मधुरसः पुष्पं परं धूर्वहं प्रालेयद्युतिमण्डले खलु तयोरेकासिका नार्णवे । तचोदञ्जति शङ्कमूर्भि न पुनः पूर्वाचलाभ्यन्तरे तानीमानि विकल्पयन्ति त हमे येषां न सा दक्पथे ॥

गलितश्युतो हरिणो यस्मात्तथाभूतस्तेन निष्कलङ्कतयोत्कर्षाभिन्यक्तिः । पुनः कीहक्। सुधायां बद्धो प्रासस्तद्भिलाषो यैसौरुपवनसंवन्धिभिश्वकोरैरनुस्तां लव-ल्याः फलपाकस्य प्रणयिनीं सदशीमच्छां खच्छां ज्योत्स्रां तत्त्वेनाध्यवसितां कान्ति प्रभां किरन् । प्रसारयित्रसर्थः । लवली लताविशेषः 'हरफारैवडी' इति भाषाप्र-सिद्धः । 'प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः । सभावद्धप्रासीरिति कचित्पाठस्तत्रा-प्युक्त एवार्थः। नवलवलीति पाठे नवश्वासौ लवलिपाकश्चेत्यन्वयो बोध्यः। न-न्विहाभेद्विवक्षेव किं न स्यादत आह—अत्रेति ॥ कोऽयमिल्यनेनानिर्ज्ञातत्व-प्रकाशनात्प्रसिद्धस्य निर्ज्ञातत्वात्तद्देलक्षण्यावगतिरिति भावः ॥ गर्भितो गलितेत्या-दिविशेषणव्यङ्गयत्वेनाभिप्रेतः ॥ अन्यत्रापीति ॥ 'अनुच्छिष्टो देवैरपरिद्लितो राहुदशनैः कलङ्केनाश्विष्टो न खलु परिभूतो दिनकृता । कुहूमिनों लिप्तो न च युवतिवक्रण विजितः कलानाथः कोऽयं कनकलतिकायामुद्यते ॥' इत्यादावित्य-र्थः । अथवान्यत्रापि न्यूनतायामपीलर्थः । कोऽयं भूमिगतश्चन्द्र इलादावदिन्य-त्वरूपन्युनताप्रकाशनमूहनीयमिति भावः। ननूक्तोदाहरणेष्वयमिति विषयस्योपा-दानात्कथमतिशयोक्तिरिति चेदत्राहुः । इदं त्वस्य विषयिविशेषणत्वेन विवक्षा-यामतिशयोक्तिरेव । यदा तु विषयविशेषणत्वविवक्षा तदा रूपकमिति व्यवस्था। अत एव प्रकाशकृता दशमे रूपकातिशयोत्तयादिसंदेहसंकरे 'नयनानन्ददायी-न्दोर्बिम्बमेतत्प्रसीदति 'इत्युदाहृतमिति ॥ ३५॥ एनां विभजते-यद्यप-इतीति ॥ अपहुतिगर्भत्वं पर्यस्तापहुतिगर्भत्वम् । सैव रूपकातिशयोक्तिरेव । तथाच सापह्नवत्विनरपह्नवत्वभेदेन द्विविधाऽतिशयोक्तिरिति भावः ॥ मुक्तेति॥ तान्यनुभवैकवेद्यानीमानि वस्तूनि ते इमे जनाः विकल्पयन्ति सदसद्वेति विक-ल्पविषयाणि कुर्वन्ति येषां जनानां सा प्रकान्ता सुन्दरी दक्पथे लोचनमार्गे नास्तीत्यन्वयः । तादशसुन्दरीदर्शनशालिनस्तु विकल्पयन्तीति भावः । तानि कानि वस्तूनि तत्राह । मुक्ता मौक्तिकं विद्वमं प्रवालं चान्तरा अनयोर्मध्ये म-

१ 'यदापह्नुति'

## अतिशयोत्तयलंकारः १३] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

88

अत्राधररस एव मधुरस इत्याद्यतिशयोक्तिः पुष्परसो मधुरसो न भवती-त्यपह्नुतिगर्भा ॥ अलंकारसर्वस्वकृता स्वरूपोत्प्रेक्षायां सापह्मवत्वमुदाहृतम् ॥ 'गतासु तीरं तिमिघट्टनेन ससंभ्रमं पौरविलासिनीषु ।

यत्रोहसरफेनतिच्छलेन मुक्ताटहासेव विभाति शिप्रा॥' इति । ततस्वियानत्र भेदः । एतत्तु शुद्धापह्नुतिगर्भम् । यत्र फेनतित्वमपह्नुतं तत्रैवाटहासत्वोत्प्रेक्षणादिह तु पर्यस्तापह्नुतिगर्भत्वमिन्दुमण्डलादावपह्नुतस्या-मृतादेः सूत्त्वयादिषु निवेशनात् । इदं च पर्यस्तापह्नुतिगर्भत्वमुत्प्रेक्षायामपि संभवति । तत्र स्वरूपोत्प्रेक्षायां यथा—

जानेऽतिरागादिदमेव विम्बं विम्बस्य च ब्यक्तमितोऽधरत्वम् । द्वयोर्विशेषावगमक्षमाणां नाम्नि अमोऽभूदनयोर्जनानाम् ॥ अत्र प्रसिद्धफले विम्बतामपहुत्यातिरागेण निमित्तेन दमयन्त्यधरे तदुत्प्रे-क्षा पर्यस्तापहुतिगर्भा । हेतृत्प्रेक्षायां तद्गभैत्वं प्राग्लिखिते हेतृत्प्रेक्षोदाहरणे एव दश्यते । तत्र चान्धकारेष्वान्ध्यहेतुत्वमपहुत्यान्यत्र तन्निवेशितम् । फलो-त्प्रेक्षायां यथा—

> रवितसो गजः पक्ष्यांस्तद्गृह्यान्वाधितुं ध्रुवम् । सरो विशति न स्नातुं गजस्नानं हि निष्फलम् ॥

धुरसः । 'अन्तरान्तरेण युक्ते' इति द्वितीया । पुष्पं परं केवलं धूर्वहं भारवाह-कं न तु मधुरसयुक्तम् । तयोः मुक्ताविद्वमयोः खलु निश्चितं प्रालेययुतिमण्डले चन्द्रमण्डले एकासिका एकस्मित्रासिका अवस्थितिरैकाधिकरण्यमित्यर्थः । न त्व-र्णवे समुद्रे। तच चन्द्रमण्डलं च शङ्खस्य मूर्धि मस्तके उद्बत्युद्यं प्राप्नोति। न पुनः पूर्वाचलस्योदयगिरेरभ्यन्तरे उद्विति । अत्र मुक्ताविद्वममधुरसप्रालेययु-तिमण्डलशङ्खराब्दैः क्रमेण दन्ताधरतन्माधुर्यमुखकण्ठा निगीणीः । पूर्वोदाहरणे आन्तत्वोत्तया स्पष्टोऽपह्नवः। इह तु परं धूर्वहमित्युत्तया गूढ इति भेदः। 'प्रालेयं मिहिका च' इल्पमरः ॥ गतास्विति ॥ पुरे भवाः पौर्यस्तासु विला-सिनीषु तिमीनां मत्स्यानां संघट्टनेन ससंभ्रमं सभयं तीरं प्रति गतासु सतीषु यत्र नगर्यो शिप्रा नदी उल्लसन्तीनां फेनततीनां छलेन मुक्तः कृतोऽदृहास उद्धतहास्यं यथा तथाभूतेव विभातीत्यन्वयः ॥ इतीति ॥ इत्यत्रेत्यर्थः । इ-न्दुमण्डलादावित्यादिपदात्पुष्परसादिपरिग्रहः ॥ सुत्तयादिष्विति ॥ सूक्तिमा-धुर्यादिष्वित्यर्थः । आदिना अधरमाधुर्यपरिप्रहः । निवेशनादभेदाध्यवसानात्॥ जाने इति ॥ दमयन्तीं वर्णयतो नलस्योक्तिः । अतिशयितादागाल्लोहित्यादिद-मधरस्वरूपमेव विम्बमिति जाने न तु विम्बफलमित्येवकारार्थः । विम्बस्य वि-म्बफलस्यातोऽस्मादोष्टादधरत्वं निकृष्टत्वं व्यक्तं स्फुटम् । कथं तर्हि विपरीता लोके प्रसिद्धिस्तत्राह। द्वयोरनयोर्विशेषस्य तारतम्यस्यावगमे बोधे क्षमाणामसम-र्थानां जनानां नाम्नि भ्रमो विपर्यासोऽभूदिति ॥ अन्यत्रेति ॥ सूर्यकर्तृके नेत्रा-परपर्यायगोनयने इलर्थः। निवेशितमुत्प्रेक्षितम् ॥ रवीति ॥ रविणा संतप्तो

अत्र गजस्य सरःप्रवेशं प्रति फले स्नाने फलत्वमपह्न्य पक्ष्यवाधने तिक्षिनेविश्वतम् । अल्मनया प्रसक्तानुप्रसक्तया प्रकृतमनुसरामः ॥ ३६ ॥ भेदकातिशयोक्तिस्तु तस्यैवान्यत्ववर्णनम् । अन्यदेवास्य गाम्भीर्यमन्यद्धेर्यं महीपतेः ॥ ३७ ॥ अत्र लोकप्रसिद्धगाम्भीर्याद्यभेदेऽपि भेदो वर्णितः । यथावा— अन्येयं रूपसंपित्तरन्या वेदग्ध्यधोरणी । वैषा निलनपत्राक्षी सृष्टिः साधारणी विषेः ॥ ३७ ॥ संवन्धातिशयोक्तिः स्यादयोगे योगकल्पनम् । सौधाग्राणि पुरस्यास्य स्पृशन्ति विधुमण्डलम् ॥ ३८ ॥ यथावा—

कतिपयदिवसैः क्षयं प्रयायात्कनकगिरिः कृतवासरावसानः।

गजस्तस्य रवेर्गृद्यान्यक्ष्यान्वन्धृनिति यावत् । ध्रवं प्रायो बाधितुं सरः प्रविशति न तु स्नातुं स्नानार्थम् । हि यस्माद्गजस्य स्नानं निष्फलं निष्प्रयोजनमित्यन्वयः ॥ प्रसक्तानुप्रसक्त्येति ॥ अतिशयोक्तेः सापह्नवत्वकथनप्रसङ्गादलंकारसर्वेख-कृदुक्तं खरूपोत्प्रेक्षाया गुद्धापद्वतिगर्भत्वं दर्शितं तदनुप्रसक्तया च त्रिविधाख-प्युत्प्रेक्षास पर्यस्तापह्नुतिगर्भत्विम लर्थः ॥ ३६ ॥ भेदकेति ॥ तस्यैव तजाती-यस्यैवान्यत्ववर्णनं तज्जातीयभिन्नत्वेन वर्णनं तचाहार्यं वोध्यम् । एवमग्रेऽपि । तेन भानतौ नातिव्याप्तिः । इदं च लोकोत्तरत्वप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ अन्यदेवेति ॥ अस्य महीपतेर्गाम्भीर्ये अन्यदेव प्रसिद्धगांम्भीर्यभिन्नमेवेत्यर्थः ॥ अन्येयमि-ति ॥ रूपं सौन्दर्यं, वैदग्ध्यं चातुर्यं, धोरणी परिपाटी । एषा नलिनपत्राक्षी विषे: साधारणी सृष्टिनैवेखन्वयः । अत्रोत्तरार्धे नञ्भङ्गचाऽन्यत्ववर्णनं विशेषः ॥ ३० ॥ संबन्धेति ॥ अयोगेऽसंबन्धे योगकल्पनं संबन्धवर्णनम् । संबन्धश्वाभेदभिन्नत्वे सत्यन्यत्वाद्यनिरूपितो प्राह्यः । तेन रूपकातिशयो-त्तयादिप्रभेदेषु नातिन्याप्तिः ॥ सौधिति ॥ 'सौधोऽस्त्री राजसदनम्' इल-मरः । नन्वत्रेव स्पृशन्तीवेन्दुमण्डलमितीवपदप्रयोगे उत्प्रेक्षाप्रतीतेस्तदप्रयोगे गम्योत्प्रेक्षात्वमुचितम् । इवादिसत्त्वे या वाच्योत्प्रेक्षा सैवेवाद्यभावे गम्योत्प्रेक्षे-ति नियमात् । अन्यथा त्वत्कीर्तिर्भ्रमणश्रान्तेत्यादिपूर्वोदाहृते पद्येऽपि गम्योत्प्रे-क्षा न स्याद्विशेषाभावादिति चेन्मैवम् । उपदर्शितनियमस्यालंकारान्तराविषय एवाभ्युपगमात् । अन्यथा नूनं मुखं चन्द्र इलादौ नूनमिलप्रयोगे गम्योत्प्रेक्षा-पत्तेः । एवंच प्रकृतेऽसंबन्धे संबन्धवर्णनरूपातिशयोक्तयलंकारविषये न गम्यो-त्प्रेक्षावसरः । त्वत्कीर्तिरित्युदाहरणे तु भ्रमणश्रान्तरूपहेत्वंशे गम्योत्प्रेक्षाभिप्रे-ता नतु खर्गङ्गाप्रवेशांश इति सर्वमवदातम् । असंदिग्धमुदाहरणान्तरमाह-यथावेति ॥ कतिपयेति ॥ वीरहद्रदेवाख्ये नृपे वितरणशालिनि दानशालि-

१ 'दायोक्तिः स्यात्तस्यै'. २ 'कल्पनम्'. ३ 'च भूपतेः'.

## अतिशयोत्तयलंकारः १३] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

83

इति सुरसुपयाति चक्रवाकी वितरणशालिनि वीरहद् देवे ॥ अत्र चक्रवाक्याः सूर्यास्तमयकारकमहामेरुक्षयसंभावनाप्रयुक्तसंतीपासं-वन्धेऽपि तत्संवन्धो वर्णितः ॥ ३८ ॥

योगेऽप्ययोगैः संवन्धातिशयोक्तिरितीर्यते ।
त्विय दातिर राजेन्द्र स्वर्द्धमान्नाद्रियामहे ॥ ३९॥
अत्र स्वर्द्धमेष्वादरसंबन्धेऽपि तदसंबन्धो वर्णित इत्यसंबन्धातिशयोक्तिः।
यथावा—

अनयोरनवद्याङ्गि स्तनयोर्जृम्भमाणयोः । अवकाशो न पर्याप्तस्तव वाहुलतान्तरे ॥ ३९ ॥ अक्रमातिशयोक्तिः स्यात्सहत्वे हेतुकार्ययोः । आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शरांश्च पराश्च ते ॥ ४० ॥ अत्र मौर्व्या यदा शरसंधानं तदानीमेव शत्रवः क्षितौ पतन्तीति हेतुका-ययोः सहत्वं वर्णितम् । यथावा—

मुञ्जित मुञ्जित कोशं भजित च भजित प्रकम्पमिरिवर्गः । हम्मीरवीरखड्ने त्यजित त्यजित क्षमामाञ्ज ॥ अत्र खड्जस्य कोशत्यागादिकाल एव रिपूणां धनगृहत्यागादि वर्णितम् ॥४०॥ नि सति चकवाकी इति मुदं संतोषमुपयाति प्राप्नोति । इति किम् । कृतं वास-रस्यावसानं नाशो येन स कनकिंगिरः सुमेहः कितपयैरल्पैर्दिवसैः क्षयं प्रयाया-दिति संभावनायां लिङ् ॥ ३८ ॥ योगेऽपीति ॥ योगे सत्यप्ययोगवर्णनमि-त्यर्थः । स्वर्गस्था द्रमाः कल्पवृक्षादयः । स्वर्द्वमेष्विति विषयसप्तमी । स्वर्द्वमवि-षये य आदरस्तस्य संबन्धेऽप्यर्थादर्थिषु । यद्वा अर्थिषु स्वर्हमविषयादरसंबन्धा-भावप्रतीतौ तत्समानवित्तिवेद्यतया स्वर्द्धमेष्वत्यादरविषयत्वाभावावगमाद्यथाश्रु-तमेव साधु ॥ अनयोरिति ॥ अनवद्यानि निर्द्रष्टानि अङ्गानि यस्यास्तथाभूते इति संबोधनम् । जुम्भमाणयोर्वर्धमानयोरनयोः स्तनयोस्तव बाहुलतयोरन्तरे मध्ये पर्याप्तोऽवकाशो नास्तीत्यन्वयः । अत्र वाहुलतयोरन्तरे स्तनपर्याप्तावका-शसंबन्धेऽपि तदसंबन्ध उक्तः ॥ ३९ ॥ अक्रमेति ॥ क्रमः पौर्वापर्ये तदभा-वोऽक्रमस्तद्रपस्यातिशयोक्तिरित्यर्थः । सहत्वे समकालत्वे । आलिङ्गन्ति समं युगपज्यां मौर्वी पृथ्वीं च। पराः शत्रवः ॥ मुश्चतीति ॥ हम्मीरसंज्ञस्य वी-रस्य खड्ने कोशं पिधानं मुझति सत्यरीणां वर्गः समृहोऽपि कोशं भाण्डारं मुझ-ति, तथा खन्ने प्रकम्पमुहासनं भजति सति स प्रकृष्टं कम्पं भजति । एवं खन्ने क्षमां क्षान्ति त्यजित सित सोऽपि क्षमां पृथ्वीं त्यजतीत्यर्थः। 'कोशोऽस्री कुछले खड़े पिधानेऽथौंघदिव्ययोः' इत्यमरः । अत्र शतप्रत्ययभङ्गया यौगपय-वर्णनं विशेषः ॥ धनगृहेति ॥ धनसंवन्धिगृहेल्यर्थः ॥ ४० ॥ चपछेति ॥

१ 'अयोगे'.

चपलातिशयोक्तिस्तु कार्ये हेतुप्रसक्तिजे । यास्यामीत्युदिते तन्त्र्या वलयोऽभवदूर्मिका ॥ ४१ ॥ अत्र नायकप्रवासप्रसक्तिमात्रेण योषितोऽतिकार्स्य कार्यमुखेन दर्शितम् । यथावा—

आदातुं सकृदीक्षितेऽपि कुसुमे हस्ताग्रमालोहितं लाक्षारञ्जनवार्तयापि सहसा रक्तं तलं पादयोः। अङ्गानामनुलेपनस्मरणमप्यत्यन्तखेदावहं हन्ताधीरदृशः किमन्यदृलकामोदोऽपि भारायते॥ यामि न यामीति धवे वदति पुरस्तात्क्षणेन तन्वङ्गयाः। गलितानि पुरो वलयान्यपराणि तथैव दलितानि॥ ४१॥ अत्यन्तातिशयोक्तिस्तु पौर्वापर्यव्यतिक्रमे। अप्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेण सा॥ ४२॥ (अत्यन्तातिशयोक्तिस्तु कार्ये हेतुप्रसक्तिने। आस्यामीत्युदिते तन्व्या वलयीभवदूर्मिका॥)

हेतोः प्रसिक्तर्ज्ञानं तज्जन्ये कार्ये सतीलर्थः । यास्यामीति उदिते उक्ते । प्रियेणे-ति शेषः । तन्त्या कर्मिका अङ्कलीयकं वलयः कङ्कणमभवदित्यर्थः । 'कर्मिका त्वज्जुलीये स्याद्वसमङ्गतरङ्गयोः' इति विश्वः ॥ कार्यमुखेनेति ॥ अङ्गलीयकस्य कङ्कणपदप्राप्तिरूपकार्यवर्णनद्वारेणेत्यर्थः ॥ आदातुमिति ॥ सहजसौकुमार्यव-त्याः विरहदशायां तदतिशयवर्णनिमदम् । हन्तेति खेदे । आदातुं प्रहीतुं सक्-देकवारमपि कुसुमे ईक्षिते सत्यधीरहशो हस्ताप्रमालोहितं भवतीति शेषः । अ-पिना किसु गृहीते इति गम्यते । लाक्षया यद्रजनं तद्वार्तयापि सहसाकस्मात्पा-दयोस्तलं रक्तं भवति किमु रक्षनेनेति पूर्ववत्। एवमङ्गानां चन्दनादिना यद-नुलेपनं तत्सारणमप्यत्यन्तखेदकरं किमुतानुलेपनम् । किमन्यद्वाच्यमिति शेषः। अलकानामगुरुधूपाद्यामोदोऽपि भारायते । भार इवाचरतीत्यर्थः । कर्तरि क्य-ङ् । अत्रादानादिरूपहेतुप्रसक्तिमात्रेण हस्तायलौहित्यादिरूपकार्योत्पत्तेः साक्षा-देव वर्णनं नतु कार्यमुखेनेति पूर्वस्माद्भेदः । हेतुकार्ययोरिव हेतुप्रसक्तिकार्ययो-रिप समकालत्वं संभवतीति सूचियतुमुदाहरणान्तरमाह—यामीति ॥ धवे दियते यामि न यामीति वदित सित तत्क्षणेन तत्कालमेव तन्वज्ञथाः पुरोवल-यान्यप्रिमकङ्कणानि पुरः प्रथमं गलितानि । अन्यपराण्यपि तथैव तत्कालमेव दिलतानि भग्नानीत्यन्वयः । 'पुरोऽग्रे प्रथमे च स्यात्' इति विश्वः । अत्र वद-ति गलितानीति शतृप्रत्ययेन समकालतावगतिः ॥ ४९ ॥ अत्यन्तेति ॥ अत्र हेतुकार्ययोरित्यनुवर्तते । तत्पौर्वापर्येति कचित्पाठः साधुरेव । व्यतिक्रमो-

१ 'चपलातिशयो'. २ 'व्यतिक्रमे'.

# अतिशयोत्तयलंकारः १३] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

84

यथावा--

कवीन्द्राणामासन्प्रथमतरमेवाङ्गणभुव-श्रळज्ञृङ्गासङ्गाकुरुकरिमदामोदमधुराः । अमी पश्चात्तेपामुपरि पतिता रुद्रनृपतेः कटाक्षाः श्लीरोदप्रसरदुरुवीचीसहचराः॥

पुतास्तिस्रोऽप्यतिशयोक्तयः कार्यशैद्यप्रत्यायनार्थाः॥ ४२ ॥

ऽत्र वैपरीत्यम् । अग्रे प्रथममनुनीता समाहिता ॥ कवीन्द्राणामिति ॥ कविश्रेष्ठानामङ्गणसंवन्धिन्यो भूमयः प्रथमतरमेव प्रथममेव चलतां चपलानां भृङ्गाणां भ्रमराणामासङ्गेनाकुलानां करिणां मदजलस्यामोदेन परिमलेन मधुरा रमणीया आसन्नभवन् । पश्चादनन्तरं तेषां कवीनामुपरि हद्रसंज्ञकस्य नृपतेरमी द्रयमानाः कटाक्षाः पतिताः । कीदशाः । क्षीरमुद्कं यस्य तथाभूतस्य क्षीरार्ण-वस्य प्रसरन्तीनामुरुवीचीनां वृहत्तरङ्गाणां सहचरास्तत्सदशा इत्यथैः । 'उदक-स्योदः संज्ञायाम्' इत्युदादेशः । अत्र यथोक्तकटाक्षरूपकार्यमुखेन नृपतिप्रसादरू-पहेतुकथनं पूर्वस्माद्विशेषः । एता अन्यवहितोक्ताः । अथोक्तेषु प्रभेदेष्वनुगतप्र-वृत्तिनिमित्ताभावात्कथमतिशयोक्तिपदप्रयोग इति चेदत्राहः । तावत्प्रभेदान्यत-मत्वमेव सर्वानुगतमतिशयोक्तिपदप्रवृत्तिनिमित्तं तदेव च सामान्यलक्षणमिति । नव्यास्त निगीर्याध्यवसानमेवातिशयोक्तिः प्रभेदान्तरं त्वनुगतरूपाभावादलंका-रान्तरमेव । नचान्यत्वादिप्रभेदेष्वन्यत्वादिभिरभेदादीनां निगरणं संभवतीति वाच्यम् । अन्यत्वादिभिरभिन्नवस्तुप्रतीतेरेव चमत्कारित्वेनानुभवसिद्धतयान्य-त्वादिभिरभेदप्रतीत्यङ्गीकारेऽनुभवासङ्गतेः । अन्यतमत्वं तु नालंकारविभाजको-पाधितां भजते चमत्काराप्रयोजकत्वादिति वदन्ति । वस्तुतस्तु रूपकभिन्नत्वे सति चमत्कृतिजनकाहार्यारोपनिश्चयविषयत्वमेवातिशयोक्तिसामान्यलक्षणम् । रूपकवारणाय सत्यन्तं, भ्रान्तिवारणायाहार्येति, उत्प्रेक्षानिरासाय निश्चयेति । रूपकातिशयोक्तावभेदस्य द्वितीयप्रभेदेऽन्यत्वस्य तृतीये संवन्धस्य चतुर्थे असंव-न्धस्य पञ्चमे सहत्वस्य षष्ठे हेतुप्रसक्तिजन्यत्वस्य सप्तमे पूर्वापरत्वयोश्र तथा-विधारोपविषयत्वसत्त्वात्सर्वत्र लक्षणसमन्वयः । न चैवंविधारोपस्य रूपकस्वभा-वोक्तिभिन्नेषु प्रायशः सर्वालंकारेषु सत्त्वादतिप्रसङ्ग इति वाच्यम् । इष्टापत्तेः । अलंकारान्तराणां चमत्कारे प्रधानत्या तदङ्गत्वेनावस्थिताया अतिशयोक्तरप्रा-धान्येन व्यपदेशार्नहत्वात् । प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायात् । अलंका-रान्तराणामेव प्रधानत्वेन व्यपदेशाईत्वात् । अतएव काव्यप्रकाशकृता विशेषा-रान्तराजाताः लंकारप्रसङ्गे ऽभिहितं 'सर्वत्रवंविधे विषयेऽतिशयोक्तिरेव प्राणत्वेनावतिष्ठते । लकारप्रसम्भागतं निकारत्वाभावात्'। अत एवोक्तम—'सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरन-ताविना प्रायना यहाे इस्यां कविभिः कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना'॥ इति । यार्थो विभाव्यते । यहाे इसि ।

तुल्ययोगितालंकारः १४ वर्ण्यानामितरेषां वा धर्मैक्यं तुल्ययोगिता । संकुचन्ति सरोजानि स्वैरिणीवदनानि च ॥४३॥

त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे कस्य चित्ते न भासते। मालतीशशभृक्षेखाकदलीनां कठोरता ॥ ४४ ॥

प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां वा गुणिकयारूपैकधर्मान्वयस्तुल्ययोगिता । संकु-चन्तीति प्रस्तुततुल्ययोगिताया उदाहरणम् । तत्र प्रस्तुतचन्द्रोदयकार्यतया वर्णनीयानां सरोजानां प्रकाशभीरुस्वैरिणीवदनानां च संकोचरूपैकिकया-

दण्डिनाप्युक्तम्—'अलंकारान्तराणामप्येकमाहुः परायणम् । वागीशसिहतामु-किमिमामतिशयाह्वयाम् ॥' इति ॥ इत्यतिशयोक्तिप्रकरणम् ॥ १३ ॥

तुल्ययोगितां लक्षयति--वर्ण्यानामिति ॥ वर्ण्यत्वेन प्रस्तुतानामित्यर्थः । इतरेषामप्रस्तुतानाम् । एतचोभयमपि सावधारणम् । वर्ण्यानामेवेतरेषामेव वे-त्यर्थः । बहुवचनमनेकार्थकम् । द्वयोधेमैंक्यस्यापि संप्राह्यत्वात् । धर्मैक्यं धर्म-स्य ऐक्यमेकत्वम् । एको धर्म इति यावत् । स च चमत्कारकारी बोध्यः । एवं चानेकप्रस्तुतमात्रसंबद्धेकचमत्कारिधर्मानेकाप्रस्तुतमात्रसंबद्धेकधर्मान्यतरत्वं ल-क्षणं बोध्यम् । मुखं विकसितस्मितमित्यादावतिप्रसङ्गवारणायानेकेति । अत्रच मुखे प्रेक्षितादिरूपानेकवर्ण्यसंबन्धो नैको धर्म इति तन्निरासः । दीपकवारणाय मात्रेति । प्रस्तुताप्रस्तुतप्रभेदसाधारण्यायान्यतरत्वनिवेशः ॥ त्वदङ्गेति ॥ प्रियां प्रति दियतोक्तिः । तवाङ्गस्य मार्दवे सौकुमार्थे दृष्टे सित कस्य चित्ते मा-लखादीनां कठोरता न भासते । अपितु सर्वस्थैवेखर्थः। शशं विभर्ताति शशस्त्र-न्द्रस्तस्य ठेखा कला ॥ गुणिकयारूपेति ॥ एतच तथाविधधर्मस्य प्रायशो गुणिकयारूपत्वमित्यभित्रेत्योक्तं नतु लक्षणे तेन रूपेण धर्मस्य निवेशः । गौरवात्प्रयोजनाभावाच । यत्त कैश्विदेतद्रन्थदूषणलालसैर्धर्मस्य गुणिकयारूपत्वे-न लक्षणे निवेश इत्याशयमारोप्याभिहितम् । तदेतदापाततः 'शासित त्विय हे राजन्नखण्डावनिमण्डलम् । न मनागपि निश्चिन्ते मण्डले शत्रुमित्रयोः ॥' इ-त्यत्राभावरूपधर्मस्यैवान्वयादिति । तदिद्मापाततोऽपि न मनोरमम् । तथाहि । शासतीति त्वदुदाहृतपद्ये निश्चिन्तेनेति निश्चिन्तत्वभेदः शत्रुमित्रमण्डलधर्मतयोपा-त्तः, स च गुणखरूप एव। चिन्ताभाववद्भेदस्य चिन्तानतिरिक्तत्वात् । अन्यथा चिन्ताभावाभावस्याप्यतिरिक्तत्वापत्तेः । अथ तत्रापि वैपरीत्यादिष्टापितमालम्ब-से भवत्वेवं तुष्यत भवान् । एवमप्यभावस्य कथं गुणबहिर्भावः । जातिकिया-इव्यातिरिक्तस्यैव चतुष्ट्यी शब्दानां प्रशृतिरिति वदद्भिवयाकरणेस्तद्वसारिभि-श्रालंकारिकेर्गुणत्वाङ्गीकारात् । अतएव जातिगुणयोर्विरोधे प्रकाशकृद्धिरुदाहृतं गिरयोऽप्यनुत्रतियुज इति । तथा विद्यानाथेनापि अमदः सार्वभौमोऽपीति । वस्तुतस्तु लक्षणेन तेन रूपेण धर्मस्य निवेशोऽभिप्रेत इत्यावेदितमतो न काप्य- न्वयो दर्शितः । उत्तरश्लोके नायिकासौकुमार्यवर्णने प्रस्तुतेऽप्रस्तुतानां माल-त्यादीनां कठोरतारूपैकगुणान्वयः । यथावा---

संजातपत्रप्रकरान्वितानि समुद्रहन्ति स्फुटपाटलःवम् । विकस्वराण्यकंकराभिमशीहिनानि पद्मानि च वृद्धिमीयुः ॥ नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कद्लीविशेषाः । लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोहपमानवाद्याः ॥

अत्र श्रीष्मवर्णने तदीयत्वेन प्रस्तुतानां दिनानां पद्मानां चैकक्रियान्वयः। ऊरुवर्णनेऽप्रस्तुतानां करिकराणां कद्छीविशेषाणां चैकगुणान्वयः॥४३॥४४॥

# हिताहिते वृत्तितौल्यमपरा तुल्ययोगिता। मदीयते पराभूतिर्मित्रशात्रवयोस्त्वया ॥ ४५॥

अत्र हिताहितयोर्मित्रशात्रवयोरुत्कृष्टभूतिदानस्य पराभवदानस्य च श्लेषे-णाभेदाध्यवसायाद्वत्तितौल्यम् । यथावा—

नुपपत्तिरिति । खैरिणी खेन ईरितुं शीलमस्यास्तादशी । व्यभिचारिणीति याव-त्। 'खादीरेरिणोः' इति वृद्धिः । 'खैरिणी पांसुला च स्यात्' इत्यमरः॥ संजातिति ॥ दिनानि पद्मानि च वृद्धिमीयुः प्रापुः । कीदशानि । संजातैः प-त्राणां प्रकरें: समृहेरन्वितानि । पूर्वपत्राणां वसन्तेन विगलनात् । तथा स्फुटा विकासिताः पाटला वृक्षविशेषा येषु तानि तेषां भावस्तत्त्वं समुद्रहन्तीति शत्र-न्तम् । दधानानीत्यर्थः । पद्मपक्षे तु स्फुटानि विकसितानि च तानि पाटलानि पाटलवर्णानि तेषां भावस्तत्त्वमित्यादि पूर्ववत् । एवमर्कस्य करैः किरणैरभिमर्श-नाद्विकखराणि भासराणि दिनानि । पद्मानि तु विकासशालीनि ॥ नागेन्द्रेति॥ नागेन्द्राणां गजश्रेष्टानां हस्ताः शुण्डाः कदलीविशेषाश्च परिणाहो विशालता तच्छालि रूपं स्वरूपं लब्ध्वापि यथाकमं त्वचि कर्कशत्वात्कठोरत्वादेकान्तेन नियमेन शैलाच हेतोलोंके तस्याः पार्वला ऊर्वो हपमानाद्वाह्या उपमानत्वरहिता जाता इलन्वयः ॥ तदीयत्वेनेति ॥ तत्कालिकत्वेनेलर्थः । श्रीष्मकालिकवस्तु-वर्णनस्येव श्रीष्मवर्णनरूपत्वादिति भावः ॥ एकिकियेति ॥ वृद्धिप्राप्तिरूपैकिक-यान्वय इलर्थः ॥ एकगुणेति ॥ उपमानवाद्यत्वरूपैकगुणेलर्थः ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ हिताहिते इति ॥ हिताहितविषये इत्यर्थः । वृत्तितौल्यमिति । वृत्तिर्वर्तनं व्यवहरणमिति यावत् । तस्य तौल्यं साम्यम् । अपरा पूर्वोक्तविल-क्षणा । प्रदीयत इति । परा उत्कृष्टा भूतिः संपत्तिरेव, पराभृतिः पराभवः । शत्रुणां समूहः शात्रवम् । 'तस्य समूहः' इत्यण् ॥ पराभवदानस्येति ॥ शत्रुसंबन्धिपराभवसंपादनस्येखर्थः । पराभवस्य मुख्यदानासंभवात् । अत एव संप्रदानत्वासंभवान्मित्रशात्रवयोरिति संवन्धसामान्ये षष्टी । श्वेषेण पराभृतिप-दश्हेषेण ॥ यथाचेति ॥ अत्र चशब्दा अप्यर्था विरोधद्योतकाः ॥ अत्रेति ॥ योऽपि निम्बं परशुना छिनत्ति योऽप्येनं मधुयुक्तेन सर्पिषा आज्येन सिचति योऽप्येनं गन्धमाल्यायौर्चतीति क्रमेणेलर्थः । उक्तप्रकारस्य तुल्ययोगितापदवा- यश्च निम्बं परशुना यश्चेनं मधुसर्पिपा। यश्चेनं गन्धमाल्याद्यैः सर्वस्य कटुरेव सः॥

अत्र वृश्चति सिंचत्यर्चति इत्यध्याहारेण वाक्यानि पूरणीयानि । पूर्वोदाह-रणं स्तुतिपर्यवसायि, इदं तु निन्दापर्यवसायीति भेदः । इयं सरस्वतीकण्ठा-भरणोक्ता तुल्ययोगिता ॥ ४५ ॥

गुणोत्कृष्टैः समीकृत्य वचोऽन्या तुल्ययोगिता। लोकपालो यमः पाशी श्रीदः शको भवानपि॥ ४६॥

अत्र वर्णनीयो राजा शकादिभिर्लोकपालस्वेन समीकृतः । यथावा-

च्यत्वे वृद्धसंमति दर्शयति - इयमिति ॥ तथाच वृद्धव्यवहारान्नार्थस्तुल्ययो-गिताशब्द इति भावः । अत्र केचिदाहुः—'नेयं तुल्ययोगिता पूर्वोक्ततुल्ययो-गितातो भेदमईति । वर्ण्यानामितरेषां वेलादिपूर्वोक्तलक्षणाकान्तत्वात् । एका-नुपूर्वीबोधितवस्तुकर्मकदानमात्रत्वस्य परम्परया तादृशशब्दस्य वा धर्मस्यै-क्यात् । यश्च निम्बमित्यत्रापि कटुत्वविशिष्टनिम्बस्यैव परम्परया छेदकसेचक-पूजकधर्मत्वसंभवात्' इति । तदेतत्पेशलम् । तथाहि-यत्रानेकान्वयित्वेन ज्ञा-तो धर्मस्तेषामौपम्यगमकत्वेन चमत्कृतिजनकस्तत्र पूर्वोक्तप्रकारः । यत्रतु हि-ताहितोभयविषयकशुभाशुभरूपैकव्यवहारस्य व्यवहर्तृगतस्तुतिनिन्दान्यतरद्यो-तकतया चमत्कृतिजनकत्वं तत्रापर इति भेदात् । नहात्र पराभृतिशब्दस्य त-द्रथंकर्मदानस्य वा परम्परया शत्रुमित्रगतत्वेन भानमपि तु श्लेषवलादेकत्वेना-ध्यवसितस्य तादशदानस्य राजगतत्वेनैवेति कथं पूर्वोक्तलक्षणाकान्तत्वम् । ए-तेन 'यश्च निम्बम्' इत्यत्र कदुत्वविशिष्टनिम्बस्यैव परम्परया छेदकसेचकपूजक-धर्मत्वमिति निरस्तम् । वस्तुगत्या तद्धर्मत्वस्यालंकारतासंपादकत्वाभावात् । अ-न्यथा 'संकुचन्ति सरोजानि' इत्येतावतैव तुत्ययोगितालंकारापत्तेः । किं त्वने-कगतत्वेन ज्ञायमानधर्मत्वस्येव तुल्ययोगिताप्रयोजकत्वमिति तदभावे तदन्तर्ग-तिकथनमसमज्ञसमेव । अथाप्युक्तोदाहरणयोस्तथा भानमस्तीत्याप्रहस्तथापि न पूर्वोक्तलक्षणस्यात्र संभवः । 'धर्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीस्त्विय राजन् विराजते ।' इ-प्रकृतयोरूपमायामतिव्याप्तिवारणार्थमनेकानुगतधर्मत्वपर्याप्तविषयितासंब-न्धावच्छित्रावच्छेदकताकचमत्कृतिजनकताश्रयज्ञानविषयधर्मत्वमिति विवक्षाया-स्तत्रावर्यकत्वात्, प्रकृते च हितत्वाहितत्वादेविषयस्याधिकस्यानुप्रवेशादिति वि-भावनीयम् ॥ गुणोत्कृष्टैरिति ॥ गुणैरुत्कृष्टाः श्रेष्टास्तौरित्यर्थः । समीकृत्य सा-म्यं विवक्षित्वा । वच इति । वचनं वचः प्रतिपादनमिति यावत् । अर्थात्तत्सा-धारणधर्मस्य । अन्येति । धर्मस्य वर्ण्यावर्ण्यगतत्वादुक्तविलक्षणेत्यर्थः । पाशो-Sस्यास्तीति पाशी वरुणः । 'प्रचेता वरुणः पाशी' इत्यमरः । श्रीदः कुवेरः शक इन्द्रः । लोकपालपदं चेन्द्रादिषु रूढम् । राज्ञि तु योगमात्रेण प्रयुक्तम् ॥

१ 'गुणोत्कृष्टैः समाहत्य'.

संगतानि मृगाक्षीणां तिडिद्विलसितान्यि । क्षणद्वयं न तिष्ठन्ति घनारव्धान्यि स्वयम् ॥ पूर्वत्र स्तुतिरिह निन्दा । इ्यं काव्याद्शें दर्शिता । इ्मां तुल्ययोगितां सिद्विरिति केचिद्यवजहुः । यदाह जयदेवः—

सिद्धिः ख्यातेषु चेन्नाम कीर्खते तुल्यतोक्तये । युवामेवेहं विख्याती त्वं बलैर्जलधिर्जलैः ॥ इति । मतान्तरेष्वत्र वक्ष्यमाणं दीपकमेव ॥ ४६ ॥

दीपकालंकारः १५ वदन्ति वर्ण्यावर्ण्यानां धर्मेक्यं दीपकं बुधाः। मदेन भाति कलभः प्रतापेन महीपतिः॥ ४७॥

प्रस्तुताप्रस्तुतानामेकधर्मान्वयो दीपकम् । यथा—कळभमहीपालयोः प्र-स्तुताप्रस्तुतयोर्भानक्रियान्वयः । यथावा—

संगतानीति ॥ संगतानि संगमाः तिडतां विद्युतां विलिसतानि घनं निविडं यथा स्यात्तथा आरब्धानीति संगमपक्षे घनेमें घरारच्धानीति च तिडिद्वेलसितपक्षेऽर्थः । काव्यादर्शे एतनामकदण्डिकृतप्रन्थे दिश्तेता तुल्ययोगितापदवाच्यत्वेन मिर्दिष्टा । केचिदालंकारिका व्यवजहुर्व्यवहृतवन्तः । ख्यातेषु गुणत्वेन प्रसिद्धेषु ॥ युवामेवेति ॥ इह भूलोके वलैः सैन्यैः । अत्रच सैन्यजलयोः प्रसरणशीलत्वादिसादश्याद्विम्वप्रतिविम्बभावेनाभेदमाश्रित्य धर्मेक्यं बोध्यम् । मतान्तरेष्विति बहुवचनेन बह्नसंमततया दण्ड्युक्ततुल्ययोगितानामस्यरसो ध्वन्यते । सच दीपकतुल्ययोगितयोभेदकथनावसरे व्यक्तीभविष्यतीति संक्षेपः ॥ ४६ ॥ इति तुल्ययोगिताप्रकरणम् ॥ १४ ॥

दीपकं लक्षयति — वद्नतीति ॥ वर्णावर्णान्वतैकचमत्कारिधमाँ दीपकमिन्
त्यर्थः । उपमादिवारणायात्रापि पूर्ववल्रक्षणपरिष्कारो बोध्यः । कलमः करिशावकः ॥ भानिक्रयेति ॥ कियारूपैकधर्मान्वय इल्पर्थः । अत्रापि क्रियाविशेषणीभूतयोर्मद्रप्रतापयोर्विम्वप्रतिविम्बभावो बोध्यः ॥ यथावेति ॥ शाणेन निकप्रपाषाणेनोल्लीढ उल्लिखितो मणिः । तथा हेतिभिरायुधैनिंहतः कृतक्षतः समरे
संप्रामे विजयशीलो योद्धा मदेन क्षीणो नागो हस्ती शरत्काले इयानानि शुष्काणि पुलिनानि जलनिर्मुक्ततटानि यासां ताः सरितो नद्यः कलामात्रावशिष्टश्चन्द्रः
सुरते मृदिता चुम्बनालिङ्गनाशुपमर्दनम्लायिताङ्गी वाला नवयोवना वनिता स्त्री
एवम्थिषु याचकेषु गलितः संकान्तो विभवः समृद्धिर्येषां ते नृपाश्च तनित्रा
तनोः कृशस्य भावस्तनिमा कार्य्ये तेन शोभन्त इत्यन्वयः । 'शाणस्तु निकषः

१ 'मेव हि विख्याती'.

मिणः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिदल्ति। मदक्षीणो नागः शरिद सरितः श्यानपुलिनाः । कलाशेपश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः॥

अत्र प्रस्तुतानां नृपाणामप्रस्तुतानां मण्यादीनां च शोभैकधर्मान्वयः। प्र-स्तुतैकनिष्ठः समानो धर्मः प्रसङ्गादन्यत्रोपकरोति प्रासादार्थमारोपितो दीप इव रथ्यायामिति दीपसाम्यादीपकम् । 'संज्ञायां च' इति इवार्थे कन् प्रत्ययः। यद्यपि—

> सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः । शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥

इत्यत्र प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां युगपद्धर्मान्वयस्तथापि प्रासङ्गिकत्वं न ही-यते, वस्तुगत्या प्रस्तुतोद्देशेन प्रस्तुतत्थेव वर्णनत्याप्रस्तुतेऽन्वयात् । निह दी-पत्य रथ्याप्रासादयोर्थुगपद्वपकारकत्वेन जामात्रर्थं श्रपितस्य सूपस्यातिथिभ्यः प्रथमपरिवेषणेन च प्रासङ्गिकत्वं हीयते । तुल्ययोगितायां त्वेकं प्रस्तुतमन्य-

कषः' इल्पमरः ॥ शोमैकेति ॥ शोमारूपैकधर्मेलर्थः । पूर्वोदाहरणे आदिदी-पकमिह त्वन्तदीपकमिति भेदः । प्रस्तुताप्रस्तुतसाधारणधर्मस्य दीपकपदवाच्य-तायां वीजमाह—प्रस्तुतैकेत्यादि ॥ प्रस्तुतैकनिष्टः प्रस्तुतैकपरः प्रस्तुतान्व-यविवक्षयाभिहित इति यावत् ॥ रथ्यायामिवेत्यनन्तरमुपकरोतीत्यनुषज्यते । इतीति चाध्याहार्यम् । इति दीपकसाद्यात्समानो धर्मो दीपकमुच्यत इति शेषः । यत्र धर्मस्य पूर्वे प्रस्तुतेऽन्वयः पश्चादन्यत्र यथोक्तोदाहरणयोस्तत्रैवेतरत्र सङ्गोपकारित्वमित्याशयेन शङ्कते—यद्यपीति ॥ सुवर्णेति ॥ सुवर्णमेव पुष्पं यस्या इति विम्रहः । त्रयो गुणत्रयान्यतमयुक्ताः । शूरश्चेत्यादि प्रत्येकं चकारो नैरपेक्ष्यद्योतकः । कृतविद्यः प्रख्यातविद्यः । एतच प्रासिक्षकं पद्यं यदा यत्प्रसङ्गे पठ्यते तदा तस्य प्रस्तुतत्वमितरयोस्त्वप्रस्तुतत्वमिति बोध्यम्॥ युगपदिति ॥ त्रयश्चिन्वन्तीति त्रिष्विप युगपदन्वय इत्यर्थः । चिन्वन्तीति बहुवचनान्तस्य प्रस्तुतमात्रेणैकवचनान्तेन पूर्वमन्वयायोगादिति भावः । समा-थत्ते—तथापीति ॥ प्रासङ्गिकत्वं प्रसङ्गोपकारित्वम् ॥ न हीयत इति ॥ तथाच धर्मस्य पश्चादन्वयो न तत्र प्रयोजक इति भावः । किं तर्हि प्रयोजकं तत्राह—वस्तुगत्येति ॥ प्रस्तुतोद्देशेन प्रस्तुतोद्देश्यकान्वयवोधेच्छया प्रस्तुत-स्येव पदाभिहितस्येव वर्णनस्य कर्मव्युत्पत्त्या तद्विषयधर्मस्य । तथाच चमत्कारा-य प्रस्तुताप्रस्तुतान्वितस्वार्थे बोधयत्वितीच्छयोचरितपदाभिहितधर्मस्योभयत्रा-न्वयेऽप्युद्देश्यताख्येच्छाविषयता प्रस्तुत एव न त्वप्रस्तुते । किं तु विशेषणता-ख्यविषयतैवेति । तथाविधोद्देश्यताविरह एव प्रासिङ्गकत्वे बीजिमित्याशयः । एतदेवोपपादयति - नहीति ॥ प्रासङ्गिकत्वमिति ॥ दीपसूपयो रथ्याति-

१ 'प्रवृत्तस्यैव'.

द्रप्रस्तुतिमिति विशेषाप्रहणात्सर्वोद्देशेनैव धर्मान्वय इति विशेषः । अयं चान्वयोरपरो विशेषः। उभयोरनयोरूपमालंकारस्य गम्यत्वाविशेषेऽण्यत्राप्रस्तुतमु-पमानं प्रस्तुतमुपमेयमिति व्यवस्थित उपमानोपमेयभावस्तत्र तु विशेषाप्रह-णादैच्छिकः स इति ॥ ४७ ॥

आवृत्तिदीपकालंकारः १६
तिविधं दीपकावृत्तौ भवेदावृत्तिदीपकम् ।
वर्षत्यम्बुद्मालेयं वर्षत्येषा च शर्वरी ॥ ४८ ॥
उन्मीलन्ति कद्म्वानि स्फुटन्ति कुटजोद्गमाः ।
माद्यन्ति चातकास्तृप्ता माद्यन्ति च शिखावलाः ॥४९॥
दीपकस्यानेकोपकारार्थतया दीपस्थानीयस्य पदस्यार्थस्योभयोर्वावृत्तौ त्रिविधमावृत्तिदीपकम् । क्रमेणार्थत्रयेणोदाहरणानि दर्शितानि । यथावा—
उत्कण्ठयति मेवानां मालावर्गं कलापनाम् ।
यूनां चोत्कण्ठयत्यद्य मानसं मकरध्वजः ॥

थिविषये प्रसङ्गोपकारित्वमित्यर्थः । तथाच त्वन्मते तस्य प्रासङ्गिकत्वं न स्यादिति भावः । इदमुपलक्षणम् । जामातृविषये प्रासङ्गिकत्वापत्तिरिष बोध्या ।
एतदेव तुल्ययोगितातो भेदकमित्याह—तुल्ययोगितायां त्विति ॥ ननूदेर्यत्वानुदेश्यत्वयोश्वमत्काराप्रयोजकत्वात्रालंकारभेदप्रयोजकत्वं युक्तमित्यस्वरसादाह—अयं चेति ॥ अयं वश्यमाणः । अनयोदीपकतुल्ययोगितयोः । अत्र
दीपके उपमानोपमेयभाव इत्यनन्तरं गम्य इति शेषः । तत्र तुल्ययोगितायां
विशेषाप्रहणात्प्रस्तुताप्रस्तुतत्वरूपव्यवस्थापकाभावादैन्छिकोऽव्यवस्थितः स उपमानोपमेयभावः । नव्यास्तु नैतावतापि तुल्ययोगितातो दीपकस्य पृथग्भाव उचितः । धर्मस्य सकुद्वृत्तित्वमूलाया विन्छित्तरेविशेषात् । अन्यथा तुल्ययोगितायामिष धर्मिणां केवलप्रकृतत्वस्य केवलाप्रकृतत्वस्य च विशेषस्य सत्त्वादलंकारहैतापत्तेः । तस्मात्तुल्ययोगिताया एव त्रैविध्यमुचितमित्याहुः ॥ ४७ ॥ इति
दीपकप्रकरणम् ॥ १५ ॥

त्रिविधमिति ॥ दीपकस्यावृत्तावावृत्तिदीपकं भवेत्तच त्रिविधमित्यर्थः ॥ वर्षतीति ॥ शर्वरी रात्रिः वर्षे वत्सर इवाचरतीत्यर्थः । कदम्वानि कदम्बकु-सुमानि उन्मीलन्ति विकसन्ति,कुटजोद्गमाः कुटजकलिकाः स्फुटन्ति विकसन्ति, तृप्ताश्चातका माद्यन्ति मत्ता भवन्ति, शिखावला मयूराश्च माद्यन्तित्वयः। त्रै-विध्यमुपपादयत्रेव व्याचष्टे—दीपकस्येति ॥ क्रमेणेति ॥ आदेऽर्थे वर्षतीनि शब्दावृत्तिः । अलंकारसंपादकत्वाच न कथितपदत्वं दोषः । द्वितीये विकास-रूपसार्थस्यावृत्तिः । उन्मीलन्ति स्फुटन्तीति शब्दभेदेन तस्यैव वोधनात् । तृ-तीये तु द्वयोरावृत्तिः स्फुटवेति ॥ उत्कण्ठयन्तीति ॥ मेघानां माला पितः ।

शमयित जलधरधारा चातकयूनां तृषं चिरोपनताम् । क्षपयित च वधूलोचनजलधारा कामिनां प्रवासरुचिम् ॥ वदनेन निर्जितं तव निलीयते चन्द्रविम्बमम्बुधरे । अरविन्दमपि च सुन्द्रि निलीयते पाथसां पूरे ॥ प्रवंचावृत्तीनां प्रस्तुताप्रस्तुतोभयविषयत्वाभावेऽपि दीपकच्छायापितमा-श्रेण दीपकव्यपदेशः ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

# प्रतिवस्तूपमालंकारः १७ वाक्ययोरेकसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता । तापेन भ्राजते सुर्यः शुरश्रापेन राजते ॥ ५० ॥

यत्रोपमानोपमेयवाक्ययोरेकः समानो धर्मः पृथङ्निर्दिश्यते सा प्रतिव-स्तूपमा । प्रतिवस्तु प्रतिवाक्यार्थमुपमा समानधर्माऽस्यामिति ब्युत्पत्तेः। य-थाऽत्रेव भ्राजते राजत इत्येक एव धर्म उपमानोपमेयवाक्ययोः पृथग्मित्र-पदाभ्यां निर्दिष्टः ॥ यथावा—

कलापिनां मयूराणां वर्गे समूहं उत्कण्ठयत्यू वें कण्ठो यस्य ताहशं करोति । तथा मकरव्वजः कामो यूनां तरुणानां मानसमुत्कण्ठयत्युत्मुकं करोतीत्यर्थभेदेsपि शब्दावृत्तिः ॥ शमयतीति ॥ जलधरस्य मेघस्य धारा पङ्किश्वातकतरुणा-नां चिरकालमुपनतां प्राप्तां तृषं पिपासां शमयति । वधूलोचनयोर्जलधारा अ-श्रुपक्किश्व कामिनां प्रवासेच्छां क्षपयतीत्येक एव नाशरूपोऽर्थः शब्दभेदेनोक्त इ-त्यर्थावृत्तिः ॥ वदनेनेति ॥ पाथसां जलानाम् । अत्र निलीयतेशब्दस्य तद्र्थ-स्य तिरोधानस्य चावृत्तिः । ननु प्रस्तुतार्थं सकृदुपात्तस्य प्रसङ्गादप्रस्तुतोपकारि-त्वे दीपकमित्युक्तं न चावृत्तौ तत्संभवतीति कथमावृत्तिदीपकमुक्तमिलाशङ्कचा-ह—एवंचेति॥दीपस्थानीयशब्दार्थयोरावृत्तौ चेखर्थः॥ प्रस्तुताप्रस्तुतेति॥ अम्बदमालादीनां विरहोद्दीपकतया केवलप्रस्तुतत्वाचन्द्रविम्बारविन्द्योश्च केव-लाप्रस्तुतत्वादिति भावः ॥ दीपकच्छायेति ॥ दीपकसाद्द्येखर्थः । तच प्रस्तुताप्रस्तुतोपकारयोग्यत्वं वर्षतीत्यादौ श्ठेषवशेनास्तीति भावः। मात्रपदेन दीपकात्पृथगेवायमलंकारो नतु तत्प्रभेद प्रति सूचितम् । अतएव दण्डिना 'अर्थावृत्तिः पदावृत्तिरुभयावृत्तिरित्यपि । दीपकस्थानमेवेष्टमलंकारत्रयं यथा ॥' इत्युक्त्वा विकसन्तीत्याद्यदाहृतम् । दीपकस्थानं स्थानापत्रं सदशमिति यावत्।। ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इति आवृत्तिदीपकप्रकरणम् ॥ १६ ॥

सकृद्धमों क्तिप्रसङ्गादसकृत्तद्धमों किगम्यवाक्यार्थसादृश्यकं प्रतिवस्तूपमालंकारं लक्ष्यति—वाक्ययोरिति ॥ द्विवचनमनेकाभिप्रायं मालानुरोधादिति बोध्यम् । एकसामान्ये एकस्मिन्समानधर्मे सति सूरः सूर्यः । लक्षणं व्याचष्टे—यत्रेति ॥ उपमानोपमेयेति भावप्रधानम् । उपमानोपमेयभावपरयोरित्यर्थः । पृथगिति भिन्नशब्देनेत्यर्थः । अयमेव च वस्तुप्रतिवस्तुभाव इत्युच्यते ॥

स्थिरा शैली गुणवतां खल्बुद्ध्या न वाध्यते । रबदीपस्य हि शिला वालयापि न नाइयते ॥

यथावा--

तवामृतस्यन्दिनि पादपङ्कजे निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति । स्थितेऽरविन्दे मकरन्दिनभेरे मधुवतो नेक्षुरसं समीक्षते ॥

अत्र यद्यपि उपमेयवाक्ये अनिच्छा उपभानवाक्ये अवीक्षेति धर्मभेदः प्रति-भाति तथापि वीक्षणमात्रस्यावर्जनीयस्य प्रतिपेधानहेत्वादिच्छापूर्वकवीक्षाप्र-तिपेधोऽयमनिच्छापर्यवसित एवेति धर्मेंक्यमनुसंधेयम् । अर्थावृत्तिदीपकं प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां वा, प्रतिवस्तूपमा तु प्रस्तुताप्रस्तुतानामिति विशेषः। आवृत्तिदीपकं वैधम्र्येण न संभवति, प्रतिवस्तूपमा तु वैधम्येण दृश्यते । यथा— स्थिरेति ॥ शैली सद्भत्तम् । रत्नमेव दीपो रत्नदीपः । अत्र पूर्वार्धमुपमेयवा-क्यमुत्तरार्धमुपमानवाक्यम् । उभयत्र च नाज्ञाभावरूपः समानधर्मः शब्दभेदे-नोपात्तः । सामान्याभावमात्रवोधकस्यापि वाधतेरत्र नाशरूपविशेषपरत्वात् । अयमेव च पूर्वोदाहरणाद्भेदः ॥ तचेति॥ ईश्वरं प्रति भक्तस्योक्तिः। अमृतप्रस-वणशीले तव पादपङ्कजे निवेशित आत्माऽन्तः करणं येन तादशो भक्तोऽन्यद-मृतातिरिक्तं फलं कथमिच्छति । न कथमपील्यथैः । अमृतं चात्र ब्रह्मानन्दरूपं हि निश्चितम् । मधुत्रतो भ्रमरो मकरन्देन रसेन निर्भरे व्याप्तेऽरविन्दे स्थिते सति इक्षरसं न समीक्षत इत्यपमानवाक्यम् ॥ अवर्जनीयस्येति ॥ अनिष्टे-Sपि खसामग्रीवशाजायमानस्येत्यर्थः ॥ इच्छापूर्वकेति ॥ तथाच समीक्षतेरि-च्छापूर्वकवीक्षणे लक्षणेति भावः ॥ अनिच्छापर्यवसित इति ॥ सविशेष-णे हीति न्यायादिति भावः । उन्मीलन्ति कद्म्बानीति पूर्वोदाहृतायामथीवृत्ता-वतिव्याप्तिमाशङ्कयाह—अर्थावृत्तिरित्यादि ॥ शब्दावृत्तौ तु धर्मस्यैकेनैव शब्देनावृत्त्या बोधनात्र भित्रशब्दबोध्यत्वमिति नातिव्याप्तिरतोऽर्थावृत्तिपर्यन्ता-नुधावनम् । एवंच भिन्नशब्द्वोध्यैकधर्मगम्यं प्रस्तुताप्रस्तुतवाक्यार्थसाद्द्यं प्र-तिवस्तूपमेति लक्षणं बोध्यम् । दृष्टान्तालंकारेऽतिव्याप्तिवारणाय भिन्नशब्दबो-ध्येति । तत्र तु विम्वप्रतिविम्बभावापन्नधर्मगम्यं सादृश्यमिति नातिव्याप्तिः । 'दिवि भाति यथा भानुस्तथा त्वं भ्राजसे भुवि' इत्यादिवाक्यार्थापमायामतिव्या-प्तिवारणाय गम्यमिति । अर्थावृत्तिवारणाय प्रस्तुताप्रस्तुतेति । 'आननं मृगशा-वाक्या वीक्य लोलालकावृतम् । भ्रमद्रमरसंकीर्णे स्मरामि सरसीरुहम् ॥' इति स्मरणालंकारेऽतिव्याप्तिवारणाय वाक्यार्थेति । अत्रहि दिवि भातीति वाक्या-र्थोपमायां गमनाधिकरणशोभाश्रयभानुसदशो भूम्यधिकरणकशोभाश्रयस्त्वामि-ति प्रतीतिवन स्पर्यमाणतादशसरोहहसदशं तथाविधमाननमिति प्रतीतिर्येन वाक्यार्थगतीपमा गम्या स्यात्, किंतु स्मरणासंपृक्ता तादशसरीरुहसदशं ताद-शमाननिमति पदार्थगतोपमैवेति तद्वारणिमति दिक् । प्रस्तुताप्रस्तुतयोधमत्क-तिविशेषाप्रयोजकतया वाऽलंकारभेदप्रयोजकत्वमित्यखरसादाह--अयंचेति॥

विद्वानेव विज्ञानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।
निह वन्ध्या विज्ञानाति गुर्वी प्रसववेदनाम्॥
यदि सन्ति गुणाः पुंसां विकसन्त्येव ते स्वयम्।
निह कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते॥ ५०॥

वक्ष्यमाण इत्यर्थः ॥ विद्वानेवेति ॥ यद्यप्यन्ययोगव्यवच्छेदार्थेनैवकारेणावि-द्वात्र जानातीति पूर्ववाक्यार्थस्तस्य च निह वन्ध्येत्युत्तरवाक्यार्थः सधमेव तथा पि रूपवलेवाकाश इलादिप्रयोगवारणाय भावान्वयस्याप्यावश्यकतया विद्वान् जानातीति वाक्यार्थस्यापि प्रतीतेस्तद्भिप्रायेण वैधम्योदाहरणत्वं वोध्यम् । ननु वैधम्येणोपमेति व्याहतं तस्याः साधम्येरूपत्वादिति चेत्सत्यम् । वैधम्येणो-पन्यस्तेन नहि वन्ध्येति वाक्यार्थेनाक्षिप्तस्यापि त प्रसवित्रयेव जानातीति वा-क्यार्थस्योपमानत्वेन विवक्षणान्मखतो वैधर्म्यप्रतीताविष साधर्म्य एव पर्यवसा-नान दोषः । वैधर्म्येणेखस्य च वैधर्म्यद्वारेखर्थः ॥ यदि सन्तीति ॥ एवका-रो भिन्नकमः। खयमेव विकसन्ति । प्रकाशन्त इत्यर्थः । अत्रापि गुणाः खयं प्रकाशन्त इति भावान्वयविधर्मा कस्त्ररिकामोदः शपथेन न ज्ञायत इति वा-क्यार्थस्तदाक्षिप्तेन किंतु खयमेव प्रकाशत इति वाक्यार्थेन चौपम्यं गम्यमिति पूबवद्वैधम्योदाहरणत्वसंगतिः । यत्त्वत्र कैश्चिदुक्तं विद्वानेवेति पद्यं भवतु नाम कथंचिद्वैधम्योदाहरणं यदि सन्तीति तु न युक्तम् । वैधम्योदाहरणं हि प्रस्तुतध-र्मिविशेषोपारूढार्थदार्ट्याय खाक्षिप्तखव्यतिरेकसमानजातीयस्य धर्म्यन्तरारूढ-स्याप्रकृतार्थस्य कथनम् । यथा-- वंशभवो गुणवानपि सङ्गविशेषेण पूज्यते पुरुषः । नहि तुम्बीफलविकलो वीणादण्डः प्रयाति महिमानम् ॥' इत्यादौ । अत्र हि सङ्गविशेषेण पूज्यते इति प्रस्तुतार्थाक्षिप्तस्य सङ्गविशेषेण विना न पू-ज्यत इति खन्यतिरेकस्य सजातीयो नहि तुम्बीफलविकल इत्याद्यप्रकृतार्थो निवद्ध इति वैधर्म्योदाहरणत्वम् । यदि सन्तीस्त्रत् तु खयं प्रकाशन्ते न परेणे-त्यस्य प्रस्तुतस्यैव सजातीयोऽप्रकृतोऽर्थः । शपथेन न विभाव्यते किंतु स्वयमे-वेति प्रकृतार्थानुरूपतयेव पर्यवसानादिति । तत्रेदं वक्तव्यम् । वंशभव इत्यादि-भवदुदाहृतपद्येऽपि कथं वैधर्म्योदाहरणत्वम् । नहीत्यादेस्तुम्बीफलविकलो म-हिमानं न प्रयात्यपि तु तद्युक्त इति प्रकृतार्थानुरूपतयैव पर्यवसानादिति किं ब-हुना सर्वत्रेव वैधम्योदाहरणे साधम्यपर्यवसानं विना नोपमानिर्वाह इति तदु-च्छेदप्रसङ्गः । अथापातप्रतिपन्नेनाप्रकृतवाक्यार्थेन वैधर्म्यात्तदुदाहरणत्वं तर्हि प्रकृतेऽपि तदस्तीति तुल्यम् । यदपि प्रस्तुतेत्यादि वैधम्योदाहरणत्वनिर्वचनं तद्युक्तम् । 'भटाः परेषां विशरारुतामगुर्दधत्यवाते स्थिरतां हि पांसवः' इति वेधम्यदृष्टान्ताव्यापनात् नह्यत्र प्रस्तुतवाक्यार्थः खव्यतिरेकमाक्षिपति किं त्वप्रकृतवाक्यार्थ एवेति दिक् ॥५०॥ इति प्रतिवस्तूपमालंकारप्रकरणम् ॥१७॥ दृष्टान्तालंकारः १८

चेद्धिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तद्लंकृतिः। त्वमेव कीर्तिमात्राजन्विधुरेव हि कान्तिमान्॥ ५१॥

यत्रोपमानोपमेयवाक्ययोभिन्नावेव धर्मी विम्वप्रतिविम्बभावेन निर्दिष्टौ तत्र दृष्टान्तः । त्वमेव कीर्तिमानित्यत्र कीर्तिकान्त्योविम्बप्रतिविम्बभावः । यथावा—

कामं नृपाः सन्ति सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् । नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः॥

यथावा--

देवीं वाचमुपासते हि वहवः सारं तु सारस्वतं जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्किष्टो मुरारिः कविः। अव्धिर्लक्षित एव वानरभटैः किं त्वस्य गम्भीरता-मापातालनिमम्मपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः॥

नन्वत्रोपमानोपमेयवाक्ययोर्ज्ञानमेक एव धर्म इति प्रतिवस्तूपमा युक्ता । मैवम् । अचेतने मन्थाचले ज्ञानस्य बाधितत्वेन तत्र ज्ञानातीत्यनेन सागरा-

दृष्टान्तालंकारं लक्ष्यति -चेदिति ॥ वाक्ययोरिखनुवर्तते । धर्मयोरिखध्या-हार्यम् । तदिति तदेखर्थकम् । अर्थतो व्याचष्टे--यत्रेति ॥ यत्र काव्ये तथा चोपमानोपमेयवाक्यार्थघटकधर्मयोविम्बप्रतिबिम्बभावो दृष्टान्त इति लक्षणम् ॥ काममिति ॥ अनेन प्रकृतराजविशेषेण राजन्वतीं शोभनराजवतीम् । 'राज-न्वान्सौराज्ये' इति निपातः। नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि सप्तविशतिः, तारास्तदितराः गोवलीवर्दन्यायात् । यहा भौमादयः । संकुला व्याप्ता । ज्योतिष्मतीति प्राश-स्ये मतुप्र । अत्र राजन्वतीज्योतिष्मतीत्वनयोविम्वप्रतिविम्बभावः पूर्वोदाहर-णे कीर्तिकान्त्योविम्बप्रतिविम्बभावप्रयोजकं मनोहारित्वरूपं सादद्यमार्थिमिह तु राजज्योतिषोः प्राशस्त्यरूपं तच्छाव्दमिति भेदः ॥ देवीमिति ॥ देवीं वाचं सरस्वतीं बहुव उपासते हि सेवन्त एव हि । हिशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । तु परं सरखतीसंवन्धि सारमसौ प्रसिद्धो गुरुकुले क्विष्टोऽध्ययनश्रमवान्मुरारिनामा क-विर्नितरामतिशयेन जानीते। अत्र दष्टान्तमाह। वानररूपैर्भटैर्योद्धिमरिच्धिरुङ्खित एव किं त्वस्याच्धेर्गम्भीरतां पातालपर्यन्तिनिसम्रा पीवरा स्थूला तुर्वस्यैवंविधो मन्थाचलो मन्दरादिरेव जानातीति । दृष्टान्तोदाहरणत्वासङ्गतिमाशङ्कते-निविति ॥ वाक्ययोरिति सप्तमी। एकधर्म इत्यनन्तरं शब्दभेदेन निर्दिष्ट इति शेषः। सागरस्याधस्तनो योऽवधिरिति गम्भीरतापदार्थकथनं, संस्पर्शस्तु लक्षणया जानात्यर्थ इति वोध्यम् । तथाच धर्मभेदात्र प्रतिवस्तूपमा किंतु सारस्रतसार-ज्ञानसागराधस्तलावधिसंस्पर्शयोर्विम्बप्रतिविम्बभावाद्दृष्टान्तालंकार एवेत्याशयः। 'वर्षसम्बद्मालेयं वर्षसेषा च शर्वरी' इतिवत्पदावृत्तिदीपकं स्यादिसाशक्र्य धस्तलावधि संस्पर्शमात्रस्य विवक्षितत्वात् । अत्रोदाहरणे पदावृत्तिदीपका-द्विशेषः पूर्ववत्प्रस्तुताप्रस्तुतविषयत्वकृतो द्रष्टच्यः । वैधम्येणाप्ययं दृश्यते । कृतं च गर्वाभिमुखं सनस्त्वया किमन्यदेवं निहताश्च नो द्विपः । तमांसि तिष्टन्ति हि तावदंशुमान्न यावदायात्युदयादिमोलिताम् ॥५१॥

निद्रश्नालंकारः १९
वाक्यर्थयोः सदशयोरिक्यारोपो निदर्शना ।
यदौतः सौम्यता सेयं पूर्णेन्दोरकलङ्किता ॥ ५२॥
अत्र दातृपुरुषसौम्यत्वस्योपमेयवाक्यार्थस्य पूर्णेन्दोरकलङ्कत्वस्योपमानवाक्यार्थस्य यस्तद्भयामैक्यारोपः ॥ यथावा—

अरण्यरुदितं कृतं शवशरीरमुद्वर्तितं स्थलेऽव्जमवरोपितं सुचिरमूपरे वर्षितम् । श्वपुच्छमवनामितं वधिरकर्णजापः कृतो धतोऽन्धमुखद्पेणो यदबुधो जनः सेवितः॥

समाधत्ते—अन्नेति ॥ पूर्ववत् अर्थावृत्तिप्रतिवस्तूपमयोरिव । प्रस्तुताप्रस्तुतेति दृष्टान्तः प्रस्तुताप्रस्तुत्तिवषयः, पदावृत्तिस्तु तदन्यतरमात्रविषयेत्यर्थः । यद्यप्यन्त्रात्मनेपद्परसोपदभेदेन पदभेदान्न पदावृत्तिशङ्कोचिता, तथापि पाठपरिवर्तनेन पदाभेदेऽपि न पदावृत्तेरयं विषय इति बोधियतुमेतदुक्तम् । अयं दृष्टान्तः ॥ कृतं चेति ॥ वृपं प्रति मन्त्रिण उक्तिः । हे राजन्, त्वया मनो गर्वस्याभिमुखं न तु गर्वितं कृतं च । किमन्यद्पेक्षितमिति शेषः । एवं शस्त्रप्रयोगादिकं विना नोऽस्माकं द्विषः शत्रवो निहताश्च न तु निहनिष्यन्ते । अंग्रुमान् सूर्यो यावदुद्याद्रमोलितां शिरोलंकारतां नायाति तावदेव तमांसि तिष्ठन्ति तस्मिन्तु तथाभूते न तिष्ठन्तिति दृष्टान्तः । अत्र मनोगर्वाभिमुखीकरणवरिहननयोरंग्रुम-दुद्याचलमस्तकानागमनतमःस्थित्योध्य यथाकमं वैधम्येण विम्वप्रतिविम्वभावः ॥ ५१ ॥ इति दृष्टान्तालंकारप्रकरणम् ॥ १८ ॥

निदर्शनां लक्षयति—वाक्यार्थयोरिति ॥ सदशवाक्यार्थसंबन्धी य ऐ-क्यारोपः उपमेयवाक्यार्थे उपमानवाक्यार्थाभेदारोप इति यावत् ॥ यद्दातुरि-ति ॥ दातुः सौम्यतेति । यदिति सामान्ये नपुंसकम् । सेयमिति विधेयाभि-प्रायकं स्त्रीलिङ्गम् ॥ यत्तद्भ्यामिति ॥ यद्यपि मुखं चन्द्र इतिवद्दातुः सौम्य-ता पूर्णेन्दोरकलङ्कतेत्येतावताप्येक्यारोपः संभवति तथापि यत्तद्भयां शीघ्रं स्फु-टतया तदवगमात्तदुपन्यासः ॥ अरण्येति ॥ अवुधो मूर्खो जनः सेवितः । यदिति गुणीभूतसेवनिकयापरामर्शः । उत्तरवाक्यगतेन यच्छब्देन तच्छब्दाक्षे-पात् । तदरण्यहितं कृतमित्याद्यन्वयः । उद्वर्तनं यवगोधूमादिचूर्णेन मलापक-

१ 'आरोपे निदर्शना'. २ 'या दातुः'.

अत्राबुधजनसेवाया अरण्यरोदनादीनां यत्तन्यामैक्यारोपः ॥ ५२ ॥
पदार्थवृत्तिमप्येके वदन्त्यन्यां निदर्शनाम् ।
त्वन्नेत्रयुगुलं धत्ते लीलां नीलाम्बुजनमनोः ॥ ५३ ॥
अत्र नेत्रयुगले नीलाम्बुजगतलीलापदार्थारोपो निदर्शना । यथावा—
वियोगे गौडनारीणां यो गण्डतलपाण्डिमा ।
अद्दर्यत स खर्जुरीमञ्जरीगर्भरेणुषु ॥

पूर्वस्मिन्नुदाहरणे उपमेये उपमानधर्मारोप इह तूपमाने उपमेयधर्मारोप इति भेदः । उभयत्राप्यन्यधर्मस्यान्यत्रासंभवेन तत्सदृशधर्माक्षेपादृशपमेय पर्यवसानं तुल्यम् । इयं पदार्थवृत्तिनिद्र्शना छिलतोपमेति जयदेवेन व्यावहता । यद्यपि वियोगे गौडनारीणामिति छोकः प्राचीनैर्वाक्यार्थवृत्तिनिद्र्शनायामुदाहृतस्वथापि विशिष्टयोधर्मयोरैक्यारोपो वाक्यार्थवृत्तिनिद्र्शना । उपमानोपमेययोरन्यतरस्मिन्नन्यतरधर्मारोपः पदार्थवृत्तिनिद्र्शनित व्यवस्था माश्रित्यासाभिरहोदाहृतः । एवंच ।

र्षणम् । स्थले निर्जलप्रदेशे । अब्जं जलजम् । ऊपरे अङ्करायोग्यक्षारभूभागे । शुनः पुच्छं श्वपुच्छमवनामितमृजुतासंपादनाय नम्रीकृतम् । विधरस्य कर्णे जप एव जापः । प्रलाप इत्यर्थः । अन्धस्य मुखे तत्संमुखं दर्पणो धृतः । इत्येवं निर-र्थकत्वेन सदशानामनेकेषां वाक्यार्थानामबुधजनसेवनरूपप्रकृतवाक्यार्थे ऐक्या-रोपः पूर्वत्र त्वेकस्यैवैक्यारोप इति विशेषः ॥ ५२ ॥ निदर्शनान्तरमाह—प-दार्थेति ॥ पदार्थवृत्तिं पदार्थसंविन्धनीम् । एके आलंकारिकाः । अन्यां पूर्वी-क्तलक्षणाम्।। त्वन्नेत्रेति ।। लीलां शोभाम् । नीलाम्बुजन्मनोनीलोतपलयोः ।। वियोग इति ॥ गौडदेशगतानां नारीणां वियोगे स्वकान्तवियोगकाले यो ग-ण्डतले पाण्डिमा पाण्डवर्णी भवति स खर्जुरीणां लतानां मजरीगर्भस्थेषु रेणुष्व-दृश्यत दृष्ट इत्यन्वयः । उपमाने यथोक्तरेणुरूपे उपमेये उपमानधर्मारोप एव पदार्थनिदर्शनायाः प्राचीनेरुदाहरणात्कथमियं पदार्थनिदर्शनोच्यत इति शङ्का-यामाह—उभयत्रेति ॥ उपमेये उपमानधर्मारोपे उपमाने उपमेयधर्मारोपे चेत्यर्थः । तथा चौपम्यपर्यवसायित्वस्येव पदार्थनिद्र्यनाजीवातुत्वेनारोपविषय-स्योपमेयत्वेन निवेशे प्रयोजनाभावादिहापि सा युक्तैवेति भावः। नन्वेवं सित वाक्यार्थनिदर्शनालक्षणस्यात्रातिन्याप्तिरित्याशयवानाह—यद्यपीति॥ वियोग-कालीनगौडनारीगण्डतलपाण्डिमः खर्जुरीमञ्जरीगर्भरेणुदृष्टपाण्डिमथ यत्तद्रथा-मैक्यारोपसत्त्वादिति भावः । अर्थविशेषविवक्षयातिव्याप्ति परिहरनेव खाभिम-तनिदर्शनाद्वयविषयविभागं दर्शयति —तथापीति ॥ विशिष्टयोर्विम्बप्रतिवि-म्बभावापन्नधर्मविशिष्टयोः । एवंच वाक्यार्थशब्देनैतादशार्थविवक्षणाद्वियोग इलागुदाहरणे नातिन्याप्तिरिति भावः ॥ उपमानेत्यादि ॥ एतच सरूपकथ-

१ 'गर्भामप्यन्ये'.

'त्विय सित शिव दातर्यसद्भयर्थिताना-मितरमनुसरन्तो दर्शयन्तोऽर्थिमुद्राम्। चरमचरणपातेदुर्यहं दोग्धुकामाः करभमनुसरामः कामधेनौ स्थितायाम्॥' 'दोर्श्यामिटिंघ तितीर्पन्तस्तुष्टुवुस्ते गुणार्णवम्॥'

इत्यादिषु वाक्यभेदाभावेऽपि वाक्यार्थवृत्तिरेव निदर्शना । विशिष्टयोरै-क्यारोपसद्भावात् ॥ वाक्यार्थयोः सदृशयोरिति लक्षणावयवे वाक्यार्थशब्देन बिम्बप्रतिबिम्बभावापन्नवस्तुविशिष्टस्बरूपयोः प्रस्तुताप्रस्तुतधर्मयोर्विवक्षित-त्वादिति । एवंच—

> 'राजसेवा मनुष्याणामसिधारावलेहनम् । पञ्चाननपरिष्वङ्गो व्यालीवदनचुम्बनम् ॥'

नम् । नत्वेवंरूपेण लक्षणे निवेशः । ताद्रूप्यरूपकातिव्याप्तिवारणायोपमा कल्पकत्वस्यारोपविशेषणस्यावश्यकत्वेनोपमाकल्पकस्तत्तद्धर्मारोप इत्येतावत एव लक्षणस्य निर्दुष्टत्वात् । तदुक्तम्--'अभवन्वस्तुसंवन्ध उपमापरिकल्पकः' इति । ताद्रप्यरूपके तु ताद्र्प्यावच्छित्राभेद एव विवक्षितो न पुनरुपमेति तद्वारणम्। नतु त्विय सतीत्यायुदाहरणे कापि निदर्शना न स्यादन्यधर्मस्यान्यत्रारोपात्, एकवाक्यत्वेन वाक्यार्थभेदाभावाच । पदार्थवाक्यार्थनिदर्शनयोरसंभवादिलाश-क्र्याह—एवंचेति ॥ उक्तव्यवस्थाश्रयणे चेलर्थः ॥ विशिष्टयोरिति ॥ बिम्बप्रतिबिम्बभावापन्नवस्तुविशिष्टयोरित्यर्थः । तत्र तावत्पूर्वपद्ये भोः शिव, अस्मदभ्यर्थितानां दातरि त्वयि सति इतरं क्षद्रं प्रभुमनुसरन्तोऽर्थिनां मुद्रां चिह्नं दर्शयन्तो वयं कामधेनौ स्थितायां दोग्धुकामाश्चरमयोः पाश्चात्त्ययोश्चरण-योः पातैर्दुर्प्यहं दुःखेन प्राह्यं करभमुष्ट्रशिशुमनुसराम इल्पर्थके सकलकामदम-हैश्वरकालीनक्षद्रधनिकानुसरणकर्तुः कामधेनुस्थितिकालीनतथाविधकरभानुसर-णकर्तुश्रेक्यारोपः । तत्रोपमानकोटिविशेषणयोः कामधेनुकरभयोरुपमेयकोटि-विशेषणयोश्च महेश्वरश्चद्रधनिकयोर्यथाक्रमं विम्वप्रतिविम्बभावो बोध्यः। एवम-नुसरणयोरि । एवं दोभ्यामित्यत्राप्यिधगुणसमूहयोर्विम्बप्रतिविम्बभावो बो-ध्यः ॥ नन्वियं व्यवस्था मूलविरुद्धेलाशङ्क्याह—वाक्यार्थयोरिति ॥ ननु वाक्यार्थशब्दस्यावान्तरवाक्यार्थसाधारणानेकपदार्थपरत्वेनैवोक्तोदाहरणसंग्रह-संभवादेवंविधगुरुतरार्थपरत्वं न युक्तमित्यत आह—एवंचेति॥ एवंविधार्थवि-वक्षणे चेत्यर्थः । अवलेहनं जिह्नया घटनम् । पत्राननः सिंहस्तस्य परिष्वज्ञ आलिङ्गनम् । व्याली भुजङ्गी । अशक्यत्वं वलवदनिष्टजनकत्वं च सा-धारणो धर्मः । प्रस्तुतवृत्तान्तो राजसेवा । निदर्शनायास्तह्रक्षणस्य न क्षतिर्ना-व्याप्तिः । तयोः प्रस्तुताप्रस्तुतवृत्तान्तयोः असिधारादिभिः समं राज्ञो विम्बप्रतिबिम्बभावात्तद्विशिष्टयोश्चेक्यारोपादिति भावः । एवं तर्हि सदशयो-

१ 'लक्षणवाक्ये'.

# निद्शेनालंकारः १९] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

48

इत्यत्र प्रस्तुताप्रस्तुतवृत्तान्तयोरेकैकपदोपात्तत्वेऽपि वाक्यार्थवृत्तिनिद्रशं-नाया न क्षतिः । तयोर्विम्बप्रतिबिम्बभावापन्नवस्तुविशिष्टव्यवहाररूपत्वात् । अतएव निद्रशंनाया रूपकाद्मेदः । रूपके द्यविशिष्टयोरेव मुखचनद्रादिकयो-रैक्यारोपः ।

> 'अङ्किदण्डो हरेरूध्वंमुत्क्षिसो बलिनिग्रहे । विधिविष्टरपद्मस्य नालदण्डो मुदेऽस्तु वै:॥'

इति विशिष्टे रूपकोदाहरणेऽपि न विम्बमतिविम्बभावापन्नवस्तुविशिष्ट-रूपता ।विधिविष्टरकमलिख्टस्वरूपसाधारणधर्मवत्तासंपादनार्थमेव तद्विशे-पणोपादानात् । यदातुः सौम्यतेत्यादिनिदर्शनोदाहरणेषु दातृपूर्णेन्द्वादीनामा-नन्दकरत्वादिनेवात्र विशेषणयोर्विम्बमतिविम्बभावाभावात् । यत्रतु विपयि-विशेषणानां परस्परसादृश्येन विम्बमतिविम्बभावोऽस्ति ।

> 'ज्योत्साभसम्ब्हुरणधवला विश्वती तारकास्थी-न्यन्तर्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम् । द्वीपाद्वीपं अमित द्विती चन्द्रमुद्राकपाले न्यस्तं सिद्धाञ्जनपरिमलं लान्छनस्य च्छलेन ॥'

रैक्यारोप इत्येव लक्षणमस्त्वत्याशङ्क्याह--अतएवेति ॥ एतादशविशेषणवि-वक्षणादेवेत्यर्थः । भेदो व्यावृत्तिः । तथाच तदभावे रूपकेऽतिप्रसङ्गः स्यादिति भावः। कथमनेन तद्वारणं तत्राह—रूपके इति ॥ अविशिष्टयोर्वि-म्बप्रतिबिम्बभावापन्नवस्त्वविशिष्टयोः । विम्बप्रतिबिम्बभावापनेत्यस्य व्यावृत्तिं दर्शयति-अङ्गिदण्ड इत्यादि ॥ वलेदें सविशेषस्य निम्रहे वन्धने कर्तव्ये ऊर्ध्वमुतिक्षप्तो हरेरक्षिदण्डो वो युष्माकं मुदेऽस्त्वित संवन्धः । कीद्शः । विधे-र्त्रह्मणो विष्टर आसनं तद्र्पस्य पद्मस्य नालदण्ड इत्यर्थः ॥ विदिष्टिरूपकेति॥ ऊर्ध्वोत्क्षिप्तत्वविशिष्टाब्रिदण्डविधिविष्टरपद्मसंविधत्वविशिष्टनालदण्डसंविधिरूप-केल्यर्थः ॥ विशेषणेति ॥ ऊर्ध्वोत्क्षिप्तत्वरूपोपमेयविशेषणविधिविष्टरपद्मसं-वन्धित्वरूपोपमानविशेषणयोरित्यर्थः । एवकारसूचितविम्बप्रतिविम्बभावव्यति-रेकं स्फुटयति--यद्दातुरिति ॥ अभावादिति ॥ साद्द्याभावादिति भा-वः। रूपकविशेषेऽतिव्याप्तिमाशङ्कय परिहरति--यत्रत्वित्यादिना ॥ यत्र त्वित्यस्य इति सावयवरूपकोदाहरणे इत्यम्रेतनेनान्वयः । विषयविषयिविशेषणा-नामारोपविषयारोप्यमाणसंबन्धिनां विशेषणानाम् ॥ ज्योतस्त्रेति ॥ इयं रात्रि-रेव कापालिकी योगिनी द्वीपाद्वीपान्तरं भ्रमतीलन्वयः । एतत्प्रधानरूपकम् । एतदङ्गभूतान्यपराणि विशेषणैः प्रतिपाद्यन्ते । यथा ज्योत्स्रारूपेण भस्मना छु-रणमङ्गलेपस्तेन धवला तारकारूपाण्यस्थीनि विभ्रती अन्तर्धानस्य व्यसने कौ-तुके रसिका चन्द्ररूपे मुद्राकपाले न्यस्तं लाञ्छनस्य छलेन सिद्धान्ननस्य परिमलं चूर्णे दधती धारयन्ती । दीक्षाकालगृहीतोपकरणेषु मुद्रोपपदनाम्ना पाखण्डानां

१ 'अस्तु नः'. २ 'विशिष्टरूपक'.

इति सावयवरूपकोदाहरणे । तत्रापि विषयविषयिणोस्तद्विशेषाणां च प्रत्येकमेवैक्यारोपो न तु ज्योत्स्नादिविशिष्टरात्रिरूपविषयस्य भस्मादिविशिष्ट-कापालिकीरूपविषयिणश्च विशिष्टरूपेणेक्यारोपोऽस्तीति । तस्मादाजसेवा म-जुष्याणामित्यादाविष वाक्यार्थवृत्तिनिदर्शनैव युक्ता । मतान्तरे त्विह पदार्थ-वृत्त्येव निदर्शनया भाव्यमिति ॥ ५३ ॥

> अपरां वोधनं प्राहुः क्रिययासत्सद्र्थयोः । नक्ष्येद्राजिवरोधीति क्षीणं चन्द्रोदये तमः ॥ ५४ ॥ उदयन्नेव सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम् । विभावर्यन्समृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहः ॥ ५५ ॥

कस्यचित्किंचित्कियाविशिष्टस्य स्विक्रयया परान्त्रत्यसतः सतो वार्थस्य बोधनं यन्निबध्यते तदपरां निदर्शनामाहुः । असदर्थवोधने उत्तरार्धमुदाहर-व्यवहार इति चण्डीदासः । मुद्रापरिमलशब्दौ प्रशंसार्थावित्यन्ये । मुद्रा चिह्नं तद्रपे कपाल इति वार्थः । विषयविषयिणो रात्रिकापालिक्योः । तद्विशेषणानाः तत्संबन्धिनां ज्योत्स्राभस्मादीनां यथाश्रुते रात्रिकापालिकीति समासस्योत्तरपदा-र्थप्रधानतया ज्योत्लादीनां रात्रिविशेषणत्वाभावादसंगतेः ॥ प्रत्येकमेवेति ॥ गुद्धस्वरूपेनैवेद्यर्थः ॥ नित्वति ॥ उक्तयुक्तया विशेषणत्वाभावादिति भावः । वस्त्रतो भसादेः कापालिकीं प्रत्यपि न विशेषणत्वमपि त तत्कोटिनिविष्टत्व-मेवेत्यपि वोध्यम् । वाक्यार्थशब्दस्य विम्वप्रतिबिम्बभावापन्नवस्तुविशिष्टार्थपर-त्वमङ्गीकृत्य राजसेवेत्युदाहरणे वाक्यार्थवृत्तिनिदर्शनात्वमुक्तमुपसंहरति--तस्मादिति ॥ उक्तलक्षणस्य व्यवस्थितत्वादिलर्थः ॥ मतान्तरे त्विति ॥ सदशयोर्वाक्यार्थयोरैक्यारोप इति यथाश्रुतलक्षणाङ्गीकर्तृमते इत्यर्थः। इह राज-सेवेत्युदाहरणे ॥ पदार्थवृत्त्यैवेति ॥ उपमाकल्पक एकपदार्थ अपरपदार्थत-द्धर्मान्यतरारोप इति तह्रक्षणस्य तदिभमतत्वादिति भावः ॥ ५३ ॥ निदर्शना-न्तरमाह-अपराभिति ॥ पूर्वविलक्षणामिलर्थः । निदर्शनामिल्यनुपज्यते । क्रिययाऽसत्सदर्थयोर्वोधनमपरां निदर्शनां प्राहुरिति संबन्धः । सदसदर्थयोरिति वक्तव्येऽपि छन्दोत्तरोधादित्थमभिधानम् । 'समुद्राश्राद्धः' इत्यादिसौत्रनिर्देशेन पूर्वनिपातविधेरनित्यत्वज्ञापनात् । लक्षणं न्याचष्टे-कस्यचिदिति ॥ अत्रा-सतः सतो वेति विभागकथनं नतु लक्षणान्तर्गतम् । उदासीनार्थवोधने चम-त्कारित्वाभावेनैवानतिप्रसङ्गात् । स्विकयया सहकारिभूतया कियाविशिष्टस्य व-स्तनः संवन्ध्यर्थस्य वोधनं वोधानुकूलो व्यापारो यनिवध्यते वर्ण्यते सा निद-र्शनेति लक्षणम् । अथ 'निवातपद्मोदरसोदराभ्यां विलोचनाभ्यामवलोकयन्ती । न केवलं यूनि मनोभवेऽपि व्यनक्ति कंचित्तपसः प्रभावम् ॥' इत्यादावतिव्या-प्तिः । अवलोकनिकयाविशिष्टया कामिन्या तपःप्रभाववोधनस्य वर्णनादिति चेन्न ।

१ 'विभावनं समृद्धीनां'.

णम् । तत्र नश्येदिति बोधयदिति वक्तव्ये बोधयदित्यस्य गम्यमानस्वाद्य-योगः । ततश्च राज्ञा चन्द्रेण सह विरुध्य स्वयं नाशिक्रयया विशिष्टं तमः स्वकीयनाशिक्षयया दृष्टान्तभूतया अन्योऽप्येवं राजविरुद्धश्चेन्नश्येदित्यनिष्टप-यवसायिनमर्थं बोधयदेव नष्टमिति निवन्धनादसद्धीनदर्शना । तथा उत्तर-श्लोके सविता स्वोदयसमय एव पग्नेषु लक्ष्मीमाद्धानः स्वया प्रजलक्ष्म्या-धानिक्रयया परान्यित समृद्धीनां फलं सुहद्नुग्रह एवेति श्रेयस्करमर्थं बो-धयन्निवद्ध इति सद्धीनदर्शना ॥

यथावा--

उन्नतं पदमवाप्य यो छघुईँछयैव स पतेदिति झुवन् । भौछशेखरगतः पृपद्गणश्चारुमारुतधुतः पतत्यधः ॥

अत्र गिरिशेखरगतो वृष्टिविन्दुगणो मन्दमारुतमात्रेणापि कम्पितः पतन् लघोरुन्नतपद्ग्राप्तिः पतनहेतुरित्यसद्धं वोधयन्निवद्ध इत्यसद्धंनिद्र्शना ॥

> चूडामणिपदे धत्ते यो देवं रविमागतम् । सतां कार्यातिथेयीति वोधयन्गृहमेधिनः ॥

अत्र समागतं रविं शिरसा संभावयञ्जदयाचलः स्वनिष्ठया रविधारणिकि-यया समागतानां सतामेवं गृहमेधिभिरातिथ्यं कार्यमिति सद्धं बोधयित्नि-बद्ध इति सद्धंनिद्द्याना । अत्र केचित् वाक्यार्थवृत्तिपदार्थवृत्तिनिद्द्याना-द्वयमसंभवद्वस्तुसंबन्धनिबन्धनमिति, तृतीया तु संभवद्वस्तुसंबन्धनिबन्ध-नेति च व्यवहरन्ति । तथाहि । आद्यनिद्द्यानायां वाक्यार्थयोरेक्यमसंभव-

किययेखनेन दृष्टान्तिविधया वोधनस्य विविध्ततः तद्या । उक्तोदाहरणे च लिङ्ग-विधया वोधकत्वेन तद्यावात् । इत्थंच दृष्टान्ततया कियाविशिष्टस्यार्थवोधकत्वं वर्ण्यमानं निद्रश्नेति पर्यवसितम् । नर्येदिखत्र वोधनस्यावर्णनात्कथमु-दाहरणत्वमत आह—तत्रेति ॥ उदाहरण इत्यर्थः । लक्ष्ये लक्षणं संगमयित —तत्रश्चेति ॥ वोधनस्य गम्यमानत्वाचेखर्थः ॥ दृष्टान्तभूतयेति ॥ दृष्टान्तभूतयोति ॥ दृष्टान्तभूतयोति ॥ दृष्टान्तभूतयोति ॥ दृष्टान्तभूतयोति ॥ दृष्टान्तभूतयोति ॥ दृष्टान्तभूतया । विद्यमानयेखर्थः । दृष्टान्तो भूतः संजातो ययेति वा । एवं तमोवचन्द्रस्यापि राजत्वं 'सोमो वे त्राह्मणानां राजा' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धम् । अनिष्टपर्यवसायिनमर्थे नाशरूपानिष्टसाधनं राजविरुद्धत्वरूपमर्थम् ॥ उन्नतमिति ॥ यो लघुरलपवुद्धिरलपपरिमाणश्च स उन्नतं पदमुत्कर्षमुचस्थानं चावाप्य हेलयेव पतिदिति व्रुवन्कथयन् शेलशेखरगतो गिरिमस्तकवर्ता पृषद्गणो जलविन्दुसम्वश्वारणा मन्देनापि मारुतेन श्वतः किम्पतोऽधः पतत्युत्कर्षाद्वीयते अधोदेशे च पततील्यर्थः । श्ववमिति पाठे वोधनस्य पूर्ववद्गम्यमानत्वादप्रयोगः । दृषत्कण इति पाठे पाषाणकण इत्यर्थः ॥ चूडेति ॥ उद्याचल आगतं देवं रविं चूडामणेः पदे स्थाने मस्तके धत्ते धारयति । किं कुर्वन् । गृहमेधिनो गृहस्थान्सत्तामातिथेयी कार्येति वोधयन् । आतिथेयी आतिथ्यम् । अत्र उक्तिदर्शनान्तिथेयी कार्येति वोधयन् । आतिथेयी आतिथ्यम् । अत्र उक्तनिदर्शनान

त्तयोः साम्ये पर्यवस्यति । द्वितीयनिदर्शनायामप्यन्यधर्मोऽन्यत्रासंभवन्धभिणोः साम्ये पर्यवस्यति । तृतीयनिदर्शनायां तु स्वित्रयया परान्यति सदसदर्थवोधनं संभवदेव समतां गर्भीकरोति । बोधयन् गृहमेधिन इत्यादौ हि
कारीपोऽग्निरध्यापयतीतिवत्समर्थाचरणे णिचः प्रयोगः । ततश्च यथा कारीपोऽग्निः शीतापनयनेन बट्टनध्ययनसमर्थान्करोति एवं वर्ण्यमानः पर्वतः
स्वयमुपमानभावेन गृहमेधिन उक्तवोधनसमर्थान्कर्तुं क्षमते । यथायं पर्वतः
समागतं रिवं शिरसा संभावयत्येवं गृहमेधी समागतं सन्तमुचितपूजया
संभावयेदिति । अतः संभवति बोधनसंबन्ध इति ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

व्यतिरेकालंकारः २० व्यतिरेको विशेपश्रेदुपमानोपमेययोः । शैला इवोन्नताः सन्तः किंतु प्रकृतिकोमलाः ॥ ५६ ॥

अयमुपमेयाधिक्यपर्यवसायी व्यतिरेकः । यथावा—
पञ्चवतः कल्पतरोरेप विशेषः करस्य ते वीर ।
भूषयति कर्णमेकः परस्तु कर्णं तिरस्कुरुते ॥
तन्न्यूनत्वपर्यवसायी यथा—
रक्तस्त्वं नवपञ्चवैरहमपि श्लाच्यैः प्रियाया गुणैस्त्वामायान्ति शिलीमुखाः स्मरधनुर्मुकास्तथा मामपि ।

त्रयविषये केचिदित्यस्येति व्यवहरन्तीत्यनेनान्वयः ॥ धार्मणोरित ॥ धर्मयोः साम्यमात्रेण चमत्कारानिष्पत्तेस्तत्कृतविम्वप्रतिविम्वभावेन धर्मिणोः साम्यावगतिरिति भावः ॥ गर्भीकरोतीति ॥ खिवशेषणत्वेन खीकरोतीत्यर्थः । दृष्टान्तत्या वोधनस्यैव तत्र विवक्षितत्वात् । एतदेवोपपादयित—वोधय-िन्नत्यादिना ॥ करीषं ग्रुष्कगोमयं तस्यायं कारीपः । समर्थाचरणे समर्थकरणे । सामर्थात्पादन इति यावत् । भावप्राधान्यात् । उपमानभावेन दृष्टान्तत्वेन । एवं प्रदिश्चिते निदर्शनात्रये निदर्शनापदप्रवृत्तिनिमित्तस्यकस्याभावान्नानार्थे एव निदर्शनाशब्द इति वोष्यम् ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इति निदर्शनाठंकारप्रकरणम्॥ १९॥ व्यतिरेकं ठक्षयिति—व्यतिरेक इति ॥ विशेषो वैठक्षण्यम् । उपमेयस्या-

व्यतिरेकं लक्षयित — व्यतिरेक इति ॥ विशेषो वेलक्षण्यम् । उपमेयस्याधिक्यमुत्कर्षः ॥ प्रख्नवत इति ॥ पत्रम्यर्थे तिसल् । कल्पतरोः पष्ठवतः पष्ठ-वादेष वक्ष्यमाणस्ते तव करस्य विशेष इति संवन्थः । एकः पष्ठवः परो हस्तः कर्णे राधेयं तिरस्कुरुते । दानातिशयेनेति भावः । अत्रोपमेयस्य करस्योत्कर्षः । पूर्वोदाहरणे उन्नतत्वेनोपम्यं शाब्दिमह तु रक्तवत्कोमलादिप्रयुक्तं तद्गम्यमिति भदः ॥ तक्यूनत्वेति ॥ उपमेयन्यूनत्वेत्यर्थः ॥ रक्तस्त्वमिति ॥ अशोक्षश्चं प्रति विरहिणः कस्यचिद्वक्तिः । हे अशोक, आवयोः सर्वे तुल्यं समानम् । अहं केवलं धात्रा विधात्रा सशोकः शोकसहितः कृतः, त्वं तु शोकरहित इस्य-

### सहोत्त्यलंकारः २१] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

६३

कान्तापादतलाहितस्तव मुदे तद्वनममाप्यावयोः सर्वे तुल्यमशोक केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः॥ अनुभयपर्यवसायी यथा—

दृढतरनिबद्धमुष्टेः कोशनिपण्णस्य सहजमलिनस्य । कृपणस्य कृपाणस्य च केवलमाकारतो भेदः॥

सहोत्त्यलंकारः २१ सहोक्तिः सहभावश्रेद्धासते जनरञ्जनः । दिगन्तमगमत्तस्य कीर्तिः प्रत्यर्थिभिः सह ॥ ५७॥

शोकपदश्छेपादवगम्यते । किं तत्सर्वे समानं तत्राह—रक्त इत्यादि ॥ त्वं नू-तनैः पह्नवैः रक्तो रक्तवर्णः, अहमपि प्रियायाः श्वाधनीयैर्गुणैः सौन्दर्यादिभी रक्तोऽनुरक्तः । अर्थात्प्रयायाम् । हे सखे, त्वां प्रति शिलीमुखा भ्रमरा आ-यान्ति, मां प्रस्पपि स्मरेण धनुषा मुक्ताः प्रेरिताः शिलीमुखा वाणा आयान्ति । एवं कान्तायाः पादतलस्याघातो यथा तव मुदे संतोषाय तद्वत्तथा ममापि संतो-षायेत्यर्थः । कामिनीपाद्घातेनाशोकस्य पुष्पोद्रम इति कविप्रसिद्धिः । अत्रोपमेयस्य सशोकत्वेनापकर्षः अनुभयपर्यवसायी उपमेयोत्कर्षापकर्षान्यतरपर्यवसानर-हितः ॥ दढतरेति ॥ कृपणस्य कृपाणस्य खङ्गस्य चाकारतो दीर्घाद्वर्णादाकृतेश्व केवलं भेदो वैलक्षण्यम् । प्रकारान्तरेण तु साम्यमेवेल्यर्थः । कथं तत्राह—हुट-तरेत्यादि ॥ दढतरं निबदो मुष्टियेंनेति । कृपणपक्षे धनव्ययवैमुख्येन मुष्टिमो-चनाभावात् । खङ्गपक्षे तु दढतरं निबद्धः संबद्धो मुष्टिर्मुष्टियाह्यभागो यस्येत्यर्थः । कोशो भाण्डारगृहं तत्र निषण्ण उपविष्टः कृपणः । कोशे पिधानके निषण्णः स्थित इति खङ्गपक्षे । सहजमिलनः स्वभावमिलनः । मिलनवेपत्वात्कृपणः । खङ्गस्त कृष्णवर्णत्वादिति । एवंच किंचिद्धमेप्रयुक्तसाम्यवत्तया प्रतीयमानयोः किंचिद्धमे-प्रयुक्तवैलक्षण्यं व्यतिरेकशरीरम् । वैलक्षण्यं तु क्वचिदुपमेयस्योत्कर्षे क्वचिच तदप-कर्षे पर्यवसन्नं क्रचित्त तदन्यतरपर्यवसानविर्हेऽपि खवैचित्र्यविश्रान्तमात्रमिति बोध्यम्। एतेन चरमभेदद्वयतदुदाहरणदूषणं कस्यचिदापातरमणीयमिव भासमानं प्रत्युक्तं वेदितव्यम् । अत्यन्तासारतया तु नानुवादमईतीत्युपरम्यते ॥ ५६ ॥ इति व्यतिरेकालंकारप्रकरणम् ॥ २०॥

सहोक्तिरिति लक्ष्यनिर्देशः। सहभाव इत्यादि लक्षणम्। सहभावः साहित्यम्। जनरजनः सहदयजनाहादकः। एवंच चमत्कृतिजनकं साहित्यं सहोक्तिरिति लक्षणम्॥ दिगन्तिमिति॥ तस्य राज्ञः कीर्तिः प्रत्यथिभिः शत्रुभिः सह दिगन्तमगमदित्यन्वयः। अत्रच तृतीयाया निरूपितत्वार्थकतया प्रत्यथिनिरूपितसानिह्त्ववती कीर्तिर्गमनाश्रय इति वोषे एकधर्मान्वयित्वरूपसाहित्यवलात्प्रत्यर्थिनामपि

१ 'श्रेदुच्यते'.

यथावा---

छाया संश्रयते तलं विटिषनां श्रान्तेव पान्धेः समं
मूलं याति सरोजलस्य जडता ग्लानेव मीनैः सह ।
आचामत्यहिमां छुदीधितिरपस्ततेव लोकैः समं
निदा गर्भगृहं सह प्रविशति क्लान्तेव कान्ताजनैः ॥
जनरञ्जन इत्युक्तेरनेन सार्धे विहराम्बुराशेरित्यादौन सहोक्तिरलंकारः ५७

विनोक्तयलंकारः २२ विनोक्तिंश्रेद्विना किंचित्प्रस्तुतं हीनम्रुच्यते । विद्या हृद्यापि सावद्या विना विनयसंपद्म् ॥ ५८॥ यथावा—

यश्च रामं न पश्येतु यं च रामो न पश्यित । निन्दितः स भवे छोके स्वात्माप्येनं विगर्हते ॥ अत्रच रामदर्शनेन विना हीनत्वं विनाशब्दमन्तरेणैव दर्शितम् ॥ ५८ ॥

गमनान्वयप्रतीतिः । तदुक्तम्—'सा सहिक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्' इति ॥ छायेति ॥ प्रीष्मतों मध्याहवर्णनमिदम् । छाया पान्थेरध्वगैः समं सार्धे विटिपनां तरूणां तलं मूलप्रदेशं संश्रयते । कुत इलाकाङ्कायामुत्प्रेक्षते— श्रान्तेवेति ॥ श्रमश्रात्रातपातिशयकृतो बोध्यः । एवमग्रेऽपि । जडता शीत-लता ग्लानेव सरोजलस्य मूलमधोदेशं मीनैमंत्स्यः सह याति गच्छति । ग्लानिर्वलापचयः । तथा अहिमा उष्णा अंशवः करा यस्यवंभृतस्य रवेदींधिति-स्तिव संतिव सती लोकैः सममपः जलानि आचामित पिवति । 'दीधितिः स्त्रियाम्' इल्यमरः । निद्रा क्लान्तेव सती कान्ताजनैः सह गर्भगृहमभ्यन्तरगृहं प्रविशति । तत्रैव तदुद्भवात् । क्लान्तिस्तेजोहानिः । सौकुमार्यातिशयेन तत्सौ-लभ्यात्कान्तोपादानम् ॥ इत्यादाविति ॥ इन्दुमतीखयंवरे रघुवंशे 'अनेन सार्धे विहराम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनममेरेषु । द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पेरपाकृत-स्वेदलवा महद्धिः ॥' इति पद्यम् । अत्र सहोक्तिचमत्कारित्वान्नालंकाररूपेन्तर्थः ॥ ५० ॥ इति सहोक्तिप्रकरणम् ॥ २१ ॥

विनोक्तिरिति ॥ किंचिद्विना प्रस्तुतं वर्ण्ये हीनं दुष्टमुच्यते चेत्तदा विनोक्तिनामालंकार इत्यर्थः ॥ विद्यति ॥ विनयसंपत्ति विना या विद्या सा हृद्या मनोहरापि दुष्टेत्यन्वयः । अत्र प्रस्तुताया विद्याया विनयं विना दुष्टत्वमुक्तम् ॥ यश्चेति॥ यः पुरुषः खात्मा खान्तःकरणं विगर्हते निन्दति । रामदर्शनं विनेति रामकर्मकं रामकर्तृकं च दर्शनं विनेत्यर्थः ॥ अन्तरेणापीति ॥ विनापीत्यर्थः । तथाच विनोक्तिरित्यर्थयहणं नतु शब्दयहणमिति भावः ॥ ५८ ॥ प्रकारान्तरमाह—

१ 'विनोक्तिः स्याद्विना'.

तचेतिंकचिद्विना रम्थं विनोक्तिः सापि कथ्यते । विना खलैविभात्येषा राजेन्द्र भवतः सभा ॥ ५९ ॥

यथावा---

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रि-नैंशस्याचिर्दुतभुज इव च्छिन्नभूयिष्टध्मा । मोहेनान्तर्वरतनुरियं छक्ष्यते मुक्तकल्पा गङ्गा रोधःपतनकल्पा गृह्णतीव प्रसादम् ॥ अत्र तमःप्रसृतीन्विना निशादीनां रम्यत्वं विनाशब्दमन्तरेण दर्शितम् ५९

समासोक्त्यलंकारः २३ समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत् । अयमैन्द्रीमुखं पद्य रक्तश्चम्वति चन्द्रमाः ॥ ६० ॥ यत्र प्रस्तुतवृत्तान्ते वर्ण्यमाने विशेषणसाम्यवलादप्रस्तुतवृत्तान्तस्यापि पन

तचेदिति ॥ तत्प्रस्तुतं किंचिद्विना रम्यं चेत्सापि विनोक्तिः कथ्यत इत्यन्वयः । इत्यंच किंचिक्वतिरेकेण प्रस्तुतस्य रम्यत्वारम्यत्वान्यतरवर्णनं विनोक्तिरिति प्रकारद्वयसाधारणं सामान्यलक्षणं बोध्यम् । यतु हृद्यो विनार्थसंबन्ध एव विनोक्तिः । हृद्यत्वं च विनाकृतस्य वस्तुनो रमणीयत्वारमणीयत्वाभ्यां भवतीत्यर्वाचीनैरुक्तम् । तद्युक्तम् । कारणं विना कार्योत्पत्तिकथनरूपे विभावनालंकारेऽतिव्याप्तेर्वारणाय विनार्थसंबन्धप्रयुक्तप्रस्तुतगतरमणीयत्वादेरपि लक्षणे निवेशस्यावस्यकत्वादिति ॥ आविर्भूत इति ॥ मानवतीविषये नायकस्य परामर्शोऽयम् । इयं वरतनुरन्तः अन्तःकरणे मोहेन मानावेशेन मुक्तकत्पा ईपन्यूनमुक्ता लक्ष्यते । केव । पूर्व रोधसस्तटस्य पतनेन कल्या अनन्तरं कालुध्यापगमात्प्रसादं नैर्मल्यं गृह्वत्याश्रयन्ती गङ्गेव । तथा शिशिन चन्द्रे आविर्भूते उदिते सित तमसा मुच्यमाना रात्रिरिव । एवं छित्रो नष्टो भूयिष्टो धूमो यस्या एवंभूता । निश्चि भवस्य हुतभुजो वहेर्राचः शिखेवे स्वि ॥ दिशितमिति ॥ अर्थतो वोधितमित्यर्थः ॥ ५९ ॥ इति विनोक्तिप्रकरणम् ॥ २२ ॥

समासोक्ति लक्षयति—समासोक्तिरिति ॥ प्रस्तुते वर्ण्यमाने अप्रस्तुतस्याप्रस्तुतवृत्तान्तस्य परिस्कूर्तिश्चेत्तदा समासोक्तिरित्यन्वयः ॥ अयिमिति ॥ इन्द्रस्येयमैन्द्री प्राची । मुखमादिभागो वदनं च रक्तो रक्तवर्णोऽनुरक्तश्च । चुन्द्रन्येयमैन्द्री प्राची । मुखमादिभागो वदनं च रक्तो रक्तवर्णोऽनुरक्तश्च । चुन्द्रन्यं संवन्धो वक्त्रसंयोगिवशेषश्च । यथाश्रुतलक्षणस्य वक्ष्यमाणे 'असाबुद्यमा-रूढः कान्तिमान्रक्तमण्डलः । राजा हरित सर्वस्य हृदयं मृदुलैः करैः ॥' इत्यादिप्रकृताप्रकृतश्चेषेऽतिव्याप्तेराह—विशेषणसाम्यवलादिति ॥विशेषणमान्त्रसाम्यवलादित्यर्थः । एवंच विशेषणमात्रसाम्यगम्याप्रस्तुतवृत्तान्तत्वं लक्षणं वोध्यम् । उदाहृतश्चेषे चाप्रकृतनृपवृत्तान्तस्य विशेष्यवाचिना श्चिष्टेन राजपदेनाप्य-

रिस्फूर्तिस्तत्र समासोक्तिरलंकारः । समासेन संक्षेपेण प्रस्तुताप्रस्तुतवृत्तान्त-योर्वचनात् । उदाहरणमयमैन्द्रीति ॥ अत्रिह् चन्द्रस्य प्राचीप्रारम्भलक्षण-सुखसंबन्धलक्षणे उदये वर्ण्यमाने सुखशब्दस्य प्रारम्भवदनसाधारण्याद्रक्त-शब्दस्यारुणकामुकसाधारण्याचुम्बतीत्यस्य प्रस्तुतार्थसंबन्धमात्रपरस्य शक्या-र्थान्तरसाधारण्याच चन्द्रमःशब्दगतपुंलिङ्गेन ऐन्द्रीशब्दगतस्त्रीलिङ्गेन तत्प्रति-पाद्येन्द्रसंबन्धित्वेन चोपस्कृताद्यस्तुतपरवनितासक्तपुरुषवृत्तान्तः प्रतीयते ।

यथावा-

व्यावल्गत्कुचभारमाकुलकचं व्यालोलहारावलि प्रेङ्कत्कुण्डलशोभिगण्डयुगलं प्रस्वेदि वक्राम्बुजम् । शश्वदत्तकरप्रहारमधिकश्वासं रसादेतया यसात्कन्दुक सादरं सुभगया संसेव्यसे तत्कृती ॥

अत्र कन्दुकवृत्तान्ते वर्ण्यमाने व्यावलात्कुचभारमित्यादिक्रियाविशेषणसा-म्याद्विपरीतरतासक्तनायिकावृत्तान्तः प्रतीयते । पूर्वत्र विशेषणानि श्लिष्टानि इह साधारणानीति भेदः । सारूप्यादिष समासोक्तिर्देश्यते । यथावा—

वगमात्रातिव्याप्तिः । संज्ञाप्रवृत्तिनिमित्तमवयवार्थे दर्शयति —समासेनेति ॥ वचनात्प्रतिपादनात् । लक्ष्ये लक्षणं संगमयति — अत्रेति ॥ प्रारम्भ आदिभागः । साधारण्याच्छ्रिष्टत्वात् । यद्यपि चुम्वतीत्यत्र न श्लेषस्तथाप्यर्थद्वयबोधकत्वमात्रेण तस्य साधारण्योक्तिः । उपस्कृतादिति साधारण्यादित्यस्य विशेषणम् । तत्र च-न्द्रमःशब्दगतेन पुंलिङ्गेन नायकत्वाभिव्यक्तया उपस्कारः । ऐन्द्रीति खरूपपरं त-द्रतेन स्नीलिद्गेन तदर्थस्य नायिकात्वाभिन्यक्तया ऐन्द्रीशब्दप्रतिपायेनेन्द्रसंबन्धि-त्वेन च परकीयत्वाभिव्यक्तयेति बोध्यम् । वृत्तान्तो व्यवहारो मुखचुम्बनरूपः ॥ व्यावलगदिति ॥ नायिकानुरक्तस्य कस्यचित्कीडालम्वनं कन्दुकं प्रत्युक्तिरियम्। हे कन्दुक, सुभगया सुन्दर्या एतया नायिकया रसात्प्रीतिविशेषात्सादरमा-दरसिंहतं यथा स्यात्तथा यस्मात्संसेव्यसे तत्तस्मात्कृती धन्योऽसीत्यन्वयः । क-थमित्याकाङ्कायां संसेवनिकयां विशिनष्टि - व्यावल्गदित्यादिना ॥ व्याव-ल्गन्विशेषत आसमन्ताचलन्कुचभारो यत्र तथा आकुलाः कीडावेशेनेतस्ततः पर्यस्ताः कचाः केशा यत्र एवं व्यालोला दोलायिता हारावलियेत्र तथा प्रेक्क-द्यां चन्नलाभ्यां कुण्डलाभ्यां शोभायुक्तं गण्डयुगलं यत्र एवं प्रस्वेदयुक्तं व-क्त्राम्बजं यत्र शश्वितरन्तरं दत्तः करेण प्रहारो यत्र तथा अधिकः श्वासो यत्र तथेति । वृत्तान्तः विपरीतरतरूपः । अत्रापि कन्दुकशब्दगतपुं छिङ्गेन ना-यकत्वाभिव्यक्तिर्वोध्या ॥ ऋिष्टानीति ॥ श्हेषमूलकाभेदाध्यवसायविषयाणी-त्यर्थः ॥ साधारणानीति ॥ श्हेषं विनैव प्रकृताप्रकृतवृत्तान्तयोरनुगतानी-त्यर्थः । तथाच लक्षणे साम्यशब्देन श्लेषकृतं स्वारितकं च साम्यं विविक्षितिम- पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरहाम् । वहोर्देष्टं कालादपरिमव मन्ये वनिमदं निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धं द्रहयति ॥

अत्र वनवर्णने प्रस्तुते तत्सारूप्यात्कुटुम्बिषु धनसंतानादिसमृद्धयसमृद्धि-विपर्यासं प्राप्तस्य तत्समाश्रयस्य प्रामनगरादेर्वृत्तान्तः प्रतीयते ।

अत्र च प्रस्तुताप्रस्तुतसाधारणविशेषणवलात्सारूप्यवलाद्वाऽप्रस्तुतवृत्ता-न्तस्य प्रत्यायनं तत्प्रस्तुते विशेष्ये तत्समारोपार्थं सर्वथैव प्रस्तुतानन्वयिनः कविसंरम्भगोचरःवायोगात् । ततश्च समासोक्तावप्रस्तुतव्यवहारसमारोपश्चा-रुताहेतुः । नतु रूपक इव प्रस्तुतेऽप्रस्तुतरूपसमारोपोऽस्ति । मुखं चन्द्र ति भावः । सारूप्यात्सादृश्यात् ॥ पुरेति ॥ उत्तररामचरिते सीतात्यागानन्तरं कदाचिद्वनं प्रति गतस्य भगवतो रामचन्द्रस्ययमुक्तिः । पुरा वनवासकाले सार-तां नदीनां स्रोतः प्रवाहो यत्र प्रदेशे आसीत्तत्राधना प्रिलनमस्तीति शेषः । तथा क्षितिरुहां तरूणां घनविरलभावो विपर्यासं वैपरीलं यातः प्राप्तः । सा-न्द्राणां विरलता विरलानां शाखापल्लवादिशृद्धा सान्द्रता जातेल्यः । तथाच वहोर्भूयसः कालादनन्तरं दृष्टमिदं वनमपरमन्यदिव मन्ये । परंतु शैलानां पर्व-तानां निवेशो विन्यासविशेषस्तदेवेदं वनमिति वुद्धि प्रत्यभिज्ञारूपां द्रहयति । दढीकरोतीलर्थः ॥ तटसारूप्यादिति ॥ वनसाद्दयादिलर्थः । प्रामादौ किं वनसाद्दयमित्याकाङ्गायां तद्गर्भे विशेषणमाह-कुटुम्बिष्वत्यादि ॥ कुटु-म्बिषु कुटुम्बिगतो यो धनसमृद्धोर्विपर्यासस्तं प्राप्तस्येत्यर्थः । तत्समाश्रयस्य तादृशकुटुम्बिसमाश्रयस्य । तथाच समृद्धसमृद्धिविपर्यासवदाश्रयःवं साद्दय-मिति भावः । किमस्य साह्यस्योत्थापकमिति चेत् घनविरलेति विपर्यासमिति च । ताभ्यामुक्तसादर्यगर्भीकरणात् । एतेनैषां सादर्यगर्भविशेषणोपस्थापि-तसाद्दरयमूला समासोक्तिरिति मूलप्रन्थानववीधस्तद्विरोधश्चेति दूषणमलप्रकं वेदितव्यम् । अथात्राप्रस्तुतवृत्तान्तस्य विशेषणसाम्यगम्यत्वाभावादुक्तलक्षण-स्याव्याप्तिरिति चेन्न । विशेषणसाम्यगम्यसाद्द्यगम्यत्वेऽपि विशेषणसाम्यगम्य-त्वानपायात् । प्राधान्यात् परं सारूप्यस्य गमकत्वोपदर्शनं सारूप्यादिति प्रन्थे-न । एवमग्रेऽपि विशेषणसाम्यात्साद्याद्वेति विकल्पोक्तिरपि प्राधान्याभिप्राये-विति निरवद्यम् । एवमलंकारं निरूप्य तद्वीधप्रकारमुपदर्शयितं भूमिकामारचय-ति—अत्रचेति ॥ अत्र एषूदाहरणेषु ॥ अप्रस्तुतवृत्तान्तस्येति ॥ अप्र-कृतजारादिसंबन्धिनश्चम्बनादिव्यवहारस्येखर्थः । विशेष्ये चन्द्रादौ । सर्वथा आ-रोपानारोपान्यतरविधया प्रस्तुतानन्वयिनः प्रकृतान्वयग्रन्यस्य । यद्वा सर्वेथेवे-त्यस्य कवीत्यादिनान्वयः । कविसंरम्भेति स्वप्रतीत्युद्देश्यकशब्दसंदर्भरूपकवि-व्यापारेत्यर्थः । अप्रस्तुतवृत्तान्तस्य चुम्बनादेरिवाप्रस्तुतस्य जारादेरपि चन्द्रादौ समारोप इति मतं निराकरोति नित्विति ॥ अप्रस्तुतरूपेति ॥ अप्रखुत-

इत्यत्र मुखे चन्द्रत्वारोपहेतुचन्द्रपदसमभिष्याहारवद्रकश्चम्बति चन्द्रमा इ-त्यादिसमासोक्तयुदाहरणे चन्द्रादौ जारत्वाद्यारोपहेतोस्तद्वाचकपदसमभिष्या-हारस्याभावात् ।

'निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः । धारानिपातैः सह किं नु वान्तश्चनद्दोऽयमित्यार्ततरं ररासे ॥'

इत्येकदेशविवर्तिरूपकोदाहरण इव प्रस्तुतेऽप्रस्तुतरूपसमारोपगमकस्या-ण्यभावात् । तत्रहि विद्युन्नयनैरित्यत्र निरीक्षणानुगुण्यादुत्तरपदार्थप्रधानरूप-मयूरव्यंसकादिसमासव्यवस्थितादुत्तरपदार्थभूतनयनान्वयानुरोधात् । पयो-देऽनुक्तमपि द्रष्टृपुरुपत्वरूपणं गम्यमुपगम्यते । न चेह तथा निरीक्षणवत् त्वय्यागते किमिति वेपत एष सिन्धुरिति श्लोके सेतुकृत्त्वादिवज्ञाप्रस्तुतासा-धारणवृत्तान्त उपात्तोऽस्ति । नापि श्लिष्टसाधारणादिविश्रेपणसमपितयोः प्रस्तुताप्रस्तुतवृत्तान्तयोरप्रस्तुतवृत्तान्तस्य विद्युन्नयनवत्प्राधान्यमस्ति । येन तदनुरोधात्त्वं सेतुमन्यकृदित्यत्रेव प्रस्तुतेऽनुक्तमप्यप्रस्तुतरूपसमारोपमभ्युप-

स्वरूपेत्यर्थः । कुतस्तत्राह—मुखमित्यादि॥ तादात्म्येन चन्द्रारोपे तादात्म्य-स्यापि संसर्गविधया आरोपविषयत्वात्तस्य च चन्द्रत्वानतिरेकाचन्द्रत्वारोपेत्यु-क्तिः । नतु प्रकारतया चन्द्रत्वारोप उक्त इति भ्रमितव्यम् । चन्द्र इति शब्देन चन्द्रविशेषणत्वेनोपस्थितस्य चन्द्रत्वस्य मुखे विशेषणतयारोपासंभवात्। एवं जारत्वेलत्रापि बोध्यम् ॥ तद्वाचकेति ॥ जारवाचकेलर्थः । ननु जारादिपद-समभिन्याहाराभावाच्छ्रौतारोपासंभवेऽप्यार्थो जाराद्यारोपोऽसु । नहि तत्रापि तादशसमभिव्याहारो हेतु:। रूपकथ्वनेरुच्छेदापत्तेरित्याशङ्कचाह—निरीक्ष्ये-ति ॥ पयोदो मेघो विद्युत्खरूपैर्नयनैर्निशायामभिसारिकाया मुखं वीक्ष्य धारा-निपातैः सह वान्तः किं त्वयं चन्द्र इति मत्वा आर्ततरं यथा स्यात्तथा ररासे आकन्दनं कृतवानित्यर्थः । उदाहरण इवेति व्यतिरेकदृष्टान्तः । अत्र यथा गमकमस्ति तादशस्य समासोत्तयुदाहरणे अभावादित्यर्थः । तथा चार्थारोपोऽप्य-नाशङ्कय इति भावः । नतु विद्युत्रयनैरिखत्र किमप्रस्तुतारोपगमकं यदभावात्स-मासोक्ती तदभाव इत्यतो गमकं दर्शयितुमाह—तत्रेति ॥ आनुगुण्यादानुकू-ल्यात् । उपमितसमासस्य पूर्वपदार्थप्रधानतया नयनसदशविद्युत्करणकत्वस्य निरीक्षणे संभवारप्रतिकूलत्वमिति भावः । अनुक्तमप्यश्रीतमपि । रूपणमारोपः॥ नचेहेति ॥ इह समासोत्तयुदाहरणे तथा निरीक्षणवन्नयनकरणकनिरीक्षणवत्से-तुकृत्त्वादीत्यादिना मन्थनकारित्वपरिप्रहः । नन्विहापि परनाथिकामुखचुम्बनरू-पस्याप्रस्तुतवृत्तान्तस्याप्रस्तुतासाधारणधर्मत्वाद्प्रस्तुतारोपगमकत्वं शह्वय परिहरति—नापीति ॥ साधारणादीत्यादिना सादश्यगर्भविशेषणसंग्रहः। वृत्तान्तयोरिति निर्धारणे षष्टी । वृत्तान्तयोर्मध्य इलर्थः ॥ विद्युत्त्रयनवदिति ॥ प्रस्तुताप्रस्तुतयोर्विद्यन्नयनयोर्मध्ये यथा नयनस्योत्तरपदार्थप्रधानसमासात्प्राधा-न्यं तथा नास्तीलर्थः । सेतुमन्थकृदिति पाठः । सेतुबन्धकृदिति त्वपपाठः

गच्छेम । तसाद्विशेषणसमिपिताप्रस्तुतव्यवहारसमारोपमात्रमिह चारुता-हेतुः । यद्यपि प्रस्तुताप्रस्तुतवृत्तान्तयोरिह श्चिष्टसाधारणविशेषणसमिपित-योभिन्नपदोपात्तविशेषणयोरिव विशेष्येणैव साक्षादन्वयादिस्त समप्राधान्य-म्, तथाप्यप्रस्तुतवृत्तान्तान्वयानुरोधान्न प्रस्तुतेऽप्रस्तुतरूपसमारोपोऽङ्गीका-र्यः । तथाहि । यथा प्रस्तुतविशेष्येऽप्रस्तुतवृत्तान्तस्यान्वयायोग्यता तथैव-वाप्रस्तुतेऽपि जारादौ नास्ति प्रस्तुतवृत्तान्तस्यान्वययोग्यता । एवंच समप्र-धानयोः प्रस्तुताप्रस्तुतवृत्तान्तयोरन्यतरस्यावश्यमारोपेऽभ्युपगन्तव्ये श्वत ए-व प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्यारोपश्चारुताहेतुरिति युक्तम् । नन्वेवं सित विशेषणसाम्या दप्रस्तुतस्य गम्यत्वं समासोक्तिः ।

> 'विशेषणानां साम्येन यत्र प्रस्तुतवर्तिनाम् । अप्रस्तुतस्य गम्यत्वं सा समासोक्तिरिष्यते ॥'

इत्यादीनि प्राचीनानां समासोक्तिलक्षणानि न संगच्छेरन् । प्रस्तुते श्लिष्ट-साधारणादिविशेषणसमर्पितानुरागपूर्वकवदनचुम्बनाद्यप्रस्तुतवृत्तान्तसमारो-पमात्रस्य चारुताहेतुत्वाभ्युपगमेन विशेषणसाम्यकृतकामुकाद्यप्रस्तुतधर्मिव्य-ञ्जनानपेक्षणादिति चेदुच्यते । स्वरूपतोऽप्रस्तुतवृत्तान्तस्यारोपो न चारुता-

कथंचिद्रथतोऽनुवादत्वेन व्याख्येयः । उपसंहरति—तस्मादिति ॥ मात्रपदे-नाप्रस्तुतारोपव्यवच्छेदः । विद्युत्रयनवत्समासकृतश्रौतप्राधान्याभावेऽपि विशे-षणसामर्थ्यावगतस्याप्रस्तुतवृत्तान्तस्यार्थतः प्राधान्यमस्तीति शङ्कते—यद्यपी-ति॥ नन्वप्रस्तुतवृत्तान्ताभिन्नत्वेनावगतस्य प्रस्तुतवृत्तान्तस्य प्रस्तुतविशेष्येणान्व-यात्कथमप्रस्तुतवृत्तान्तस्य प्राधान्यमिति शङ्कानिरासायाह—विशेष्येणैवेति ॥ ननु तद्विशेषणीभूतप्रस्तुतवृत्तान्तेनेत्येवकारार्थः। समाधत्ते —तथापीति॥ अय-माशयः। नात्र श्विष्टादिविशेषणैः समर्पितः परनायिकामुखचुम्वनादिरूपोऽप्रस्तुत-वृत्तान्तः प्रागेव क्यापि व्युत्पत्त्याप्रस्तुतगतत्वेन भासते । यद्वलादप्रस्तुतजाराद्या-रोपावगतिः स्यात् । अपितु ताटस्थ्येनावगते तस्मिन्प्रस्तुतासंबद्धस्य कविसंरम्भ-गोचरत्वायोगात्प्रस्तुतसमारोपितत्वेन पर्यवसानमिति । नन्वेवं तर्हि प्रस्तुतवृत्तान्त-स्याप्यप्रस्तुतवृत्तान्ताश्रये धर्मिण्यन्वयोऽस्तु । असंबद्धाभिधानप्रसङ्गपरिहारस्य तुल्यत्वादित्याशङ्क्याह—तथाहीत्यादि ॥ एवं च योग्यतारूपविनिगमकविरहे च मास्तु तर्हि कस्याप्यन्वयस्तत्राह—अवइयमिति॥अन्यथासंबद्धाभिधानप्र-सङ्गापत्तेरिति भावः। किं तर्हि विनिगमकं तत्राह-श्रुत एवेति ॥ तथाच श्रुत-प्रस्तुतार्थोपस्कारकतया चमत्कारहेतुत्वमेव विनिगमकमिति भाव:। अप्रस्तुतस्या-प्रस्तुतवृत्तान्तस्य ॥ नन्वेविमिति ॥ एवमप्रस्तुतसमारोपानङ्गीकारे । विशेषणा-नामिलादि विद्यानाथोक्तं लक्षणम् । प्रस्तुतवर्तिनां विशेषणानां साम्येनेल्यन्वयः । प्रस्तुते समारोपार्थम् । अप्रस्तुतधर्मिव्यञ्जनानपेक्षायामपि समारोप्यमाणवृत्तान्त-विशेषणत्वार्थे तदपेक्षणात्र लक्षणासंगतिरित्याह—स्वरूपत इति॥ सहपतोऽ-प्रस्तुतसंबन्धित्वेनाज्ञायमानस्य। नन्वपेक्षासत्त्वेऽपि विशेषणसाम्यस्य तद्वयञ्जना-

हेतुः। किंत्वप्रस्तुतकामुकादिसंबिन्धित्वेनावगम्यमानस्य तस्यारोपः। तथाभूतस्यैव रसानुगुणत्वात्। नच ताबदवगमने विशेषणपदानां सामर्थ्यमितः।
अतः श्रेषादिमहिम्ना विशेषणपदेः स्वरूपतः समिपतेन वदनचुम्बनादिना
तत्संबिन्धिन कामुकादाविभव्यक्ते पुनस्तदीयत्वानुसंधानं तत्र भवति। यथा
स्वरूपतो दृष्टेन राजाश्वादिना तत्संबिन्धिन राजादौ स्मारिते पुनरश्वादौ तदीयत्वानुसंधानमिति विशेषणसाम्येन वाच्योपस्कारकस्याप्रस्तुतव्यञ्जनस्यास्र्यपेक्षा। अत्र पृव श्चिष्टविशेषणायामिव साधारणविशेषणायामप्यप्रस्तुतव्यवहारसमारोप इत्येव प्राचीनानां प्रवादः। कन्दुके व्यावल्यत्कृचभारत्वादिविशिष्टविनतासेव्यत्वस्य कामुकसंबिन्धत्वेनेव समारोपणीयत्वात्। स्वरूपतः कन्दुकेऽपि तस्य सत्त्वेनासमारोपणीयत्वात्। किंच सारूप्यनिबन्धनत्वेनोदाहतायां समासोक्तावप्रस्तुतवृत्तान्तस्याशव्दार्थस्याप्रस्तुतवृत्तान्तरूपेणव
गम्यत्या तेन रूपेण तत्र समारोपसिद्धेः। अन्यत्रापि तथैव युक्तमिति
युक्तमेव प्राचीनानां लक्षणमिति विभावनीयम्॥ ६०॥

सामर्थ्या-लक्षणासंगतितादवस्थ्यमित्याशङ्कय साक्षादसामर्थ्येऽपि वृत्तान्ताभिव्य-क्तिद्वारातत्संभवात्र दोष इत्याह—नचेत्यादि ॥ तदीयत्वानुसंधानं कामुकसंव-न्धित्वानुसंधानम् । तत्र मुखचुम्बनादौ अनुसंधानं तद्वदिति पाठः । अनुसंधानव-दिति पाठे यथेत्यस्यासंगतेः। अत एवाप्रस्तुतव्यज्ञनस्यापेक्षणादेव । नन्वप्रस्तुतध-मिन्यजनानपेक्षणे ईदशः प्रवादः कुतो न युक्तस्तत्राह—कन्दुक इति॥विशि-ष्टेत्यस्य सेव्यत्वेनान्वयः । संविन्धत्वेनैवेत्येवकारोक्तमेवार्थं सोपपित्तकमाह → स्वरूप इति ॥ अप्रस्तुतकामुकसंबन्धित्वानालिङ्गितरूपेणेल्यर्थः । तथा चारो-पासंभवात्तादशप्रवादानुपपत्तिरिति भावः । श्विष्टविशेषणायामयमैन्द्रीत्यादौ मु-खचुम्बनादेः खरूपतोऽप्यारोपस्यैव सत्त्वात्साधारणविशेषणायामुपष्टमभकत्वेन प्रवादोपन्यासः । ननु तत्रापि तादशवनितासेव्यत्वस्य तादशवनिताकृतविपरीत-रतपात्रत्वरूपस्याप्रस्तुतवृत्तान्तरूपस्य स्वरूपतोऽप्यारोपस्यैव संभवात्र तादशप्र-वादानुपपत्तिरत आह—किंचेति ॥ युक्तमिति ॥ तत्सामान्यादितरेषु त-थात्वमिति न्यायादिति भावः ॥ लक्षणमिति ॥ जातावेकवचनम् । तदेवमु-क्तरीत्या 'अयमैन्द्रीमुखं पर्य रक्तश्रुम्बति चन्द्रमाः' इत्यत्र शक्तिव्यञ्जनाभ्यां प्राचीप्रारम्भसंबन्धाश्रयश्चन्द्रो जारसंबन्धिसानुरागपरनायिकामुखचुम्बनाश्रय इति बोधः । अप्रस्तुतवृत्तान्ताभिन्नत्वेनाध्यवसितस्य प्रस्तुतवृत्तान्तस्य तादात्म्ये-नाप्रस्तुतारोपविषये प्रस्तुतधर्मिण्यन्वय इति मते तु सानुरागपरनायिकामुखनु-म्बनाभिन्नप्राचीप्रारम्भसंयोगाश्रयो जाराभिन्नश्चन्द्र इति वोधः । एवसुदाहरणा-न्तरेऽप्यनेनैव प्रकारेण बोधप्रकारा ऊहनीयाः ॥ ६० ॥ इति समासी-क्तिप्रकरणम् ॥ २३ ॥

परिकरालंकारः २४ अलंकारः परिकरः सार्भिप्राये विशेषणे । सुधांशुकलितोत्तंसस्तापं हरतु वः शिवः ॥ ६१ ॥ अत्र सुधांशुकलितोत्तंस इति विशेषणं तापहरणसामर्थ्याभिष्रायगर्भम् । यथावा—

तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा।
कुर्यो हरस्यापि पिनाकपाणेधैर्यच्युति के मम धन्विनोऽन्ये॥
अत्र पिनाकपाणेरिति हरविशेषणं कुसुमायुध इत्यर्थलक्ष्याहमर्थविशेषणं
च सारासारायुधत्वाभिप्रायगर्भम्। यथावा—

सर्वाशुचिनिधानस्य कृतव्रस्य विनाश्चिनः । शरीरकस्यापि कृते मृढाः पापानि कुवंते ॥ अत्र शरीरविशेषणानि तस्य हेयत्वेनासंरक्षणीयत्वाभिप्रायगर्भाणि । व्यास्थं नैकतया स्थितं श्रुतिगणं जन्मी न वल्मीकतो नाभौ नाभवमच्युतस्य सुमहद्भाष्यं च नाभाषिपम् ।

गुणीभूतव्यङ्गचस्य प्रभेदभूतसमासोत्त्यलंकारप्रसङ्गात्तत्प्रभेदं परिकरालंकारं लक्षयति अलंकार इति ॥ अलंकारत्वोत्कीर्तनं च दोषाभावेनैव गतार्थत्व-मिति शङ्कानिरासार्थम् । तत्प्रपञ्चनं चात्रे करिष्यते । साभिष्राये प्रकृतार्थोपपा-दकार्थविषयकाभिप्रायपूर्वकं तथाभूतार्थव्यञ्जक इति यावत् । इत्थंच प्रकृतार्थी-पपादकार्थव्यञ्जकविशेषणत्वं लक्षणं बोध्यम् । ध्वनावतिव्याप्तिवारणाय प्रकृ-तार्थोपपादकेति, हेत्वलंकारवारणाय बोधकत्वं विहाय व्यक्तकत्वनिवेशः। वङ्य-माणपरिकराङ्करालंकारवारणाय विशेषणेति । तत्र तु विशेष्यं तथेति नातिप्रस-जः ॥ सर्थाश्विति ॥ स्थांग्रना कलितः कृत उत्तंसः शेखरो येन सङ्गि हर-विशेषणम् । 'उत्तंसः कर्णपूरे स्याच्छेखरे चावतंसवत्' इति विश्वः । सामर्थ्या-भिप्रायं सामर्थ्यव्यञ्जकम् ॥ तवेति ॥ इन्द्रं प्रति कामस्योक्तिः । तव प्रसादा-रकुसमायधोऽप्यहं मधुं वसन्तमेवैकं मुख्यं सहायं लब्ध्वा पिनाको धनुर्विशेषः पाणौ यस्य तादशस्यापि हरस्य धेर्यच्युति धेर्यस्खलनं कुर्याम् । अन्ये धन्विनो धनुर्धरा मम पुरः के । अगणनीया इलर्थः । कुसुमायुध इति विशेषणं चेल-न्वयः ॥ अर्थळभ्येति ॥ कुर्यामित्युत्तमपुरुषाक्षिप्तेत्वर्थः । अभिप्रायगर्भमभि-प्रायपूर्वकम् । अत एवावयवार्थमात्रविश्रान्तत्वाद्धरपदेन न पौनरुक्तयमपि ॥ सर्वेति ॥ सर्वेषामञ्जीनां रक्तपूयरेतोविण्मत्रादीनां निधानस्य स्थानभृतस्य कृतव्रस्य उत्तमात्रपानादिकृतोपकारनाशकस्य शरीरकस्य । शरीरकस्येति निन्दा-यां कप्रत्ययः । कृते तद्रथम् । तत्संरक्षणार्थमिति यावत् । विशेषणानि पूर्वार्धाः क्तानि । तस्य शरीरस्य ॥ व्यास्थमिति ॥ राजानं प्रति कवेरुक्तिः । हे देव

१ 'प्रायविशेषणे'.

कुवलयानन्दः । [परिकरालंकारः २४

७२

चित्रार्थो न बृहत्कथामचकथं सुत्राम्णि नासं गुरु-र्देव त्वदुणबृन्दवर्णनमहं कर्तुं कथं शक्रुयाम्॥

भत्र श्रुतिगणं न व्यास्थिमित्यादीनि विशेषणानि स्वस्मिन्व्यासाद्यसाधारणकार्थकर्तृत्वनिषेधमुखेन नाहं व्यास इत्याद्यभिप्रायगर्भाण । तत्राद्ययोरुदाहरणयोरेकैकं विशेषणं, समनन्तरयोः प्रत्येकं वहूनि विशेषणानि । तत्रापि
प्रथमोदाहरणे सर्वाणि विशेषणान्येकाभिप्रायगर्भाणि पदार्थरूपाणि च, द्वितीयोदाहरणे भिन्नाभिप्रायगर्भाणि वाक्यार्थरूपाणि चेति भेदः । एतेषु व्यक्रुयार्थसद्भावेऽपि न ध्वनिव्यपदेशः । शिवस्य तापहरणे मन्मथस्य केमुतिकन्यायेन सर्वधन्विधैर्यभञ्जकत्वे शरीरसंरक्षणार्थे पापमाचरतां मृद्रत्वे स्वस्यवर्णनीयराजगुणकथनाशक्तत्वे च वाच्य एवोपस्कारकत्वात् । अतएव व्यक्रुयस्य वाच्यपरिकरत्वात्परिकर इति नामास्यालंकारस्य । केचित्तु निष्प्रयोजनविशेषणोपादानेऽपुष्टार्थत्वदोषस्योक्तत्वात्सप्रयोजनत्वं विशेषणस्य दोषाभावमात्रं न कश्चिदलंकारः । एकनिष्ठतादशानेकविशेषणोपन्यासे परं वैचि-

राजन, त्वद्भणानां वृन्दस्य समृहस्य वर्णनं कर्तुमहं कथं शक्नुयां शक्तो भवेय-मिखन्वयः । कतस्तत्राह । यतोऽहमेकरूपतया स्थितं वेदसमृहं न व्यास्थमनेक-शाखारूपेण न विस्तारितवान् । तथाच तत्कर्ता व्यासो न भवामीति व्यज्यते । एवमग्रेऽपि । वल्मीकतो वल्मीकाज्जनमास्यास्तीति जन्मी न भवामीति शेषः । तथाच नाहं वाल्मीकिरिति । अच्यतस्य नाभौ नाभवं नोत्पन्न इत्यनेन नाहं चतुर्भुख इति । सुमहद्भाष्यं महाभाष्यं च नाभाषिषं न भाषितवानित्यनेन नाहं सहस्रजिह्नः शेष इति । चित्रो विचित्रोऽर्थो यस्यास्तां बहत्कथां न अचकथं न कथितवानित्यनेन नाहं तद्वक्ता शिवो गुणाब्यो वेति। सुत्राम्णि इन्द्रे गुरुरुपदेश-को नासमित्यनेन नाहं वाक्पतिरिति च व्यज्यते । उक्तेषदाहरणेषु वैलक्षण्यं दर्शयति - तत्रेत्यादिना ॥ एकैकमेकस्य विशेष्यस्यैकमेव समनन्तरयोरनन्त-रोक्तयोः प्रत्येकमेकं विशेष्यं प्रति । तत्रापि तयोर्मध्येऽपि एकाभिप्रायगर्भाण्ये-कार्थामिप्रायपूर्वकाणि ॥ वाक्यार्थेति ॥ न व्यास्थमित्यादिनिषेधवाक्यार्थपटु-स्योक्तरीत्या हेत्रत्वेनान्तिमवाक्यार्थे विशेषणत्वादिति भावः । एतेषु उक्तोदाह-रणेषु । ध्वनिव्यपदेशोध्वनिव्यवहारः। तत्र हेतुमाह—तापहरणेत्यादिना॥ तापहरणे इत्यादिसप्तम्यन्तचतुष्टयस्य वाच्य इत्यनेन सामानाधिकरण्येनान्वयः॥ उपस्कारकत्वादिति ॥ तथा चापराङ्गरूपगुणीभूतव्यङ्गयभेदत्वात्र ध्वनिव्य-वहार इति भावः । नन्वेवमि यथाश्रुतलक्षणस्य निःशेषच्युतेत्यादिध्वनावति-व्याप्तिरित्यत आह—अतप्वेति ॥ वाच्योपस्कारकत्वादेवेलर्थः । परिकरत्वा-दङ्गत्वात् । तथाच परिकरपद्महिम्रा प्रकृतार्थोपपादकत्वस्य व्यङ्गचिवशेषणस्य लाभात्रातिब्याप्तिरिति भावः । अपुष्टार्थेति भावप्रधानम् ॥ उक्तत्वादिति ॥ 'अर्थोऽपुष्टः कष्टो व्याहतपुनरुक्तदुष्कमग्राम्याः' इत्यादिनालंकारिकैरुक्तत्वादित्य-र्थ: । कथं तर्हि तैरेवास्यालंकारत्वेन कथनमत आह-एकनिष्ठेति ॥ तादः ज्यविशेपात्परिकर इत्यलंकारमध्ये परिगणित इत्याहुः । वस्तुतस्वनेकविशे-पणोपन्यास एव परिकर इति न नियमः । श्लेपयमकादिष्वपुष्टार्थदोषाभावेन तत्रैकस्यापि विशेषणस्य साभित्रायस्य विन्यासे विच्छित्तिविशेषसद्भावात्परि-करोपपत्तेः । यथा—

अतियजेत निजां यदि देवतामुभयतश्रयवते जुपतेऽप्यघम् । क्षितिभृतेव सदैवसका वयं वनवताऽनवता किमहिद्वहा॥

अत्र हि पुरुहूतपूजो द्युक्तान्दादीन्प्रति भगवतः कृष्णस्य वाक्ये गोवर्धनगिरिरेव चास्माकं रक्षकत्वेन दैवतिमिति स एव पूजनीयो न त्वरक्षकः पुरुहृत इत्येवंपरं वनवतेति गोवर्धनगिरेविंशेपणं काननवत्त्वान्निर्शादिमत्त्वाच्य पुष्पमूलफलतृणादिभिरारण्यकानामसाकमस्यद्धनानां गवां चायमेव र-क्षक इत्यभिप्रायगर्भम् । एवमत्र साभिप्रायकविशेषणविन्यासस्यापि विच्छित्तिविशेषवशादस्य साभिप्रायस्यालंकारत्वसिद्धावन्यत्रापि सुधांशुकिलतोत्तं-स इत्यादो तस्यात्मलाभो न निवार्यते । अपिच एकपदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गनलंकार इति सर्वसंमतम् । तद्वदेकस्यापि विशेषणस्य साभिप्रायस्यालंकारत्वं युक्तमेव ॥ ६१ ॥

शिति ॥ साभिश्रायेखर्थः ॥ दोषाभावेनेति ॥ अपुष्टार्थत्वस्य दोपत्वाभावे-नेखर्थः । उद्भटालंकारसंपत्त्या सहृदयवैमुख्यरूपदूपकतावीजाभावादिति भावः। विच्छित्तिश्वमत्कृतिः । परिकरत्वोपपत्तेः परिकरस्यालंकारत्वोपपत्तेः । तत्र दोष-स्याप्रसत्त्या विच्छित्तिविशेषस्य तद्भावप्रयुक्तत्वासंभवात्तत्प्रयोजकमलंकारत्व-मावश्यकमिति भावः । यमकस्थले उदाहरति—यथेति ॥ निजां देवतामति-कम्य यदि यजेत अर्थाद्देवतान्तरं पूजयेत् तदोभयतो लोकद्वयाच्यवते भ्रदयित. अघं पापमिप जुषते सेवते । प्राप्नोतीति यावत् । का निजा देवता तत्राह । वयं वनवता प्रशस्तवनयुक्तेन क्षितिमृता गोवर्धनगिरिणेवं सदैवतका देवतस-हिताः । स एवास्माकं दैवतमित्यर्थः । अनवताऽरक्षकेण अहिद्रहा इन्द्रेण । किं प्रयोजनिमति रोषः । अहिर्वृत्रासुरः । 'अहिर्वृत्रासुरे सर्पे' इति विश्वः। नन्वेवं सित तत्रैवालंकारता स्यात्र तु सुधांशुक्रितोत्तंस इत्यादावत आह— एवमिति ॥ विच्छित्तिविशेषेति दोषाभावप्रयुक्तविच्छित्तिव्यावृत्तेत्यर्थः । नन यमकादाविप तादशविच्छित्तिविशेषे मानाभावः । विच्छित्तिसामान्यं तु पर्युद-स्तदोषाभावेनाप्युपपन्नम् । आपत्कालपर्युदस्तस्य मृच्छीचहीनतादोषस्याभावेने-व तदानीमपि मृच्छोचकर्तुरतिशयाधानमिति नालंकारत्वसिद्धिरित्यत आह— अपिचेति ॥ 'भस्मोद्धलन भद्रमस्तु भवते ह्दाक्षमाले शुभं हा सोपानपरम्प-रे गिरिसुताकान्तालयालंकृते । अद्याराधनतोषितेन विभुना युष्मत्सपर्यासुखा-लोकोच्छेदिनि मोक्षनामनि महामोहे निलीयामहे ॥' इलादी मोक्षस्य महामो-हत्वे सुखालोकोच्छेदिनीलेकपदार्थो हेतुरिति काव्यलिङ्गमलंकारत्वेन यथा स्वी-

परिकराङ्कुरालंकारः २५ सार्भिप्राये विशेष्ये तु भवेत्परिकराङ्करः । चतुर्णा पुरुषार्थानां दाता देवश्चतुर्भुजः ॥ ६२ ॥ अत्र चतुर्भुज इति विशेष्यं पुरुषार्थचतुष्टयदानसामर्थ्याभिप्रायगर्भम् । यथावा—

फणीन्द्रस्ते गुणान्वक्तुं लिखितुं हैहयाधिपः । द्रष्टुमाखण्डलः शक्तः क्राहमेप क ते गुणाः ॥ फणीन्द्र इत्यादिविशेष्यपदानि सहस्रवदनाद्यभिष्रायगर्भाणि ॥ ६२ ॥

श्लेषालंकारः २६ नानार्थसंश्रयः श्लेपो वर्ण्यावर्ण्योभयाश्रितः । सर्वदो माधवः पायात्स योऽगं गामदीधरत् ॥ ६३ ॥ अब्जेन त्वनमुखं तुल्यं हरिणाहितसँक्तिना । उचरद्भरिकीलालः शुशुभे वाहिनीपतिः ॥ ६४ ॥

कृतं न तु निर्हेतुत्वदोषाभावमात्रतया विच्छित्तिविशेषस्यानुभवसिद्धत्वात्तथेहा-पीति भावः ॥ ६१ ॥ इति परिकरालंकारप्रकरणम् ॥ २४ ॥

साभिप्राय इति ॥ अत्र विशेषणपदस्थाने विशेष्येति प्रक्षिप्य पूर्ववह्रक्षणं वोध्यम् । तच परिकरेऽतिव्याप्तिवारणार्थम् । लक्ष्ये लक्षणं संगमयति—अत्रेनित ॥ यद्यपि देवान्तरव्यावतर्कतया चतुर्भुज इति विशेषणं तथापि नृपादिसाधारणदेवपदशक्तेर्विष्णो नियमनेन विशेष्यप्रतित्योपयिकतया विशेष्यपदत्वमभिमतं वोध्यम् । असंदिग्धमुदाहरति—फणीन्द्र इति ॥ राजानं प्रति कवेहक्तिः । तव गुणान्वक्तं फणीन्द्रः शेषोऽसमर्थं इत्यध्याहार्यम् । एवमग्रेऽपि । हेहयाधिपः कार्तवीर्यः । आखण्डल इन्द्रः । उभयत्र गुणानित्यनुषज्यते । एष मर्ल्यधर्मः । अहं क ते गुणाः केति कशब्दौ महदन्तरं सूचयतः । सहस्रमुखत्वादीत्यादिना सहस्रवाहुत्वसहस्रनयनत्वयोः संग्रहः । अत्र अनेकेषां विशेष्यपदानां तत्तदिभिन्त्रायगर्भत्वं विशेषः ॥ ६२ ॥ इति परिकराङ्करप्रकरणम् ॥ २५ ॥

श्चेषं लक्षयति—नानार्थेति ॥ नानार्थस्य शब्दस्य संश्रयो योजनं श्चेष इति लक्षणम् । वर्ण्येत्वादि विभागः । वर्ण्ये चावर्ण्यं च वर्ण्यावर्ण्योभयं च एतत्रयाश्चिन्तस्तद्विषय इत्यर्थः ॥ सर्वेति ॥ सर्वेदः स माधवः पायात् । यः अगं गोवर्धन्मपर्वतं गां पृथ्वीं च वराहावतारे शृतवानिति विष्णुपक्षे । हरपक्षे तु स उमाधवः सर्वेदा पायात् । यो गङ्गां शृतवानित्यर्थः । हरिणेन मृगेणाङ्करूपतया आहिता कृता सक्तिः सङ्गो यस्येति चन्द्रपक्षे । हरिणा सूर्येणेति कमलपक्षे । उचरच्छस्त्रपा-

१ 'प्रायविशेषश्चेत्'. २ 'उभयाश्रयः'. ३ 'शक्तिना'.

#### क्षेषालंकारः २६ ] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

90

अनेकार्थशब्दिवन्यासः श्लेपः । सच त्रिविधः । प्रकृतानेकविषयः अप्रकृतानेकविषयः प्रकृताप्रकृतानेकविषयश्च । सर्वदेत्यादिक्रमेणोदाहरणानि । तत्र सर्वदो माधव इति स्तोतन्यत्वेन प्रकृतयोईरिहरयोः कीर्तनं प्रकृतश्लेषः । अव्जं कमलमव्जश्चन्द्रस्तयोरुपमानमात्रत्वेनाप्रकृतयोः कीर्तनिमत्यप्रकृतश्लेषः । वाहिनीपितः सेनापितः समुद्रश्च । तत्र समितौ शस्त्रप्रहारोत्पतदुधिरस्य सेन्नणनेनेव वर्णनं प्रकृतमिति प्रकृताप्रकृतः श्लेषः । यथावा—

वापि करणात्मना ।

ाऽस्तु शरणं प्रभुः ॥

नीतानामाकुळीभावं छुट्धेर्भूरिशिळीसुखैः ।

सहशे वनवृद्धानां कमळानां त्वदीक्षणे ॥

असाबुद्यमारूढः कान्तिमात्रक्तमण्डळः ।

राजा हरति लोकस्य हृद्यं मृदुळैः करैः ॥ इति ।

सहश वनवृद्धाना कमलाना त्वदाक्षण ॥

विश्वार्थे असाबुद्यमारूढः कान्तिमात्रक्तमण्डलः ।

राजा हरति लोकस्य हृद्यं मृदुलैः करैः ॥ इति ।

तत्राद्ये स्तोतन्यत्वेन प्रकृतयो रामकृष्णयोः श्रेषः । द्वितीये उपमानत्वेना-

प्रकृतयोः पद्महरिणयोः श्लेपः । तृतीये राजा हरति लोकस्येति चन्द्रवर्णनप्र-स्तावे प्रकृतस्य प्रत्यप्रोदितचन्द्रस्याप्रकृतस्य नवाभिषिकस्य नृपतेः श्लेषः । यदत्र प्रकृताप्रकृतश्चेपोदाहरणे शब्दशक्तिमूलध्वनिमिच्छन्ति प्राञ्चः तस्प्र-कृताप्रकृताभिधानमूलकस्योपमादेरलंकारस्य ब्यङ्ग्यत्वाभिप्रायं न त्वप्रकृता-तैरुद्गच्छत्कीलालं रुधिरं यस्य स वाहिनीपतिः सेनापतिः । तथा वाहिनीनां न-दीनां पतिः समुद्रश्रेति । पक्षे कीलालं जलम् । समितौ संप्रामे ॥ त्रात इति ॥ येन करुणायुक्तान्तःकरणेन द्रोहकर्तापि अदरो भयशून्यः काकस्त्रातो रक्षितो न तु हतः । स पवित्रनामा रणे ख्यातो विभू रामो मे शरणमस्त्वित्यर्थः । कृष्णपक्षे तु काकोदरः कालियसर्पः पूतनाया राक्षस्या मारणेन ख्यात इति शेषः॥ नी-तानामिति ॥ दियतां प्रति नायकोक्तिः । तव ईक्षणे नेत्रे कमलानां पद्मानां हरिणानां च सदशे स्त इत्यन्वयः । कीदशानाम् । वने जले अरण्ये च वृद्धिं प्राप्ता-नाम् । तथा छुब्धैः लोभशीलैभूरिभिः शिलीमुखैः अमरेराकुलीभावं व्याप्ततां नीतानामिति पद्मपक्षे । हरिणपक्षे तु छुट्धैः व्याधैः । कर्तृभिः । भूरिशिलीमुखै-र्वाणैः । करणभूतैः । आकुलीभावं चपलतां नीतानामित्यर्थः । 'मृगप्रभेदे कमलः' इति विश्वः ॥ असाविति ॥ उदयं शैलमभिवृद्धिं च, रक्तं रक्तवर्णमनुरक्तं च, मण्डलं विम्बं देशश्च, राजा चन्द्रो नृपश्च, मृदुलैरभिनवैरल्पेश्च, करैः किरणैर्प्राह्यध-·नेश्व ॥ प्रत्यग्रोदितेति ॥ अभिनवोदितेखर्थः । ननु प्रकरणेनाभिधाया नियम-:नादप्रकृतार्थस्य व्यक्त्यत्वमेवेति कथं श्लेष इलाशक्त्याह—यदिति ॥ अलंकार-स्येति ॥ न चैवं शब्दशक्तिमूळवस्तुध्वनेहच्छेद इति वाच्यम् । 'शनिरशनिश्व लम्बैर्निहन्ति कुप्यसि नरेन्द्र यस्मै त्वम् । यत्र प्रसीदसि पुनः स भात्यदारोऽ-ज्जुदारश्च ॥' इत्यत्र शनिविरुद्धरूपे प्रस्तुतेऽशनिशब्देनाभिधया प्रतीयमानेऽपि त-न्नमुलकस्य विरुद्धाविप त्वद्नुवर्तनार्थमेकं कार्यं कुरुत इति वस्तुव्वनेरशनिशब्द-

र्थस्येव व्यङ्ग्यत्वाभिप्रायम् । अप्रकृतार्थस्यापि शक्तया प्रतिपाद्यस्याभिधेयत्वा-वश्यंभावेन व्यक्तयनपेक्षणात् । यद्यपि प्रकृतार्थे प्रकरणवलाञ्झटिति बुद्धिस्थे सत्येव पश्चान्नृपतितद्वाद्यधनादिवाचिनां राजकरादिपदानामन्योन्यसंनिधानव-लाक्तत्तद्विपयशक्तयन्तरोन्मेषपूर्वकमप्रस्तुतार्थः स्फुरेत्। न चैतावता तस्य व्यङ्ग्य-त्वम् । शक्तया प्रतिपाद्यमाने सर्वथेव व्यक्तयनपेक्षणात्पर्यवसिते प्रकृतार्थाभि-धाने पश्चात्स्फुरित चेत् कामं गृढश्चेषो भवतु । अस्ति चान्यत्रापि गृढः श्चेपः।

भयमतिजरठाः प्रकामगुर्वीरलघुविलिम्बपयोधरोपरुद्धाः । सततमसुमतामगम्यरूपाः परिणतिदृक्करिकास्तटीर्बिमर्ति ॥ मन्द्रमिश्रमधुर्यमोपला दर्शितश्वयथु चाभवत्तमः । दृष्टयस्तिमिरजं सिपेविरे दोपमोषधिपतेरसंनिधौ ॥

अत्र हि समासोत्त्युदाहरणयोः प्राकरणिकेऽर्थे प्रकरणवशाज्झटिति बुद्धिस्थे विशयणसाम्यादप्रकृतोऽपि वृद्धवेश्यावृत्तान्तादिः प्रतीयते । तत्र समासो-क्तिरभङ्गश्चेष इति सर्वेषामभिमतमेव । एवमन्यत्रापि गृदश्चेषे ध्वनिबुद्धिर्न कार्या । यथावा—

रम्या इति प्राप्तवतीः पताका रागं विविक्ता इति वर्धयन्तीः । यस्यामसेवन्त नमद्वलीकाः समं वधूभिर्वलभीर्युवानः ॥

व्यक्तिमूलस्य संभवात् । अलंकारस्येत्यस्योपलक्षणत्वात् । अन्योन्यसंनिधानवला-त्परस्परार्थसंबन्ध्यर्थवाचकशब्दसमभिव्याहाररूपशब्दान्तरसंनिधिवलात् । तथा चाप्रकृतेऽप्यभिधानियामकमस्तीति भावः । एतावता पूर्वापरभावमात्रेण तस्याप्र-कृतार्थस्य गृढश्ठेष इति । गूढत्वं चाप्रकृतत्वेन द्वितीयार्थस्य शीघ्रमप्रत्ययात् ॥ अयमिति॥माघेरैवतकगिरिवर्णनम् । अयं गिरिस्तटीर्विभर्तीत्यन्वयः । किंभुताः। अतिजरठा अखन्तं कठिनाः । प्रकामगुर्वीरतिमहत्यः । अलघुभिर्विलम्बमानैर्मेषै-र्व्याप्ताः । निरन्तरं प्राणिनामगम्यरूपाः । परिणता तिर्यग्दन्तप्रहारिणो दिग्गजा यासु ताः । वृद्धवेदयापक्षे तु जरठा जीर्णाः पयोधराः कुचाः । अगम्याः सङ्गमा-योग्याः । परिणते प्रकटे दिकारिके यासां ता इत्यर्थः । दिग्वर्तुलं दशनक्षतं करिका नखक्षतम् । 'दिग्दष्टं वर्तुलाकारं करिका नखरेखिका ।' इति यादवः ॥ मन्द-मिति ॥ ओषधीनां पत्युश्चन्द्रस्यासंनिधौ सत्यर्थमोपलाः सूर्यकान्ता मन्दीभूत-मिं भृतवन्तः । तमः दर्शितः श्वयथुः पुष्टत्वं येन तथाभवत् । दृष्टयस्तिमिरजं दोषमान्ध्यं सिंषेविरे । पक्षान्तरे ओषधिपतिर्वेदाः । एवं मन्दामित्वशोथतिमिराणि रोगविशेषाः । वृत्तान्तादिरित्यादिपदाद्रोगिवैद्यवृत्तान्तः परिगृह्यते ॥ अभङ्गश्रेष इति ।। तथाच श्ठेषस्थले व्यञ्जनाविरहादप्रकृते तत्स्वीकारे श्ठेषव्यवहारः सर्वे-षामनुपपन्नः स्यादिति भावः ॥ रम्या इति ॥ माघ एव द्वारकावर्णनम् । यस्यां द्वारकायां युवानो वधूभिः समं वलभीः प्रासादोपरितनगृहाण्यसेवन्त से-वितवन्तः । किंभूताः । रम्या इति हेतोः पताका वैजयन्तीः । प्राप्तवतीः वि-विक्ता विजनाः इति हेतोः रागं रितं वर्धयन्तीः । नमन्ति वलीकानि छादनप-

00

अत्र द्वितीयान्तिविशेषणसमिष्तियांन्तराणां न शब्दसामध्येन वधूभिर-न्वयः विभक्तिभेदात् । नच विभक्तिभेदेऽिष तदन्वयाक्षेपकं साधम्यंमिह निवद्धमित । यतः—

'एतसिन्नधिकपयःश्रियं वहन्तः संक्षोभं पवनभुवा जवेन नीताः। वाल्मीकेररहितरामलक्ष्मणानां साधम्यं द्रधति गिरां महासरसः॥'

इत्यत्रेवाक्षितश्चेपो भवेत्। समित्येतत्तु क्रियाविशेषणं सहार्थःवेनाप्यु-पपन्नम् । वधूपु श्चिष्टविशेषणार्थान्वयात्माक् द्रागमतीतं साम्यं नालम्बते । तस्माद्र्थसोन्द्र्यवलादेव तदन्वयानुसंधानमिति गूदश्चेपः । तदनु तदलादेव समशब्दस्य साधम्यार्थकल्पनमिति वाच्यस्थेवोपमालंकारस्याङ्गमयमित्यलं पपञ्चेन । तस्मात्मिद्धं श्चेपत्रेविष्यम् । एवंच श्चेपः प्रकारान्तरेणापि द्विविधः संपन्नः । उदाहरणगतेष्वव्यक्तीलालवाहिनीपत्यादिशब्देषु परस्परविलक्षणं पदभङ्गमनपेक्ष्यानेकार्थक्रोडीकारादभङ्गः । सर्वदो माधवः यो गङ्गां हरिणा-हितशेक्तिनेत्यादिशब्देषु परस्परविलक्षणं पदभङ्गमपेक्ष्य नानार्थकोडीकारा-रसभङ्गः श्चेप इति । तत्र सभङ्गश्चेपः शब्दालंकारः, अभङ्गश्चेपस्वर्थालंकार

टलप्रान्ता यासां ताः । वधूपक्षे पताकाः सौभाग्यानि । 'पताका वैजयन्त्यां स्यात्सीभाग्यनाटकाङ्कयोः' इति मेदिनी । रागमनुरागम् । विविक्ताः सतीत्वेन पवित्राः नमत्रिवलीकाश्चेति ॥ नचेति ॥ यत इलस्य इलत्रेवाक्षिप्तः श्लेषो भवे-दिखश्रेतनेनान्वयः ॥ एतस्मिन्निति ॥ तत्रैव रैवतकगिरिवर्णनम् । एतस्मि-निगरौ महत्यः सरस्यः वाल्मीकेर्सुनेर्गिरां साधम्ये साहत्यं दधित धारयन्ति । किंभूतानां गिराम् । अरहितौ संबद्धौ रामलक्ष्मणौ यासु तथाभृतानां । सरसी-पक्षे अरहिताः संयुक्ताः रामाः पतयो यासां तथाभूता रुक्ष्मणाः सारसवनिता यासु ता इति । किंभूताः सरस्यः । अधिकां जलशोभां वहन्त्यः पवनसंभूतेन वेगेन संक्षोभं तरङ्गाकुलत्वं नीताः प्रापिताः । वाल्मीकिगिरस्त । अधिकाः कपयो यासु ताः पवनभुवो हन्मता वेगेन निजेन संक्षोभसुद्भटत्वं प्रापिता इति ॥ नन्वत्रापि सममित्यस्य तुल्यार्थत्वात्साधम्यीनवन्धोऽस्तीति कृतो न श्रेषाक्षेप-स्तत्राह—समिति ॥ द्राकृ शीघ्रं साम्यार्थं साम्यार्थंकत्वम् । तथा चानुप-पत्त्यभावात्तनमूलक आक्षेपो न संभवतीति भावः । कथं तर्हि तद्वगमस्तत्राह-अर्थसौन्दर्येति ॥ विशेषणानां वधूभिरन्वये चमत्कृतेरनुसंधानात्तदन्वयता-त्पर्यप्रह इति भावः । तद्नु श्ठेषानुसंधानानन्तरम् । तद्वलाच्छ्रेपवलात् ॥ साधम्यार्थेति ॥ साधम्यहपार्थस्येत्यर्थः । अर्थसाम्याभावेऽपि 'सकलकलं पुरमेतजातं संप्रति सुधांशुविम्वामव'इत्यादिवच्छब्दसाम्यस्य संभवादिति भावः। एवकारेण व्यक्तयत्वव्यवच्छेदः । तत्र तयोर्मध्ये ॥ शब्देति ॥ जतुकाष्ट्रन्यायेन शब्दयोरेव श्विष्टत्वादिति भावः । अर्थेति शब्दाभेदादेकवृन्तगतफलद्वयन्याये-

१ 'सक्तिनेति'.

इति केचित्। उभयमपि शब्दालंकार इत्यन्ये । उभयमप्यर्थालंकार इति स्वाभिप्रायः। एतद्विवेचनं तु चित्रमीमांसायां द्रष्टव्यम् ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

#### अप्रस्तुतप्रशंसालंकारः २७

# अमस्तुतप्रशंसा खात्सा यत्र प्रस्तुताश्रया । एकः कृती शकुन्तेषु योऽन्यं शकान्न याचते ॥ ६५॥

यत्राप्रस्तुतवृत्तान्तवर्णनं प्रस्तुतवृत्तान्तावगितपर्यवसायि तत्राप्रस्तुतप्रशं-सालंकारः । अप्रस्तुतवृत्तान्तवर्णनेन प्रस्तुतावगितिश्च प्रस्तुताप्रस्तुतयोः सं-बन्धे सित भवति । संबन्धश्च सारूप्यं सामान्यविशेषभावः कार्यकारणभावो वा संभवति । तत्र सामान्यविशेषभावे सामान्यद्विशेषस्य विशेषाद्वा सामा-न्यस्यावगतौ द्वैविध्यम् । कार्यकारणभावेऽिष कार्यात्कारणस्य कारणाद्वा कार्य-स्यावगतौ द्वैविध्यम् । सारूप्यातु एको भेद इत्यस्याः पञ्च प्रकाराः । यदादुः—

> 'कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सित । तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पञ्चधा ॥' इति ।

तत्र सारूप्यनिबन्धनाऽप्रस्तुतप्रशंसोदाहरणस्। एकः कृतीति । अत्राप्रस्तु-तचातकस्य प्रशंसा प्रशंसनीयत्वेन प्रस्तुते तत्सरूपे क्षुद्रेभ्यो याचनान्निवृत्ते मानिनि पर्यवस्यति । यथावा—

नार्थयोरेव श्रिष्टत्वादिति भावः । केचिद्छंकारसर्वस्वकाराद्यः ॥ उभयम-पीति ॥ समङ्गाभङ्गश्रेषद्वयमपीलर्थः । शब्दस्य परिवृत्त्यसहत्वेनान्वयव्यति-रेकाभ्यां तद्गतत्वावधारणादिति भावः । अन्ये मम्मटभद्यः । नन्विभप्रायस्यार्थाछं-कारमध्यकथनाद्वगतस्यापि विशेषतः कथनमन्तरेण कथमुपपत्तिरित्याङ्कथाह— पतिदिति ॥ अद्यप्युत्प्रेक्षाप्रन्थानन्तरं चित्रमीमांसा न कापि दृश्यते तथाप्यय-माशय उन्नीयते । चमत्कारेऽर्थमुखप्रेक्षित्वाद्र्यां छंकारत्वमिति । अनुप्रासयम-कादेस्तु न चमत्कारेऽर्थमुखप्रेक्षित्विमिति न तेषामर्था छंकारत्वमिति वृशब्दवै-चित्रयाच्छब्दा छंकारत्वमेवेति ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इति श्रेषप्रकरणम् ॥ २६ ॥

अप्रस्तुतिति ॥ सा अप्रस्तुतप्रशंसा प्रस्तुताश्रया प्रस्तुतमाश्रयः प्राधान्येन तात्पर्यविषयो यस्यास्त्रथाभूता । प्रस्तुतपरमप्रस्तुतवर्णनमप्रस्तुतप्रशंसेत्यर्थः ॥ एक इति ॥ कृती कुशलः । शकुन्तेषु पक्षिषु मध्ये यश्चातकः शकादिन्द्रादन्यं न याचत इत्यर्थः ॥ कार्ये इति ॥ कार्ये प्रस्तुते सति तदन्यस्य कारणस्य वचः प्रतिपादनं निमित्ते कारणे प्रस्तुते सति तदन्यस्य कार्यस्य । एवं सामान्ये प्रस्तुते सति तदन्यस्य विशेषस्य विशेष प्रस्तुते सति तदन्यस्य सामान्यस्य तुल्ये प्रस्तुते तदन्यस्य तत्सदशस्यत्यर्थः । अन्यशब्दस्य प्रतिसंवन्धिपरत्वात् । तत्सरूपे तत्स-

# अप्रस्तुतप्रशंसालंकारः२७] अलंकारचन्द्रिकासहितः। ७९

आबद्धकृत्रिमसटाजिटलांसभिति-रारोपितो सृगपतेः पदवीं यदि श्वा । मत्तेभकुम्भतटपाटनलम्पटस्य नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य ॥

अत्र शुनकस्य निन्दा निन्दनीयत्वेन प्रस्तुते तत्सरूपे कृत्रिमवेपव्यवहा-रादिमात्रेण विद्वत्ताभिनयवति वैधेये पर्यवस्यति । यथावा—

अन्ति इछदाणि भूयांसि कण्टका बहवो बहिः। कथं कमङनाङस्य मा भूवन्भङ्करा गुणाः॥

अत्र कमलनालवृत्तान्तकीर्तनं तत्सरूपे विहः खलेषु जायत्सु श्रातृषुत्रादि-भिरन्तः कलहं कुर्वाणे पुरुषे पर्यवत्यति । एवंच लक्ष्यलक्षणयोः प्रश्नंसा-शब्दः स्तुतिनिन्दास्वरूपाख्यानसाधारणकीर्तनमात्रपरो दृष्टव्यः । सामान्य-निबन्धना यथा—

> विधाय वैरं सामेर्प नरोऽरी य उदासते। प्रक्षिप्योदर्चिपं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्॥

अत्र प्रागेव सामर्षे शिशुपाले रुक्मिणीहरणाहेरं दढीकृतवता कृष्णेन त स्मिन्नदासितुमयुक्तमिति वक्तव्येऽर्थे प्रस्तुते तत्प्रत्यायनार्थं सामान्यमभिहितम्। यथावा—

> सौहार्दस्वर्णरेखाणामुचावचभिदाजुपाम् । परोक्षमिति कोऽप्यस्ति परीक्षानिकपोपलः॥

अत्र यदि त्वं प्रत्यक्षमिव परोक्षेऽि मम हितमाचरिस तदा त्वमुत्तमः सुहृदिति विशेषे वक्तव्यत्वेन प्रस्तुते सामान्यमभिहितम् ॥ विशेपनिवन्धना यथा—

दशे ॥ आबद्धेति ॥ आबद्धाः याः कृत्रिमाः सटाः स्कन्धलोमानि तैर्जिटिला व्याप्ता अंसभित्तिः स्कन्धदेशो यस्येवंभूतः श्वा ग्रुनको मृगपतेः सिंहस्य पदवीं स्थानं यद्यारोपितः । तादशसटायुक्तत्वेन सिंहसाम्यं प्रापित इत्यर्थः । तथापि मत्तानामिभानां गजानां कुम्भतटस्य पाटने विदारणे लम्पटस्य व्यसिननो हरिणानामिभानां वेषेत्रये मूर्खे । 'मूर्खवैषेयवालिशाः' इत्यमरः ॥ अन्तरिति ॥ छिद्राणि रम्प्राणि दोषस्थानानि च । कण्टकाः ग्रुकाः खलाश्च । भङ्गरा भङ्गशीलाश्च । गुणाः सौभाग्यादयस्तन्तवश्च । अत्र स्तुतिनिन्दोदासीनखरूपाख्यानमात्रमिति श्विष्टविशेषणत्वमिति च भेदः ॥ प्रवंचेति ॥ उक्तोदाहरणेषु प्रस्तुतपरस्याप्रस्तुतवर्णनस्य त्रिरूपत्वे सतीखर्थः ॥ विधायेति ॥ ये नरा मनुष्याः सक्रोषेऽरौ शत्रौ वैरं विधायोदासीना भवन्ति ते कक्षे तृणे उद्विषमित्रं निक्षिप्याभिमारुतं प्रवनाभिमुखं शेरते । निद्रां कुर्वन्तीखर्थः ॥ सौहार्द्विति ॥ सौहार्द्विन मैत्राण्येव

अङ्काधिरोपितमृगश्चनद्रमा मृगलाञ्छनः । केसरी निष्ठरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः॥

अत्र कृष्णं प्रति बलभद्गवाक्ये माईवदूपणपरे पूर्वप्रस्तावानुसारेण कूर एव ख्यातिभाग्भवति न तु मृदुरितिसामान्ये वक्तव्ये तत्प्रत्यायनार्थमप्रस्तुतो विशेषोऽभिहितः । एवं बृहत्कथादिषु सामान्यतः कंचिद्र्यं प्रस्तुत्य तद्विव-रणार्थमप्रस्तुतकथाविशेषोदाहरणेष्वियमेवाप्रस्तुतप्रशंसाद्रष्टव्या ॥ कारणिन-बन्धना यथा—

हतसारिमवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा ।
कृतमध्यबिलं विलोक्यते धतगम्भीरखनीखनीलिम ॥
अत्राप्राकरिणकेन्दुमण्डलगततयोत्प्रेक्ष्यमाणेन दमयन्तीवदनिर्माणार्थं
सारांशहरणेन तत्कार्यरूपं वर्णनीयतयाप्रस्तुतं दमयन्तीवदनगतलोकोत्तरं
सौन्दुर्यं प्रतीयते । यथावा मदीये वरदराजस्तवे—

आश्रित्य न्नमसृतद्युतयः पदं ते देहक्षयोपनतदिव्यपदाभिमुख्याः । छावण्यपुण्यनिचयं सुहृदि त्वदास्ये विन्यस्य यान्ति मिहिरं प्रतिमासभिन्नाः ॥

अत्राप्राकरणिकचन्द्रकर्तृकतयोत्प्रेक्ष्यमाणेन लावण्यपुण्यनिचयविन्यासेन कारणेन तत्कार्यमनन्तकोटिचन्द्रलावण्यशालित्वमनन्यमुखसाधारणं भगव-न्मुखे वर्णनीयतया प्रस्तुतं प्रतीयते । तथाहि चन्द्रस्तावनमञ्रलिङ्गादृद्धिक्षया-श्यामभेदेऽपि भेदाध्यवसायाद्वा प्रतिमासं भिन्नत्वेन वर्णितः । तेनातीताश्चनद्वा अनन्तकोटय इति लब्धम् । कालस्यानादिःवात्सर्वेषां च तेषामाकाशसमाश्र-यणं श्लेपमहिस्रा भगवचरणसमाश्रयःवेनाध्यवसितम् । भगवचरणं प्रपन्नानां च देहक्षयोपस्थितौ परमपदप्राध्याभिमुख्यं तदानीमेव स्वसुहद्वर्गे स्वकीय-सुकृतस्तोमनिवेशनं ततः सूर्यमण्डलप्राप्तिश्चेत्येतःसर्वे श्वतिसिद्धमिति तद-नुरोधेन तेषां देहक्षयकालस्यामावास्यारूपस्योपस्थितौ सूर्यमण्डलप्राप्तेः प्रा-खर्णरेखा इति रूपकम् । तासां परीक्षणे निकषोपलः परोक्षमिति संज्ञितः कोऽप्य-स्तीत्यन्वयः ॥ अङ्केति ॥ मृगलाञ्छन इत्युच्यत इति शेषः । निष्टुरं क्षिप्तानि निरस्तानि मृगयूथानि येन तादशः केसरी सिंही मृगाधिप इत्युच्यत इति शेषः॥ हतेति ॥ धृतो गम्भीरायां खन्यां गर्ते खस्याकाशस्य नीलिमा येनेति मण्डल-विशेषणम् ॥ आश्रित्येति ॥ हे देव, प्रतिमासं भिन्ना अमृतद्युतयश्चन्द्रास्ते विष्णोः पदमाकाशमेव पदं चरणमाश्रिख देहस्य क्षये उपनतं संपन्नं दिव्यपदस्या-भिमुखत्वं येपामेवंभूताः संतस्त्वदास्यरूपे सुहृदि मित्रे नूनं लावण्यस्वरूपस्य पु-ण्यस्य निचयं विन्यस्य मिहिरं सूर्यं प्रति यान्तीलन्वयः ॥ मन्त्रिङ्गादिति ॥ 'नवो नवो भवति जायमानः' इत्यादिमन्त्रसामर्थादित्यर्थः । मन्त्रस्य मानान्तर-सिद्धार्थानुवादकत्वादाह—वृद्धीति ॥ श्रुतीति ॥ 'तत्सुकृतदुष्कृते विधनते

वप्रसक्षित्वं पुण्यत्वेन निरूपितस्य छावण्यस्य प्रहारणं निमित्तीकृत्य तस्य चन्द्रसादृश्यस्वरूपोपचिरितत्त्सोहादंवित भगवन्मुखेन्यसन्मुत्पेक्षितम् । यद्यपि सुहृद्भृत्वे तावदृल्पपुण्यसंक्रमो भवित तथापि अत्र सुहृद्गिकेवचनेन
भगवन्मुखमेव चन्द्रस्य सुहृद्भृतं न मुखान्तराणि चन्द्रसादृश्यगन्धस्यास्पद्गनीति भगवन्मुखस्येतरमुखेभ्यो व्यतिरेकोऽपि व्यक्षितः । ततश्च तिसन्नेव
सर्वेषां स्वस्वयावछावण्यविन्यसनोत्प्रेक्षणेन प्राग्वर्णितः प्रस्तुतोऽर्थः स्पष्टमेव
प्रतीयते । यद्यपि श्रुतौ सूर्यमण्डलप्राह्यनन्तरभाविविरजानदीक्षमणानन्तरमेव सुहृत्सुकृतसंक्रमणं श्रृयते तथापि शारीरकशास्त्रे तस्यार्थवशात्प्राग्भावः
स्थापित इति तदनुसारेण विन्यस्य मिहिरं प्रति यान्तीत्युक्तम् ॥ कार्यनिवन्धना यथा—

नाथ त्वदङ्किनखधावनतोयलमास्तरकान्तिलेशकणिकां जलधिं प्रविष्टाः ।
ता एव तस्य मथनेन धनीभवन्त्यो
नूनं समुद्रनवनीतपदं प्रपन्नाः ॥

अत्र भगवत्पादाम्बुजक्षालनरूपायां दिव्यसरित्यलक्तकरसादिवल्लग्नानां तया सह समुद्रं प्रविष्टानां तन्नखकान्तिलेशकणिकानां परिणामतया संभा-व्यमाने समुद्रनवनीतपदवाच्येन चन्द्रेण कार्येण तन्नखकान्त्युत्कर्पः प्रतीयते।

यथावा-

अस्याश्चेद्गतिसौकुमार्यमधुना हंसस्य गर्वेरछं संञ्जापो यदि धार्यतां परभृतेर्वाचयमत्ववतम् ।

तस्य त्रिया ज्ञातयः सुकृतसुपयन्ति अप्रिया दुष्कृतम्' इति काषीतिकश्रुतिः । 'स याविक्षिप्येन्मनस्तावदादिलं गच्छतीति स वायुमागच्छति स तत्र विजिहीते यथा रथचकस्य खं तेन स ऊर्ध्वमाकमते स आदिल्यमागच्छति' इति च श्रुतो स आदिल्यमागच्छतिलान्तरं 'स आगच्छिति विरजां नदीं तां मनसैवालेति तत्सकृतदुष्कृते विधुनुते' इति श्रुतौ ॥ शारीरकेति ॥ शरीरे भवः शारीरः स एव शारीरक आत्मा तत्प्रतिपादक इल्यंः । अर्थवशात्प्रयोजनवशात् । पूर्वे पापादिलागाभावेऽचिरादिमार्गप्राप्तिपूर्वकत्रह्मप्राप्तेरसंभवेन पाठकमस्यार्थकमेण वाधादिति भावः ॥ स्थापित इति ॥ 'सांपराये तर्तव्याभावात्तथा ह्यन्यः' इति तार्तीयाधिकरणे सिद्धान्तित इल्यंः ॥ नाथिति ॥ हे नाथ विष्णो, त्वचरणनिल्लाकृते गङ्गारूपे लग्नाः तेषां नखानां कान्तिलेशकणिकाः समुद्रं प्राप्ताः । ता एव च कणिकास्तस्य जलधेर्मथनेन सान्द्रतां प्राप्ता नूनं समुद्रसंवन्धिनवनीतस्य चन्द्रस्य पदं प्राप्ताः चन्द्ररूपेण परिणता इल्यंः ॥ अस्या इति॥ अस्याः नन्तरं हेतुरिति शेषः । तदेतुनलकान्त्युत्कर्षे इल्यंः ॥ अस्या इति॥ अस्याः अङ्गानामकठोरता यदि दृष्टियायेव सा मालती कान्तिश्चेत्कमला किमत्र बहुना कापायमालम्बताम्॥

अत्र नायिकागितसौकुमार्यादिषु वर्णनीयत्वेन प्रस्तुतेषु हंसादिगतगर्वशा-न्त्यादिरूपाण्योचित्येन संभाव्यमानानि कार्याण्यभिहितानि । एतानि च पूर्वोदाहरण इव न वस्तुकार्याणि किंतु तिन्निरीक्षणकार्याणि ।

> 'ळजा तिरश्चां यदि चेतिस स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्रयाः। तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युर्वालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः॥'

इत्युदाहरणान्तरे तथैव स्पष्टम् । अङ्गानामकठोरतेति तृतीयपादे तु वर्णनीयाङ्गसौकुमार्यातिशयनिरीक्षणकार्यत्वमपि नार्थाक्षेप्यमालतीकठोरत्वे विवक्षितम् । प्रतियोगिविशेपापेक्षकठोरत्वस्य तदकार्यत्वात्कितु तहुद्धेरेव । इदमपि व्वदङ्गमाद्वे दष्ट इत्याद्यदाहरणान्तरे तथैव स्पष्टम् ॥ अर्थस्य कार्य-त्व इव बुद्धेः कार्यत्वेऽपि कार्यनिवन्धनत्वं न हीयत इति । एतादशान्यपि

कामिन्या गतिसौकुमार्ये दृष्टं चेदित्यध्याहारेणान्वयः । एवं संलापो भाषणं यदि श्रुतस्तदा परभृतैः कोकिलैः वाचं यच्छतीति तथा तस्य भावो मौनमेव वतं धार्यतां साध्यताम् । अकठोरता मार्दवं यदि दृश्यते तदा सा प्रसिद्धा मालती दपत्प्रायैव पाषाणतुल्येव लक्ष्यत इति । कान्तिर्देष्टा चेत्तदा कमला लक्ष्मीः का-षायं वस्त्रमालम्बतामाश्रयतु । किमत्र बहुनोक्तेनेखन्वयः । गलादिषु गतिसौ-न्दर्यादिषु । संभाव्यमानान्युत्प्रेक्षमाणानि । पूर्वोदाहरणाद्वेलक्षण्यमाह— एतानीति ॥ कार्याणीत्यर्थः ॥ ळज्जेति ॥ तिरश्चां पश्चादीनां चेतसि यदि लजा स्यात्तदा चमर्यो गोमृगाः पर्वतराजपुत्र्यास्तं तथा रमणीयं केशपाशं प्र-समीक्ष्य वालाः केशाः प्रिया यासां तास्तथा तत्त्वं शिथिलं कुर्युरित्यन्वयः ॥ तथैव निरीक्षणकार्यत्वमेव ॥ अर्थाक्षेप्येति ॥ दपत्प्रायत्वरूपार्थाक्षिप्तेत्यर्थः । इदमप्यप्रस्तुतबुद्धेः कार्यत्वमपि । अपिना प्रस्तुतबुद्धेः कारणत्वं प्रागुक्तं समु-चीयते । 'त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे कस्य चित्ते न भासते । मालतीशशम्ब्रेखाकद्लीनां कठोरता ॥' इति तुल्ययोगितायां प्रागुदाहृतम् । ननु कार्यरूपेणाप्रस्तुतेनार्थन यत्र प्रस्तुतं तत्कारणमवगम्यते सा कार्यनिबन्धना अप्रस्तुतप्रशंसोच्यते । न चोदाहृतेषु तत्संभवः । मालतीकठोरत्वादेरप्रस्तुतस्यार्थस्याकार्यतायास्त्वयैव द-शितत्वात । एवं प्रस्तुतस्य कामिनीगतिनिष्ठसौन्दर्यातिशयादेनिरीक्षणस्यैव का-रणत्वेन खरूपतस्तस्याकारणत्वादित्यत आह—अर्थस्येति ॥ अयमाशयः । अर्थस्याप्रस्तुतत्वे सुतरां तद्वद्वेरप्रस्तुतत्वात्कार्यत्वाच न तावद्प्रस्तुतकार्यत्वां-शासंभवः । अर्थत्वस्य प्रयोजनाभावेन लक्षणेऽनिवेशादव्यावर्तकत्वाच । नापि प्रस्तुतस्य कारणत्वांशस्यासंभवः । स्वरूपतस्तस्याहेतुत्वेऽपि ज्ञानस्य हेतुत्वादिति। नन गतिसौन्दर्यादेशानमेव हेत्ने त शायमानं गतिसौन्दर्यादि । तदभावेऽपि

कार्यनिबन्धनामस्तुतमशंसायामुदाहतानि प्राचीनैः । वस्तुतस्तु तद्तिरेके-ऽपि नदोषः। नह्यप्रस्तुतप्रशंसायां प्रस्तुताप्रस्तुतयोः पञ्चविध एव संवन्ध इति नियन्तुं शक्यते । संबन्धान्तरेष्विप दर्शनात् । यथा—

> तापत्रयोपधवरस्य तव स्मितस्य नि:श्वासमन्दमस्ता निवुसीकृतस्य । एते कडङ्करचया इव विप्रकीर्णा जैवानुकस्य किरणा जगति अमन्ति ॥

अत्र ह्यप्रस्तुतानां चन्द्रिकरणानां भगवन्मन्द्रस्मितरूपदिव्योपधधानयवि-शेषकडङ्करचयस्योत्प्रेक्षणेन भगवन्मन्द्रस्मितस्य तत्सारतारूपः कोऽप्युत्कर्षः प्रतीयते । नच धान्यकडङ्करचययोः कार्यकारणभावादिसंबन्धोऽस्ति । अतः सहोत्पत्त्यादिकमपि संबन्धान्तरमाश्रयणीयमेव । एवमुपमानोपमेयावाश्रित्य तत्र कविकल्पितकार्यकारणभावनिबन्धने अप्रस्तुतप्रशंसे दृशिते । ततोऽन्य-त्रापि दृश्यते । यथा—

कालिन्दि बृहि कुम्भोद्भव जलिधरहं नाम गृह्वासि कस्मा-च्छत्रोमें नर्मदाहं त्वमि वदसि मे नाम कस्मात्सपत्न्याः। मालिन्यं तर्हि कस्मादनुभवसि मिलत्कजलेर्मालवीनां नेत्राम्भोभिः किमासां समजनि कुपितः कुन्तलक्षोणिपालः॥

अत्र किमासां समजनीति मालवीनां तथा रोदनस्य निमित्ते पृष्टे तित्र-यमरणरूपनिमित्तमनाख्याय कुपितः कुन्तलक्षोणिपाल इति तत्कारणमभि-हितमिति कारणनिवन्धना । मालवान्प्रति प्रस्थितेन कुन्तलेश्वरेण किं ते

ज्ञानमात्रात्कार्योत्पत्तेरित्यस्वरसादाह—वस्तुतिस्त्विति ॥ तदितरेके तस्याः प्राचीनोदाहृताप्रस्तुतप्रशंसाया अतिरेके प्रकारपञ्चकाधिक्ये ॥ तापेति ॥ हे हरे, तव निःश्वासरूपमन्दमारुतेन निवुसीकृतस्य वुसरिहृतीकृतस्य स्मितरूप-स्याध्यात्मिकादितापत्रयौषधश्रेष्ठस्य विप्रकीर्णाः कडङ्करचयाः वुससमूहा इवैते जैवातृकस्य चन्द्रस्य किरणा जगित अमन्तीत्यन्वयः । तत्सारतारूपः किरण-सारतारूपः ॥ एविमिति ॥ हतसारमित्युदाहरणे चन्द्रवदने उपमानोपमेय-पदार्थावाश्रित्य चन्द्रसारांशहरणस्य सतः कविप्रौढोक्तिकित्पतं कारणत्वम् । एवमन्येष्विप द्रष्टव्यम् ॥ कालिन्दीति ॥ नर्मदायाःसमुद्रस्य चसंवादोऽयम् । तत्र यमुनाश्रान्त्या समुद्रेण कालिन्दीत्युक्ते कोपात्साकृतं नर्मदाया उत्तरम् । हे कुम्भोद्रवागस्त्यमुने त्रूहीति । ततः पुनः समुद्रस्य प्रतिवचनम् । अहं जलिम्बामि मम शत्रोनाम कस्माद्धेतोर्गृह्णासीति । सा पुनराह । नर्मदाहमित्यादि । ततः समुद्रः पुनराह । तिर्हे कुतो मालिन्यमनुभवसीति । सा पुनराह । मिलन्तक्रक्तेमीलवदेशाङ्गनानां नेत्राश्रुभिरिति । ततः किमासां जातमिति समुद्रस्य

नाशिता इति पृष्टे तद्वधानन्तरभावि जलधिनर्भदाप्रश्लोत्तररूपं कार्यमभिहि-तमित्यत्रेव कार्यनिवन्धनापि पूर्वस्यां प्रश्लः शाब्दोऽस्यामार्थ इति भेदः ॥६७॥

# प्रस्तुताङ्कुरालंकारः २८

# प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुताङ्करः।

किं भृङ्क सत्यां मालत्यां केतक्या कैण्टकेद्भया ॥ ६६ ॥

यत्र प्रस्तुते वर्ण्यमानेनाभिमतमन्यत्प्रस्तुतं द्योत्यते तत्र प्रस्तुताङ्करालं-कारः । उत्तरार्धमुदाहरणम् । इह प्रियतमेन साकमुद्याने विहरन्ती काचि-ऋङ्गं प्रत्येवाहेति वाच्यार्थस्य प्रस्तुतत्वम् । न चानामञ्चणीयामञ्चणेन वाच्या-संभवादप्रस्तुतमेव वाच्यमिह स्वरूपप्रस्तुतावगतये निर्दिष्टमिति वाच्यम् । मौग्ध्यादिना भृङ्कादावप्यामञ्चणस्य लोके दर्शनात् । यथा—

> कस्त्वं भोः कथयामि दैवहतकं मां विद्धि शाखोटकं वैराग्यादिव विश्व साधु विदितं कस्मादिदं कैथ्यते । वामेनात्र वटस्तमध्वगजनः सर्वात्मना सेवते न च्छायापि परोपकारकरिणी मार्गस्थितस्यापि मे ॥

इत्यत्र चेतनाचेतनप्रश्लोत्तरवित्तर्यगामञ्चणस्यात्यन्तमसंभावितत्वाभावात् । एवं प्रस्तुतेन वाच्यार्थेन भृङ्गोपालम्भरूपेण वञ्चयाः कुलवध्वाः सौन्दर्याभि-

प्रश्नः । कुन्तलदेशाधिपः कुपित इति नर्मदाया उत्तरम् ॥ ६५ ॥ इत्यप्रस्तुत-प्रशंसाप्रकरणम् ॥ २७ ॥

प्रस्तुतेनिति॥ प्रधानभूतप्रस्तुतान्तरांभिव्यक्षकं प्रस्तुतवर्णनं प्रस्तुताङ्करालंकारः । प्रस्तुतस्याभिव्यक्षकत्वादङ्कर इवाङ्कर इति व्युत्पत्तेः ॥ किमिति ॥ हे अमर, माललां विद्यमानायां कण्टकेद्धया कण्टकव्याप्तया केतक्या किं प्रयोजनमिति प्रस्तुतेन अमरवृत्तान्तेन मिय मनोहारिण्यां सत्यां किमुद्वेगकारिण्या परवन्तियेति नायकवृत्तान्तः प्राधान्येन प्रस्तुतोऽभिव्यज्यते। कथमिह भृजवृत्तान्तस्य प्रस्तुतत्वं तत्राह—इहेति॥तथाच भृज्जसंवोध्यकत्वात्तद्वृत्तान्तोऽपि प्रस्तुत इति भावः । अनामन्त्रणीयामन्त्रणेन संबोध्यत्वायोग्यसंबोधनेन। वाच्यासंभवाद्वृज्ञसंवोध्यकवाच्यार्थासंभवात् ॥ कस्त्विमिति ॥ शाखोटकतरुं प्रति कस्यचित्पियकस्य प्रश्लोक्तिः । कथयामीत्याद्यत्तरम् । वराग्यादिव वदसीति पुनः प्रश्लः । साधु विदितमिति शाखोटकस्योत्तरम् । कस्मादिदं वराग्यमिति पुनः प्रश्लः । सधु विदितमिति शाखोटकस्योत्तरम् । कस्मादिदं वराग्यमिति पुनः प्रश्लः । कथ्यत इति पुनरुत्तरं प्रतिज्ञाय शाखोटक आह । वामभागेनोपलक्षितोऽत्र वन्टोऽस्ति तं पान्थो जनः सर्वात्मना समित्पत्रच्छायादिभिः सेवते आश्रयहि । मम पुनर्मार्गे स्थितस्यापि न छायापि परोपकारसंपादिकेति भूताधारत्वादिति भावः । वामेनेति मार्गेति च श्लिष्टम् । अत्यन्तमारोपेणापि । परवनितायामिति

१ 'कण्टकस्थया'. २ 'दिदं भाषते'.

### प्रस्तुताङ्करालंकारः२८] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

14

मानशालिन्याः कृरजनपरिवृत्तिदुष्प्रधर्षायां परवनितायां विटसर्वस्त्रापहर-णसंकल्पदुरासदायां वेदयायां वा कण्टकसंकुलकेतकीकल्पायां प्रवर्तमानं वि-यतमं प्रत्युपालम्भो द्योत्यते । यथावा—

> अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु । बालामजातरजसं कलिकामकाले व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ॥

अत्राप्युद्यानमध्ये चरन्तं मृङ्गं प्रस्युपालम्भ इति वाच्यार्थस्यापि प्रस्तुत-स्वम् । इदंच प्रौढाङ्गनासु सतीषु वालिकां रतये क्लेशयित कामिनि शृण्व-ति कस्याश्चिद्विदग्धाया वचनमिति तं प्रस्युपालम्भो द्योत्यते ॥ यथावा—

कोशह्न-हिमयं दधाति निलनी कादम्बचञ्च्यतं धत्ते चूतलता नवं किसलयं पुंस्कोकिलास्वादितम् । इत्याकण्यं मिथः सखीजनवचः सा दीर्घिकायास्तटे चैलान्तेन तिरोदधे स्तनतटं विम्वाधरं पाणिना ॥

अत्रेयमिति निलनीव्यक्तिविशेषिनिर्देशेन दीर्घिकायास्तट इत्येनन च दाच्यार्थस्य प्रस्तुतत्वं स्पष्टम् । प्रस्तुतान्तरद्योतनं चोत्तरार्धे स्वयमेव कविनाविष्कृतम् । अत्राद्योदाहरणयोरन्यापदेशध्वनिमाह लोचनकारः । अप्रस्तुतप्रशंसायां वाच्यार्थोऽप्रस्तुतत्वादवर्णनीय इति । तत्राभिधायाम-पर्यवसितायां तेन प्रस्तुतार्थव्यक्तिरलंकारः । इहतु वाच्यस्य प्रस्तुतत्वेन तत्रा-भिधायां पर्यवसितायामर्थसीन्द्र्यवलेनाभिमतार्थव्यक्तिध्विति । वस्तु-

वेदयायामिति च विषयसप्तमी । तद्विषय इल्पर्थः । विटानां सर्वस्वाहरणे यः संकल्पर्लेन दुःप्रापेति वेदयाविदोषणम् ॥ अन्योति ॥ हे मङ्ग, अन्यासूपमर्दक्षमासु सुमनसां पुष्पाणां लतासु तावद्यावन्नवमिक्तियाः कलिका संजातरजस्का भवति । लोलं चपलं मनो विनोदय । लोलमिति कियाविद्येषणं वा । नवमिक्तिया लता-विद्येषय वालामिनवामसंजातरजस्कां किलकामकाले व्यर्थं किमिति कद्रथ्य-सि पीडयसील्यन्वयः । रजः पुष्परजः स्त्रीणां रेतश्र ॥ २८ण्वतीति ॥ एतद्वन्वं रएण्वति सतील्यथः ॥ कोद्रोति ॥ इयं निलनी कमिलनी कोशद्वन्द्रं मुकुल्युगलं कादम्बस्य हंसस्य च्यवा क्षतं कृतक्षतं दधाति धत्ते तथेयं चृतस्याम्रस्य लता नृतनं पत्नवं पुरूपेः कोकिलेरास्वादितं चितं धत्ते दिविद्याया वाप्यास्तटे मिथः परस्परं सलीजनस्य वच आकर्ण्यं सा प्रस्तुता नायिका कमलस्य वस्रस्यान्तेन प्रान्तेन स्तनतटं तिरोद्धे, विम्वरूपमधरं च पाणिना तिरोद्ध आच्छादितवतील्यन्वयः ॥ अन्यापदेशेति ॥ अन्यस्यापदेशो मिषं यत्र ताहहामिल्यर्थः । तदीयमेव प्रन्थं दर्शयति—अप्रस्तुतेत्यादि । व्यवस्थापित-

८६

कुवलयानन्दः।

[प्रस्तुताङ्करालंकारः२८

तस्त्वयमप्यलंकार एव ध्वनिरिति व्यवस्थापितं चित्रसीमांसायाम् । तृती-योदाहरणस्य त्वलंकारत्वे कस्यापि न विवादः । उक्तं हि ध्वनिकृता—

'शब्दार्थशक्तयाक्षिप्तोऽपि ब्यङ्गयोऽर्थः कविना पुनः । यत्राविष्क्रियते स्वोक्तया सान्यैवालंकृतिर्ध्वनेः ॥' इति । एतान्यपि सारूष्यनिबन्धनान्युदाहरणानि संबन्धान्तरनिबन्धनान्यपि

कथंचिद्वाच्यव्यङ्गययोः प्रस्तुतत्वनिबन्धनेनोदाहरणीयानि । दिङ्गात्रमु-दाहियते—

रात्रिः शिवा काचन संनिधत्ते विलोचने जायतमप्रमत्ते । समानधर्मा युवयोः सकाशे सखा भविष्यत्यचिरेण कश्चित् ॥

अत्र शिवसारूप्यमिव तदेकदेशतया तद्वाच्यं छछाटछोचनमपि शिवरा-त्रिमाहात्म्यप्रयुक्तत्वेन वर्णनीयमिति तन्मुखेन कृत्स्नं शिवसारूप्यं गम्यम्। यथावा—

> वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभारतिमिर-त्विषां वृन्दैर्बन्दीकृतिमव नवीनार्केकिरणम् । तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरी-परीवाहस्रोतःसरणिरिव सीमन्तसरणिः॥

अत्र वर्णनीयत्वेन प्रस्तुतायाः सीमन्तसरणेर्वदनसौन्दर्यपरीवाहत्वोत्प्रेक्ष-णेन परिपूर्णतटाकवत्परीवाहकारणीभूता स्वस्थाने अमान्ती वदनसौन्दर्यस-मृद्धिः प्रतीयते । सापि वर्णनीयत्वेन प्रस्तुतैव ॥ यथावा—

> अङ्गासङ्गिमृणालकाण्डमयते भृङ्गावलीनां रुचं नासामौक्तिकमिन्द्रनीलसराणि श्वासानिलाद्गाहते ।

मिति ॥ प्रस्तुतत्वेऽपि मुख्यतया तात्पर्याभावादत्राप्यभिधापर्यवसानाभावादिति भावः ॥ सान्येवेति ॥ सा अलंकृतिध्वनः सकाशादन्येवेत्यर्थः । प्रस्तुतत्वलम्भनेन प्रस्तुतत्वप्राप्त्या ॥ रात्रिरिति ॥ हे विलोचने, शिवा कत्याणरूपा काचनानिर्वचनीयप्रभावा रात्रिः । शिवरात्रिरित्यर्थः । संनिधत्ते संनिहिता भवति । अतो युवां अप्रमत्ते जाप्रतं जाप्रदूपे भवतम् । कुतस्तत्राह । युवयोः सकाशे समीपे अचिरेण समानधर्मा सदशः सखा कश्चिद्भविध्यति । तृतीयं लोचनं भाले भविष्यतीत्यर्थः । तदेकदेशतयेति शिवरात्रिम्माहात्म्यप्रयुक्तत्वे हेतुः । तच वर्ण्यते । तद्वाच्यमुदाहतकाव्यवाच्यम् । एवं चैकदेश्येकदेशभावसंवन्धनिवन्धनत्वमत्र दर्शितम् ॥ वहन्तीति ॥ भगवत्याः सीमन्तवर्णनमिदम् । अयि शिवे, तव सीमन्तसरणिनः क्षेमं तनोत्वित्यन्वयः । कीदशी । सिन्दूरं वहन्ती । किमिव । प्रवलानं केशपाशरूपान्धकारदीप्तीनां समूहैर्वन्दीकृतं वालार्किरणमिव । सर्णः । केव । त्वद्वनसौन्दर्यलहरीणां परीवाहरूपा स्रोतसः सरणिरिवेति । परीवाहो जलनिर्गममार्गः । 'जलोच्छासाः परीवाहाः' इत्यमरः ॥ अङ्गिति ॥ वेरहसंतापवर्णनम् । अङ्गसंवद्धं मृणालकान्

### पर्यायोक्तालंकारः २९] अलंकारचिन्द्रकासहितः।

10

दत्तेयं हिमवालुकापि कुचयोर्धत्ते क्षणं दीपतां तसायःपतिताम्बुवःकरतले धाराम्बु संलीयते ॥

अत्र नायिकाया विरहासहत्वातिशयप्रकटनाय संतापवत्कार्याणि मृणाल-मालिन्यादीन्यपि वर्णनीयत्वेन विवक्षितानीति तन्मुखेन संतापोऽवगम्यः । यत्र कार्यमुखेन कारणस्यावगतिरपि श्लोके निवद्धा न तत्रायमलंकारः किं त्वनुमानमेव । यथा—

> परिम्लानं पीनस्तनज्ञधनसङ्गादुभयत-स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम् । इदं व्यस्तन्यासं प्रशिथिलभुजाक्षेपवलनैः कृशाङ्ग्याः संतापं वद्ति निलनीपत्रशयनम् ॥

पर्यायोक्तालंकारः २९ पर्यायोक्तं तु गैम्यस्य वचो भक्त्यन्तराश्रयम् । नमस्तसे कृतो येन मुधा राहुवधूकुचो ॥ ६७ ॥

यदेव गम्यं विवक्षितं तस्यैव भङ्ग्यन्तरेण विवक्षितरूपाद्पि चारुतरेण केनचिद्र्पान्तरेणाभिधानं पर्यायोक्तम् । उत्तरार्धमुदाहरणम् । अत्र भगवा-

ण्डं मृङ्गेभ्यो विशेषरिहतां तत्समां रुचं कान्तिमयते प्राप्नोति । तापातिशयेन मिलनीभावात् । नासामौक्तिकं श्वासानिलादत्युष्णाद्वेतोरिन्द्रनीलमणेः पदवीं तत्साम्यं गाहते प्राप्नोति । तथा कुचयोर्दत्ता निहितेयं हिमवालुका कर्पृरं क्षणं दीपरूपतां थत्ते । एवं करतले धारारूपेण िक्तं जलं तप्तायःपिण्डपितजलव-त्संलीयते । तापातिशयाच्छोषं प्राप्नोतीत्यर्थः । उदाहरणद्वयेऽपि कार्यनिवन्धन-त्वं व्यक्तम् ॥ न तत्रायमिति ॥ द्वयोरिष वाच्यत्वादिति भावः । अयित्युपलक्षणम् । अप्रस्तुतप्रशंसापि नेति वोध्यम् । किं कृतस्ति तत्र चमत्कारोऽत आह—कित्विति ॥ परीति ॥ रत्नावत्यां स्वविरहातुरायाः सागरिकायाः शयनमुपगतस्य राज्ञ इयमुक्तिः । इदं वितिनीपत्ररिचतं शयनं कृशाङ्गयाः संतापं वदस्यनुमापयति । किंभूतम् । पीनस्तनजघनसंघादुभयत अर्ध्वाधोभागयोः परिम्लानं तनोः कृशस्य मध्यस्य परिमिलनं संघर्षमप्राप्य अन्तर्मध्यभागे हरित-वर्णम् । एवं प्रकर्षेण शिथिलयोर्भुजयोराक्षेपैश्वालनैश्व व्यस्तः विपमीकृतो न्यासो रचना यस्य तादशमिति ॥ इति प्रस्तुताङ्करप्रकरणम् ॥ २८ ॥

ननु प्रस्तुतकार्याभिधानमुखेन कारणस्य गम्यत्वमि प्रस्तुताङ्करविषयश्चेतिं तर्हि पर्यायोक्तमित्याकाङ्कायामाह—पर्यायोक्तमिति ॥ वचः प्रतिपादनं भङ्गय-न्तराश्रयं भङ्गयन्तरप्रकारकम् ॥ लक्षणं परिष्कुरुते—यदेवेति ॥ तथाच विव-क्षितस्वप्रकारातिरिक्तेन चारुतरेण रूपेण व्यङ्गयस्याभिधानं पर्यायोक्तमिति लक्ष-णम् । पर्यायेण भङ्गयन्तरेणोक्तमभिहितं व्यङ्गयं यत्रेति व्युत्पत्तेः । लक्षणे

१ 'गम्यश्चेद्वो भङ्गयन्तराश्रयः'.

कवलयानन्दः । पिर्यायोक्तालंकारः २९

66

न्वासुदेवः स्वासाधारणरूपेण गम्यः राहुवधूकुचवैयर्थ्यकारकत्वेन रूपान्तरेण स एवाभिहितः।

> लोकं पश्यति यस्याङ्किः स यस्याङ्किः न पश्यति । ताभ्यामप्यपरिच्छेद्या विद्या विश्वगुरोस्तव ॥

अत्र गौतमः पतञ्जलिश्च स्वासाधारणरूपाभ्यां गम्यौ रूपान्तराभ्याम-भिहितौ । यथावा---

निवेद्यतां हन्त समापयन्तौ शिरीपकोशम्रदिमाभिमानम् ।
पादौ कियदूरिममौ प्रयासे निधित्सते तुच्छद्यं मनस्ते ॥
अत्र कियदूरं जिगिमिपेति गम्य एवार्थौ रूपान्तरेणाभिहितः । यथावा—
देवं वन्दे जलधिशरिं देवतासार्वभौमं
व्यासप्रष्टा भुवनविदिता यस्य वाहाधिवाहाः ।
भूषापेटी भुवनमधरं पुष्करं पुष्पवाटी
शाटीपालाः शतमखमुखाश्चन्दनदुर्भनोभूः ॥

खपदं व्यक्त्यपरम् । नच व्यक्त्यस्यव वाच्यत्वं निष्फलं विरुद्धं चेति वाच्यं प्रका-रभेदात् । तदुक्तम्—'यदेवोच्यते तदेव व्यक्तयं यथा तु व्यक्तयं न तथोच्यते ' इति । चारुतरेणेति विशेषणात् । 'नमो राहुशिररछेदकारिणे दु:खहारिणे' इत्यत्र न पर्यायोक्तप्रसङ्गः । स्वासाधारणरूपेण वासुदेवत्वेन । यत् राहृशिरदछे-दकारित्वरूपव्यक्त्यमादायैव पर्यायोक्तं वक्तुमर्हे न तु विशेषणसामर्थ्यस्यं वासुदेवत्वमादायेति । तद्युक्तम् । राहुशिरइछेदकारित्वस्य वाच्यसिद्धाङ्गत्वेन तेनापि विवक्षितं व्यक्न्यं प्रधानभूतं वासुदेवत्वं तदादायेव तत्कथनौचित्यात्। 'राहुस्रीकुचनैष्फल्यकारिणे हरये नमः' इल्रत्र तु राहुशिरइछेदकारित्वमेव विव-क्षितं व्यक्त्यमिति युक्तं, तदादाय पर्यायोक्तमिति विभावनीयम् ॥ लोकमिति ॥ यस्याक्षपादस्याङ्गिलींकं पश्यति । अथ च स लोको यस्य पतञ्जलेः शेषावतार-स्याङ्गि न पर्यति उरगत्वात् । ताभ्यामक्षपाद्पतज्ञलिभ्यामपरिच्छेद्या अना-कलनीया ॥ निवेद्यतामिति ॥ नलं प्रति दमयन्खा उक्तिः । तव अल्पदयं मनः । कर्तृ । शिरीषकलिकामृदुत्वाभिमानमपनयन्तौ इमौ पादौ कियद्रपर्यन्तं प्रयासे निधातुमिच्छति । हन्त खेदे । एतन्निवेद्यताम् । कथ्यतामित्यर्थः ॥ देविमिति ॥ देवतासार्वभौमं सकलदेवताधीश्वरं देवं वन्दे । कीदृशम् । जल-धिरेव शरधिस्तूणो यस्य तथाभूतं त्रिपुरसंहारे शरीकृतस्य विष्णोर्विश्रान्ति-स्थानत्वात् । तथा भुवनेषु विदिताः ख्याताः व्यासः प्रष्टोऽम्यो येषां ते व्यास-प्रमुखा वसिष्ठाद्या यस्य वाहानां वाहनानां वेदानामधिवाहा वाहनाधिकृता भवन्ति । 'पुरोगाग्रेसरप्रष्ठाग्रतःसरःपुरःसराः' इत्यमरः । एवमधरं भुवनं पातालं भूषणपेटिका सर्पभूषणत्वात् । पुष्करमाकाशं पुष्पवाटिका पुष्पस्थानीयचन्द्रो-द्गमाधारत्वात् । शतमख इन्द्रस्तत्प्रमुखा अम्यादयो दिक्पालाः शाटीपालना-धिकृताः दिगम्बरत्वेन दिशामेव शाटीरूपत्वात् । मनोभूश्वन्दनतरुः चन्दनस्था-

# पर्यायोक्तालंकारः २९] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

19

अत्र यस वेदा वाहा भुजङ्गमा भूपणानीत्यादि तद्वाक्यार्थव्यवस्थितौ वे-दृत्वाद्याकोरण गम्या एव वेदादयो व्यासप्रमुखविनेयत्वाद्याकारेणाभिहिताः परंतु देवतासार्वभौमत्वस्फुटीकरणाय विशेषणविशेष्यभावव्यत्यासेन प्रतिपा-दिताः । अत्रालंकारसर्वस्वकृतापि पर्यायोक्तस्य संप्रदायागतमिदमेव लक्षण-मङ्गीकृतं गम्यस्यापि भङ्गयन्तरेणाभिधानं पर्यायोक्तमिति ।

'चकाभिघातप्रसभाज्ञयैव चकार यो राहुवध्जनस्य । आलिङ्गनोद्दामविलासवन्ध्यं रतोत्सवं चुम्बनमात्रशेषम्'॥

इति प्राचीनं तदुदाहरणं त्वन्यथा योजितम् । राहवधूगतेन विशिष्टेन

रतोत्सवेन राहुशिरश्छेदः कारणरूपो गम्यत इति । एवंच गम्यस्यैवाभिधा-निमिति लक्षणस्यानुपपत्तिमाशक्काह । यद्गम्यं तस्यैवाभिधानं लक्षणे विविधन तमिति लक्षणं क्रिष्टगत्या योजितम् । लोचनकृता 'पर्यायोक्तं यदन्येन प्रका-रेगाभिधीयते' इतीदमेव लक्षणमङ्गीकृत्य तद्दाहरणे च कार्येण शब्दाभिहि-तेन कारणं व्यक्तयं प्रदर्भ तत्र लक्षणं लक्ष्यं नाम च क्विष्टगत्या योजितम् । वाच्यादन्येन प्रकारेण व्यङ्गयेनोपलक्षितं सद्यद्भिधीयते तत्पर्यायेण प्रकारा-न्तरेण व्यङ्गयेनोपलक्षितसुक्तमिति सर्वोऽयं क्षेत्रः किमर्थ इति न विद्यः। नीयभस्मसंवन्धित्वात् । मदनभस्मना शिवेनाङ्गानामनुलेपनस्य पुराणेषु प्रसिद्धेः । अत्र लक्षणं संगमयति—अत्रेति ॥ व्यवस्थितौ विवक्षायां सलाम् । अवगम्या व्यक्त्या ॥ विनेयत्वेति ॥ शिक्षणीयत्वेत्यर्थः । आदिना पाताल-गुप्तत्वादिपरिष्रहः ॥ अभिहिता इति ॥ वाहायधिकृतत्वादिना व्यासादिप्रति-पत्तो समानवित्तिवेद्यत्वेन व्यासादिविनेयत्वादेरिप तेष्ववगमादिति भावः। साक्षादेव व्यासादिविनेयत्वाद्याकारेण किमिति न निर्दिष्टा इत्याशक्क्याह— परंत्विति ॥ यद्यप्यक्तविशेष्यविशेषणभावेऽपि देवतासार्वभौमत्वमवगम्यते तथापि स्फुटप्रतिपत्त्यर्थे तद्वैपरीत्यं कृतमित्यर्थः ॥ चक्रेति ॥ यो देवः सुदर्श-नचकस्याभिघाते या प्रसभमाज्ञा तयेव राह्वधूजनस्य सुरतोत्सवमालिङ्गन-स्योद्दामा उद्भटा ये विलासास्तैर्वनध्यं रहितं चुम्बनमात्रावशेषं चकारेत्यन्वयः। विशिष्टेनोक्तविशेषणविशिष्टेन। एवं चेदशोदाहरणयोजने च॥अनुपपित्तिमिति॥ गम्यस्य राहुशिरद्छेदस्य भङ्गयन्तरेणानभिधानाद्वयाप्तिमाशङ्क्येत्यर्थः ॥ अभि-धानायोगादिति ॥ अयमाशयः । अत्रहि राहृशिररछेदकारीति वासुदेव इति वा व्यक्क्यं राहुवधूजनसंवन्धितादशरतोत्सवकारित्वेन प्रकारान्तरेणाभिधीयत इति न वक्तं शक्यम्। धर्मिणो वासुदेवस्य प्रकान्तत्वेन यच्छब्दाभिहितत्वेन च ब्यङ्गय-त्वायोगात् । व्यक्त्यस्य च राहुशिरइछेदकारित्वस्य वासुदेवत्वस्य वा धर्मस्य प्रकारान्तरेणानभिधानात् । तस्मात्पर्यायेण कार्यादिद्वारेणोक्तं गम्यमाक्षिप्तं वेति लक्षणार्थः । अभिधानमाक्षेपो व्यञ्जनं वा ॥ पर्यायोक्तमिति ॥ क्रचित्पर्या-योक्त इति पाठस्त्वयुक्तः । व्यङ्गयेनोपलक्षितमुक्तमिति व्याख्यानप्रन्थविरोधात्॥ न विद्म इति ॥ यच्छव्दाभिहितस्यापि भगवतो वासुदेवत्वादिना रूपान्तरेण

अद्शितानि हि गम्यस्थेव रूपान्तरेणाभिधाने वहून्युदाहरणानि चक्राभि-धातप्रसभाज्ञयेवेति प्राचीनोदाहरणमिष स्वरूपेण गम्यं भगवतो रूपान्तरे-णाभिधानसन्वात्सुयोजमेव । यनु तत्र राहुशिरश्छेदावगमनं तत्र प्रागुक्त-रीत्या प्रस्तुताङ्कर एव । प्रस्तुतेन च राहोः शिरोमात्रावशेपेणालिङ्गनवन्ध-खाद्यापादनरूपे वाच्ये भगवतो रूपान्तरे उपपादिते तेन भगवतः स्वरूपे-णावगमनं पर्यायोक्तस्य विषयः ॥

> पर्यायोक्तं तद्प्याहुर्यद्व्याजेनेष्टसाधनम् । यामि चूतलतां द्रष्टुं युवाभ्यामास्यतामिह् ॥ ६८ ॥

अत्र नायिकां नायकेन सङ्गमय्य चूतलतादर्शनव्याजेन निर्गच्छन्त्या सख्या तत्स्वाच्छन्द्यसंपादनरूपेष्टसाधनं पर्यायोक्तम् । यथावा—

> देहि मत्कन्दुकं राधे परिधाननिगृहितम्। इति विस्नंसयन्नीवीं तस्याः कृष्णो सुदेऽस्तु नः॥

व्यक्त्यतया यथाश्रते बाधकाभावादिति भावः । न चाभिधाविषये कथं व्यक्तनेति वाच्यम् । वासुदेवत्वादिना प्रतीयमाने भगवत्यभिधाविषयत्वासंभवात् । तस्याः स्वावच्छेदकधर्मणीव बोधकत्वात् । अत एवोक्तम् 'शक्यादन्येन रूपेण ज्ञाते भवति लक्षणा ।' इति । इह तु लक्षणाहेत्वभावाङ्ग्यञ्जनोपगम्यत इति । ननु प्रस्तुतेन तादशरतोत्सवरूपेण कार्येण प्रस्तुतस्यैव राहुशिरश्छेदनरूपकारणस्य प्र-तीतौ चमत्कृतिविशेषस्तस्या अलंकारत्वं गमयति । तचालोच्यमानप्रस्तुतप्रशंसा-या असंभवादुक्तरीत्या पर्यायोक्तरूपतयेव स्वीकर्तव्यमित्याशङ्क्याह—यन्विति ॥ अलंकाराणामियत्तानियमाभावेन प्रस्तुताङ्करस्याप्यलंकारान्तरत्वादेवंविधशब्द-खारस्यभङ्गेन प्राचीनलक्षणव्याख्यानमयुक्तमिति भावः । संक्षेपतो दर्शितमि पर्यायोक्तविषयं विशदयति—प्रस्तुतेनेत्यादिना ॥ यत्तु भगवदूपेणावगमनं विशेषणमर्यादालभ्यत्वेनासुन्दरं पर्यायोक्तस्य विषय इति तदविचारितरमणीयम्। निह पर्यायोक्तेर्व्यक्वयसौन्दर्यकृतो विच्छित्तिविशेषः किंतु भक्त्यन्तराभिधानकृत एव। व्यक्त्यं तु भक्त्यन्तराभिधानतो सुन्दरमेव प्रायशो दृश्यते । यथा इहागन्त-व्यमिति विवक्षिते व्यक्त्ये अयं देशोऽलंकरणीयः सफलतामुपनेतव्य इस्रादावत-स्तद्मुन्दरत्वोद्भावनमिकंचित्करमेव । अलंकारसर्वस्वकारप्रन्थविरोधोद्भावनं तु तच्छिक्षाकारिणं प्रति न शोभते उपजीव्यत्वाद्भावनमपि प्रन्थस्याकिंचित्करमेव। युक्तिविरोध इति परोत्कर्पासहिष्णुत्वमात्रमुद्भावयितुरवगमयतीत्यलं विस्तरेण ॥ ६७॥ प्रकारान्तरेण पर्यायोक्तं लक्ष्यित-पर्यायोक्तमिति ॥ रमणीयेन व्याजेन मिषेण खस्य परस्य वा इष्टस्य यत्साधनं संपादनं तदपि पर्यायोक्तम् । पर्यायेण व्याजरूपेणोक्तं यत्रेति व्युत्पत्तेः ॥ संपादनेति ॥ संपादनरूपं यदिष्टं तत्साधनं तत्करणमित्यर्थः ॥ देहीति ॥ परिधानेनाधरवस्रेण निगृहितमाच्छा-दितमित्यर्थः। एवंच प्रकारद्वयसाधारणं तदन्यतरत्वं सामान्यलक्षणं बोध्यम्॥६८॥ इति पर्यायोक्तप्रकरणम् ॥ २९ ॥

### व्याजस्तुत्यलंकारः ३०] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

93

े पूर्वत्र परेष्टसाधनमत्र कन्दुकशोधनार्थं नीवीविस्तंसनव्याजेन स्त्रेष्टसाधन-मिति भेदः ॥ ६८ ॥

> व्याजस्तुत्यलंकारः ३० उक्तिव्याजस्तुतिर्निन्दास्तुतिभ्यां स्तुतिनिन्द्योः । कः खर्युनि विवेकस्ते पापिनो नयसे दिवम् ॥ ६९॥ साधु दृति पुनः साधु कर्तव्यं किमतः परम् । यन्मदर्थे विल्नासि दन्तरिप नखेरिप ॥ ७०॥

निन्दया स्तुतेः स्तुत्या निन्दाया वा अवगमनं व्याजस्तुतिः । कः स्वर्धु-नीत्युदाहरणे विवेको नास्तीति निन्दाव्याजेन गङ्गा सुकृतिवदेव महापातका-दिकृतवतोऽपि स्वर्गं नयतीति व्याजरूपया निन्दया तत्प्रभावातिशयस्तुतिः । साधु दूतीत्युदाहरणे मद्धें महान्तं क्रेशमनुभूतवत्यसीति व्याजरूपया स्तुत्या मद्धें न गतासि किंतु रन्तुमेव गतासि । धिक्त्वां दूतिकाधमीविरुद्ध-कारिणीमिति निन्दावगम्यते । यथावा—

कस्ते शौर्यमदो योद्धं त्वय्येकं सप्तिमास्थिते । सप्तसप्तिसमारूढा अवन्ति परिपन्थिनः ॥ अर्धे दानवैवरिणा गिरिजयाप्यर्धे शिवस्थाहतं देवेत्थं जगतीतले स्मरहराभावे समुन्मीलित । गङ्गा सागरमम्बरं शशिकला नागाधिपः क्मातलं सर्वज्ञत्वमधीश्वरत्वमगमत्त्वां मां च भिक्षाटनम् ॥

उक्तिरिति ॥ अत्र निन्दास्तुतिभ्यामिति स्तुतिनिन्दयोरिति चेतरेतरयोगो न विविक्षितः । तथाच निन्द्या स्तुतेः स्तुत्या च निन्दायाः स्तुत्या स्तुतेशिक्तर-भिव्यक्तिर्व्याजस्तुतिरित्यर्थः । प्रथमे व्याजेन स्तुतिरिति चरमयोर्व्याजरूपा स्तुति-रिति च व्युत्पत्तेः । अतएव व्याजस्तुतिपदार्थानुगमाभावात्रिन्द्या निन्दाभिव्यक्तिर्व्याजनिन्दाख्यमलंकारान्तरिमत्यमे वक्ष्यते । अत एवमाद्ये प्रकारद्वये स्तुति-निन्द्योः समानविषयत्वभिन्नविषयत्वाभ्यां प्रत्येकं द्वैविध्यमिति चत्वारो भेदाः । अन्त्यस्तु भिन्नविषयस्तुतिक एक एवेति पञ्च भेदाः । लक्षणं तु व्याजनिन्दाभिन्त्रत्वे सित स्तुतिनिन्दान्यतरपर्यवसायिस्तुतिनिन्दान्यतरत्वं सर्वानुगतं बोध्यम् ॥ कस्त इति ॥ नृपं प्रति कवेरुक्तिः । त्वयि योद्धमेकं सित्तमश्रमास्थिते आह्रदे सित परिपन्थिनः शत्रवः सप्ताश्रसमाह्या भवन्तीत्यन्वयः । सप्त सप्तयोऽश्वा अस्तेति सूर्यः, सप्त च ते सप्तयोऽश्वास्तत्समाह्या इति द्वितीयोऽशे निन्दायोतकः। त्वया संमुखाहताः सूर्यमण्डलं भित्त्वा दिवमुपगता इति स्तुतौ पर्यवसानम् ॥ अर्धिमिति ॥ शिवस्य देहार्धे दानवानां वैरिणा हरिणा आहृतम् । हरिहरात्म-

१ 'पापिनं नयसे'.

अत्राद्योदाहरणे सप्तसिषदगतश्चेषमूळिनिन्दाव्याजेन स्तुतिवर्यज्यते । द्वि-तीयोदाहरणे सर्वज्ञः सर्वेश्वरोऽसीति राज्ञः स्तुत्या व्याजरूपया मदीयवेदु-व्यादि दारिद्यादि सर्वे जानन्नपि बहुप्रदानेन रक्षितुं शक्तोऽपि मद्यं किमपि न ददासीति निन्दा व्यज्यते । सर्वमिदं निन्दास्तुत्योरेकविपयत्वे उदाहर-णम् । भिन्नविषयत्वे निन्द्या स्तुत्यभिव्यक्तिर्यथा—

कस्त्वं वानर रामराजभवने लेखार्थसंवाहको यातः कुत्र पुरागतः स हनुमान्निर्दग्धलङ्कापुरः । बद्धो राक्षससूनुनेति किपिभः संताडितो भर्त्सितः स बीडात्तपराभवो वनमृगः कुत्रेति न ज्ञायते ॥ अत्र हनुमन्निन्द्या इतरवानरस्तुत्यभिन्यक्तिः ॥ स्तुत्या निन्दाभिन्यक्तिर्यथा—

यहक्रं मुहुरीक्षसे न धिननां त्रूपे न चाटून्मुषा
नेपां गर्ववचः शूणोषि न च तान्प्रत्याशया धावसि ।
काले वालतृणानि खादसि परं निद्रासि निद्रागमे
तन्मे त्रूहि कुरङ्ग कुत्र भवता किं नाम तसं तपः ॥
अत्र हरिणस्तुत्या राजसेवानिर्विण्णस्यात्मनो निन्दाभिन्यज्यते । अयमप्रस्तुतप्रशंसाविषय इत्यलंकारसर्वस्वकारः । तेनिह सारूप्यनिबन्धनाप्रस्तुतप्रशंसोदाहरणान्तरं वैधम्येणापि दृश्यते । यथा—

कस्येकस्य विम्रहस्य प्रसिद्धेः। एवं गिरिजयाप्यवशिष्टार्धमाहतम्। हे देव राजन्, इत्थमुक्तप्रकारेण जगतीतले स्मरहरस्याभावे समुन्मीलति प्रकाशमाने सित गङ्गा सागरं प्रत्यगमदित्याद्यन्वयः । नागाधिपः शेषः क्ष्मातलं पातालम् । त्वामिति पूर्वान्वितम् ॥ वेद्रपादीति ॥ विद्वत्तादीत्यर्थः । आदिना तपःशीलादिपरिग्रहः । दारिद्यादीलादिपदेन कुटुम्बबाहुल्यादिपरिग्रहः । नचात्र राजवर्णनप्रस्तावे कथं स्तुतेर्व्याजरूपत्विमिति वाच्यम् । स्तुतिपर्यवसानविवक्षायां खकीयभिक्षाटनो-स्तुतेरुक्तनिन्दारूपोपालम्भपर्यवसानस्यानुभवसिद्धस्यावि-द्घाटनस्यासंगतत्वेन रुद्धत्वात् ॥ कस्त्विमिति ॥ अङ्गदं प्रति कस्यचिद्राक्षसस्य प्रश्नः । रामरूपस्य राज्ञो भवने छेखार्थस्य संदेशस्य वाहकोऽस्मीत्युत्तरम् । पुरा पूर्वमागतो निर्दग्ध-लङ्कापुरः स हनुमान् कुत्र यात इति पुनः पूर्वस्य प्रश्नः । वद इलावृत्तरार्ध-मङ्गदस्योत्तरम् । राक्षसस्य रावणस्य सूनुना वद्ध इति हेतोः कपिभिर्वानरैः सम्यक् ताडितस्तर्जितः स वनमृगो हनुमान् त्रीडया लज्जया आत्तः प्राप्तः पराभवो येन तादशः कुत्र यात इति न ज्ञायत इल्पन्वयः ॥ यदिति ॥ हे कुरज्ञ, ययसाद्धनिनां मुखं मुहुर्मुहुर्वारंवारं नेक्षसे न पश्यसि । मृषा मिथ्या चाहन् श्रियशब्दान वदसि । यदिति सर्वत्र संबध्यते । एषां धनिनां गर्वयुक्तवचन न श्रुणोषि । तान्धनिकानप्रति आशया धनाशया न धावसि । परं केवलं काले

१ 'संताडितस्तजिंतः'.

### व्याजस्तुत्यलंकारः ३०] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

९३

धन्याः खलु वने वाताः काह्वाराः सुखशीतलाः । राममिन्दीवरश्यामं ये स्पृशन्यनिवारिताः ॥

अत्र वाता धन्या इत्यप्रस्तुतार्थाद्हमधन्य इति वैधम्येण प्रस्तुतोऽर्थः प्रतीयत इति ब्युत्पादितम् । इयमेवाप्रस्तुतप्रशंसा न कार्यकारणनिवन्धनेति दण्डी । यदाह—

'अप्रस्तुतप्रशंसा स्याद्प्रकाण्डे तु या स्तुतिः। सुखं जीवन्ति हरिणा वनेष्वपरसेविनः॥ अर्थेरयत्नसुरुभैर्जेलदर्भाङ्करादिभिः। सेयमप्रस्तुतेवात्र सृगवृत्तिः प्रशस्यते॥ राजानुवर्तनक्केशनिर्विण्णेन सनस्विना।' इति।

वस्तुतस्त्वत्र व्याजस्तुतिरित्येव युक्तं, स्तुत्या निन्दाभिव्यक्तिरित्यप्रस्तुतप्रशंसातो वैचित्र्यविशेषसद्भावात् । अन्यथा प्रसिद्धव्याजस्तुत्युदाहरणेष्वप्यप्रस्तुताभ्यां निन्दास्तुतिभ्यां प्रस्तुते स्तुतिनिन्दे गम्येते इत्येतावता व्याजस्तुतिमात्रमप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् । एवंचानया प्रक्रियया यत्रान्यगतस्तुतिविवक्षयान्यस्तुतिः क्रियते तन्नापि व्याजस्तुतिरेव । अन्यस्तुतिव्याजेन तदन्यस्तुतिरित्यर्थानुगमसद्भावात् । यथा—

शिखरिणि क नु नाम कियचिरं किमभिधानमसावकरोत्तपः। तरुणि येन तवाधरपाटलं दशति विम्बफ्लं शुकशावकः॥ अत्र शुकशावकस्तुत्या नायिकाधरसौभाग्यातिशयस्तुतिव्यंज्यते॥ ७०॥

क्षुधासमये खादिस भक्षयिस । निद्राया आगमे च निद्रां प्राप्नोषि । तत्तस्मात्कृत्र तीर्थे किं नाम तपस्तप्तं तह्हीत्यन्वयः ॥ निर्वण्णस्य खित्रस्य । तेन हीत्यस्य इति न्युत्पादितिमित्यप्रेतनेनान्वयः ॥ धन्या इति ॥ कहारं जलपुष्पविशेषः तत्संवन्धिनः काहाराः मुखयन्तीति मुखाश्च ते शीतलाश्चेत्यर्थः ॥ अप्रस्तुतेति ॥ अप्रकाण्डे अप्रस्तावे । तथा चाप्रस्तुता चासा प्रशंसा चेति न्युत्पत्तिरिति भावः । न परसेविनोऽपरसेविनः । प्रशस्यते स्तूयते । मतद्वयेऽप्यस्तरसवीजं दर्शयित— वस्तुतिस्त्विति ॥ अभिन्यक्तिरिति ॥ योऽप्रस्तुतप्रशंसातो वैचित्र्यस्य विषय आलम्बनभूतो विशेष इत्यन्वयः । अन्यथा ततो वैचित्र्येऽपि तदन्त-र्मावाङ्गीकारे ॥ पवंचेति ॥ अन्यगतस्तुतिनिन्दाभ्यामन्यगतिनन्दास्तुत्यभिन्यक्तयोव्यांजस्तुतित्वसिद्धौ चेत्वर्थः । प्रिक्षयया प्रकारेण ॥ शिखरिणीति ॥ नायिकां प्रति नायकस्योक्तिः । हे तक्षणि, असौ ग्रुकबालकः । नाम वितर्के । कनु कस्मिन्शिखरिणि पर्वते कियत्कालं चिरं किमभिधानं किंनामकं तपः अकरोग्चेन हेतुना तवाधरवत्पाटलं रक्तवर्णं विम्वफलं दशतीत्यन्वयः ॥ ७० ॥ इति व्याजस्तुतिप्रकरणम् ॥ ३० ॥ व्याजनिन्दालंकारः ३१ निन्दाया निन्द्या व्यक्तिव्याजनिन्देति गीयते । विधे स निन्दो यस्ते प्रागेकमेवाहरच्छिरः ॥ ७१ ॥

अत्र हरनिन्दया विषमविषाकं संसारं प्रवर्तयतो विधेरभिन्यङ्गया निन्दा व्याजनिन्दा । यथावा—

विधिरेव विशेषगईणीयः करट त्वं रट कस्तवापराधः। सहकारतरौ चकार यस्ते सहवासं सरछेन कोकिछेन॥

अन्यस्तुत्यान्यस्तुत्यभिव्यक्तिरिति पञ्चमप्रकारव्याजस्तुतिप्रतिवन्दीभूतेयं व्याजिनन्दा। ननु यत्रान्यस्तुत्यान्यस्तुत्रेरन्यिनन्द्यान्यिनन्द्याश्च प्रतीतिस्तत्र व्याजस्तुतिव्याजिनन्दालंकारयोरभ्युपगमे स्तुतिनिन्दारूपा प्रस्तुतप्रशंसोदान्द्ररणेष्वप्रस्तुतप्रशंसा न वक्तव्या। तेपामिष व्याजस्तुतिव्याजिनन्दाभ्यां कोडीकारसंभवादिति चेदुच्यते। यत्राप्रस्तुतवृत्तान्ताःस्तुतिनिन्दारूपात्तःस् रूपः प्रस्तुतवृत्तान्तः प्रतीयते अन्तिश्चिद्राणि भूयांसीत्यादौ, तत्र लव्धाव-काशा सारूप्यनिवन्धनाप्रस्तुतप्रशंसा अत्रापि वर्तमाना न निवारियत्तुं शक्या। अन्यस्तुत्याऽन्यस्तुतिप्रशंसा अत्रापि वर्तमाना न निवारियत्तुं शक्या। अन्यस्तुत्याऽन्यस्तुतिरन्यिनन्द्याऽन्यनिन्देत्येवं व्याजस्तुतिव्याजनिन्दे अपि संभवतश्चेत्कामं ते अपि संभवेताम्। न त्वस्याः परित्यागः। यव्यपि विधिरेव विशेषगर्हणीय इति स्लोके विधिनिन्दया तन्मूलकाकिनन्दया चाविशेषज्ञस्य प्रभोस्तेन च विद्वत्यमत्या स्थापितस्य मूर्खस्य च निन्दा प्रनित्ताय इति तत्र सारूप्यनिवन्धनाप्रस्तुतप्रशंसाप्यस्ति। तथापि सेव व्याजनिन्दामूलेति प्रथमोपस्थिता सापि तत्र दुर्वारा। एवं व्याजनिन्दामूलकव्यानिन्दामूलेति प्रथमोपस्थिता सापि तत्र दुर्वारा। एवं व्याजनिन्दामूलकव्यान

व्याजनिन्दां लक्ष्यिति—निन्दाया इति ॥ यत्रान्यनिन्द्यान्यस्य निन्दाया अभिव्यक्तिः पर्यवस्यति सा व्याजनिन्दा, इतरनिन्दाव्याजेन निन्देति व्युत्पत्तेः ॥ विधे इति ॥ हे विधे ब्रह्मन्, प्राक् पूर्वं ते तवैकमेव शिरो यः अहरत् अच्छिनत् स एवार्थात् हरो निन्द्य इस्यन्वयः । निन्द्येस्यभिव्यङ्गयेस्यनेनान्वितं निन्द्याभिव्यङ्गयया विधेनिन्दा व्याजनिन्देस्यन्वयः । विषमविपाकं दारुणपरिणामम् ॥ विधिरेवेति ॥ विशेषतो गईणीयः निन्दनीयः । हे करट काक, त्वं रट रटनं कुरु । योऽसौ विधिः आम्रवृक्षे सरलेन सौम्येन कोकिलेन सहवासं तव चकारेस्यन्वयः । नतु केनाप्यालंकारिकेणानुक्ताया व्याजनिन्दायाः कथमलंकारत्वेनाङ्गीकरणमिस्याशङ्क्ष्याह—प्रतिवन्दीति ॥ तुल्ययुक्तया प्रतिवन्दीस्थानीयेव्यां । तथाच स्तुतिविन्नन्दायामप्यप्रस्तुतप्रशंसातो वैचित्र्यविशेषात्तद्वान्तर्भावेव्याजस्तुतौ चार्थानुगमाभावादनन्तर्भावे पृथगलंकारताया औचिस्यापातत्वात्प्राचीनरनुक्तापि स्वीकर्तुमुचितेस्याशयः । प्रागुक्तयोरेकः कृती शकुन्तेष्विस्यावद्व-कृत्रिमेस्यनयोरप्रस्तुतप्रशंसोदाहरणत्वासंगतिमाशङ्कते—निवति ॥ कोडीकारः स्वविषयीकरणम् । अन्यत्र लब्धात्मकस्यालंकारद्वयस्य कचित्रसंकरेऽपि न दोष इस्याशयेन समाधत्ते—यत्रेति॥ एतच इस्यादाविस्यनेनान्वतम् । अस्या अप्रस्तु-इस्याशयेन समाधत्ते—यत्रेति॥ एतच इस्यादाविस्यनेनान्वतम् । अस्या अप्रस्तु-

जनिन्दारूपेयमप्रस्तुतप्रशंसेति चमत्कारातिशयः। एवमेव व्याजस्तुतिमृळक-व्याजस्तुतिरूपाप्यप्रस्तुतप्रशंसा दृश्यते । यथावा—

> लावण्यद्रविणव्ययो न गणितः होशो महानर्जितः स्वच्छन्दं चरतो जनस्य हृदये चिन्ताज्वरो निर्मितः। एपापि स्वगुणानुरूपरमणाभावाद्वराकी हता कोऽर्थश्चेतसि संहतोऽत्र विधिना तन्वीमिमां तन्वता॥

अत्राप्रस्तुतायास्तर्ण्याः सृष्टिनिन्दाब्याजेन तन्निन्दाब्याजेन च तत्सीन्द्र्यं-प्रशंसाप्रशंसनीयरवेन कविविवक्षितायाः स्वकवितायाः सृष्टिनिन्दाब्याजेन तन्नि-न्दाब्याजेन च शब्दार्थचमत्कारातिशयप्रशंसायां पर्यवस्यति। अस्य स्ठोकस्य वा-च्यार्थविषये यद्यपि नात्यन्तसाम अस्यं, नहीमे विकल्पा वीतरागस्येति कल्पयितुं शक्यम्। रसाननुगुणत्वाद्वीतरागहृद्यस्याप्येवंविधविषयेष्वप्रवृत्तेश्च । नापि रागिण इति युज्यते। तदीयविकल्पेषु वराकीति कृपणतालिङ्गितस्य हतेत्यमङ्ग-लोपहितस्य च वचसोऽनुचित्रवानुल्यरमणाभावादित्यस्यात्यन्तमनुचित्रवाच स्वात्मनि तद्नुरूपतासंभावनायामपि रागित्वे हि पशुप्रायता स्यात् । तथापि विवक्षितप्रस्तुतार्थतायां न किंचिद्साम अस्यम् । अत्रप्वास्य श्लोकस्याप्रस्तु-तप्रशंसापरत्वमुक्तं प्राचीनैः। वाच्यासंभवेऽप्यप्रस्तुतप्रशंसोपपत्तेरिति ॥७१॥

तप्रशंसायाः । सैव अप्रसुतप्रशंसैव ॥ छावण्येति ॥ इमां तन्वीं तन्वता सुजता वेधसा चेतिस कोऽर्थः कामनाविषयभूतो विनिहितोऽभिसंहितः । किं प्रयोजन-सुद्दिश्येयं निर्मितेत्वर्थः । नन्वनायासेनातिसुन्दरतन्वीनिष्पत्तिरेव प्रयोजनं तद-आवेऽपि वा लीलामात्रेण तित्रमीणं स्यादत आह—लावण्येत्यादि ॥ यतो लावण्यरूपस्य द्रविणस्य धनस्य व्ययो न गणितः । महान्क्रेशोऽर्जितः कृतः स्वे-च्छाचारिणो जनस्य उदासीनस्यापि हृदये चिन्तैव ज्वरो निर्मितः । एषापि वराकी दीना खगुणानुरूपस्य वरस्याभावाद्धतेव हता नष्टप्राया । तथाच वहा-याससाध्यत्वादिनिष्टानुबन्धित्वाच न तन्व्याः प्रयोजनत्वं नापि लीलामात्रेण त-त्रिर्माणं च संभवतीति भावः । तन्त्रिन्दाव्याजेन तरुणीनिन्दाव्याजेन । तत्सान्द-र्यप्रशंसाशब्दार्थचमत्कारातिशयप्रशंसायां पर्यवस्यतीत्यन्वयः । तन्निन्दाव्याजेन स्वकवितानिन्दाव्याजेन । कविता सौन्दर्यरूपा । प्रस्तुतार्थस्यात्यन्तमस्फटत्वात्क-थमस्य पद्यस्य तत्परत्वमित्याशङ्कामपनेतुं भूमिकामारचयति—अस्येत्यादि ॥ रसाननुगुणत्वादिति ॥ वीतरागे शृङ्गारस्यासंभवादिति भावः । ननु शृङ्गा-रासंभवेऽपि तन्वीनिर्माणनिन्दया शान्तरसपरिपोषादस्येव रसानुगुणत्वमत आह—वीतरागेति ॥ नापि रागिण इत्यनन्तरमिमे विकल्पा इत्यनुषज्यते ॥ विवक्षितेति ॥ सकवितासौन्दर्यरूपेखर्थः । अतएव वाच्यार्थासामञ्जसादेव वाच्यासंभवेऽपि वाच्यसामञ्जस्यासंभवेऽपि । तथाच वाच्यार्थासामञ्जस्यमेवा-

१ 'वेधसा विनिहितस्तन्वी'.

### आक्षेपालंकारः ३२

आक्षेपः खयमुक्तस्य प्रतिपेधो विचारणात् । चन्द्र संदर्शयात्मानमथवास्ति प्रियामुखम् ॥ ७२ ॥

अत्र प्रार्थितस्य चन्द्रदर्शनस्य प्रियामुखसत्त्वेनानर्थक्यं विचार्याथवेत्यादि-सूचितः प्रतिपेध आक्षेपः । यथावा—

साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः । यत्तस्य देत्या इव लुण्डनाय काव्यार्थचोराः प्रगुणीभवन्ति ॥ गृह्णन्तु सर्वे यदि वा यथेच्छं नास्ति क्षतिः कापि कवीश्वराणाम् । रत्नेषु लुप्तेषु बहुष्वमत्येरचापि रत्नाकर एव सिन्धुः ॥

अत्र प्रथमश्लोकेन प्राधितस्य काव्यार्थचोरेभ्यो रक्षणस्य स्वोल्लिखितवैचि-व्याणां समुद्रगतरत्नजालवदक्षयत्वं विचिन्त्य प्रतिषेध आक्षेपः ॥ ७२ ॥

# निपेधाभासमाक्षेपं बुधाः केचन मन्वते ।

नाहं द्ती तनोस्तापस्तस्याः कालानलोपमः ॥ ७३ ॥ केचिद्दलंकारसर्वस्वकारादय इत्थमादुः । न निषेधमात्रमाक्षेपः किंतु यो निषेधो वाधितः सन्नर्थान्तरपर्यवसितः किंचिद्विशेषमाक्षिपति स आक्षेपः । यथा दूत्या उक्तौ नाहं दूतीति निषेधो वाधितत्वादामासरूपः संघटनकालो-चितकैतववचनपरिहारेण यथार्थवादित्वे पर्यवस्वन्नदानीमेवागत्य नायिको-

स्फुटेऽप्यप्रस्तुतार्थे तात्पर्ये गमयतीति भावः ॥ ७१ ॥ इति व्याजिनन्दाप्रक-रणम् ॥ ३१ ॥

आक्षेप इति ॥ स्वयमुक्तसार्थस्य किंचित्रिमित्तमिसंघाय प्रतिषेध् आक्षेपः ॥ स्चितेति ॥ पक्षान्तरपिप्रहस्य पूर्वपक्षप्रतिक्षेपनियतत्वादिति भावः । नचात्र कैमर्थ्यरूपपञ्चमप्रतीपप्रभेदेन गतार्थत्वं शङ्कनीयम् । तस्यात्र प्रतिषेधप्रतिनिमित्तत्वेनाप्राधान्यात् । असंदिग्धमुदाहरति—साहित्येति ॥ हे कविश्रेष्ठाः, साहित्यसमुद्ररूपाणां भारतादीनां मन्थनादिव परिशीलनादुत्थित-मुत्पन्नं कर्णयोरमृतमिवाहादकं काव्यं रक्षत । यद्यस्मात्तस्य छण्ठनार्थं देखा इव काव्यरूपस्यार्थस्य वित्तस्य चोराः प्रगुणीभवन्ति वहुलीभवन्तीत्यन्वयः ॥ गृह्व-ित्विति ॥ यदि वेत्यथवेत्यनेन समानार्थं । छप्तेषु अपहृतेषु ॥ स्वोह्निस्वितेति ॥ स्वयमुद्धावितेत्यर्थः । वैचित्र्याणाम् थैवैचित्र्याणाम् ॥ ०२ ॥ अर्थान्तरपर्यवसितः अर्थान्तरप्रतियोगिकत्वेनावस्थितः । विशेषं व्यङ्ग्यार्थविशेषम् ॥ संघटनेति ॥ संयोजनकाले उचितं यत्कैतववचनं मिथ्यावचनं तस्य परिहारस्तेनोपलक्षिते यथार्थवादित्वे इत्यर्थः । नाहं दूतीत्यत्र हि दूतीपदेन दूतीगतिमथ्यावादित्वविशिष्टं लक्ष्यते । तदभावस्तु यद्यपि न यथार्थवादित्वं तथापि तदुपलक्ष्यत्वात्तत्पर्यवन्तः

जीवनीयेति विशेषसाक्षिपति । यथावा-

१ 'चन्द्रं संद'. २ 'नायं दूती'.

नरेन्द्रमौले न वयं राजसंदेशहारिणः । जगत्कुटुम्बिनस्तेऽद्य न शत्रः कश्चिदीक्ष्यते ॥

अत्र संदेशहारिणामुक्तौ न वयं संदेशहारिण इति निषेधोऽनुपपन्नः सं-धिकालोचितकैतववचनपरिहारेण हार्थवादित्वे पर्यवस्यन्सर्वजगतीपालकस्य तव न कश्चिदपि शत्रुभावेनावलोकनीयः किंतु सर्वेऽपि राजानो सृत्यभावेन संरक्षणीया इति विशेषमाक्षिपति ॥ ७३ ॥

> आक्षेपोऽन्यो विधो व्यक्ते निषेधे च तिरोहिते। गच्छ गच्छिस चेत्कान्त तत्रैव साज्जनिर्मम॥ ७४॥

अत्र गच्छेति विधिर्व्यक्तः । मा गा इति निपेधस्तिरोहितः कान्तोद्देश्य-देशे निजजनमप्रार्थनयात्ममरणसंसूचनेन गर्भीकृतः । यथावा---

न चिरं मम तापाय तव यात्रा भविष्यति । यदि यास्यसि यातव्यमलमाशङ्कयापि ते ॥ अत्रापि न चिरं मम तापायेति स्वमरणसंसूचनेन गमननिपेधो गर्भी-कृतः॥ ७४॥

सानोक्तिः ॥ नरेन्द्रेति ॥ संधिकरणार्थमागतानां द्तानामुक्तिः । नरेन्द्राणां राज्ञां मौलिः श्रेष्टः ॥ संधीति ॥ संधिकाले उचितं यत्कैतववचनं तत्परिहारे-णोपलक्षिते इति पूर्ववद्रथः । अत्राहुः — संदेशहारिषु तन्निषेधस्य वाधात संदेशहारिपदेन कैतववचनप्रयोक्तत्वविशिष्टं ठक्ष्यते । तत्रिपेधेन च सत्यवादि-त्वरूपो विशेषो व्यज्यत इल्यमेव निषेधेन विशेषाक्षेपो नतु सर्वजगतीपाल-कस्येत्यादिविंशेषो निषेधेन केवलेनाक्षेष्ठं शक्यते । तस्य जगत्कुटुम्बिन इत्युत्त-रार्धगम्यत्वात् । एवं स्थिते कथमुच्यते तव न कश्चिदपीत्यादीति । तत्रोच्यते । न वयमिति निषेधाभावे केवलादुत्तरार्धात्रोक्तविशेषावगतिः स्यात् । संधिकालो-चितकैतववचनत्वेनैव संभाव्यमानत्वात् । अपितु तत्कालीनसंध्यभिप्रायमात्रा-वगमः । निषेधेन तु तत्परिहारे युक्त उक्तविशेषावगम इत्यन्भवसाक्षिकमेतत् । सत्यवादित्वादिकं तूक्तविशेषे व्यञ्जनीये द्वारभूतं नतु तदेव विशेषरूपमचम-त्कारित्वात् । अतएव नाहं द्तीत्यत्र वस्तुवादित्वादिविंशेषो व्यज्यत इत्यलंका-रसर्वस्वकारः । वस्तुवादित्वमादिर्द्वारभूतं यस्य तादशो विशेष इति तदर्थ इति । एतेन नाहं दूतीति पूर्वोदाहरणमपि व्याख्यातम् ॥ ७३ ॥ अस्येव प्रभेदान्तर-माह-आक्षेपोऽन्य इति ॥ प्रार्थनया मरणसूचनद्वारेण गर्भितो व्यक्नयत्वे-नान्तर्भावितः । एतच तिरोहित इल्यस्यार्थकथनं तदेवमपह्नतिभिन्नत्वे सित चमत्कारकारिनिषेधत्वं सामान्यलक्षणं वोध्यम् ॥ ७४ ॥ इत्याक्षेपालंकारप्रक-रणम् ॥ ३२ ॥

१ 'न्यविधा व्यक्ते प्रतिवेधतिरोहिते'.

#### विरोधाभासालंकारः ३३

आभांसत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते । विनापि तन्वि हारेण वक्षोजौ तव हारिणौ ॥ ७५ ॥

अत्र हाररहिताविप हारिणो हृद्याविति श्लेषमूळको विरोधाभासः।यथावा— प्रतीपभूपैरिव किं ततो भिया विरुद्धधर्मेरिप भेनृतोज्झिता । अभित्रजिन्मित्रजिदोजसा स यद्विचारदृक्चारदृगण्यवर्तत ॥ अत्र विरोधसमाधानोत्प्रेक्षाशिरस्को विरोधाभास दृति पूर्वसाद्भेदः ॥ ७५ ॥

# विभावनालंकारः ३४ विभावना विनापि स्थात्कारणं कार्यजन्म चेत्। अप्येलाक्षारसासिक्तं रक्तं तचरणद्वयम्॥ ७६॥

आभासत्व इति ॥ विरोधस्याभासत्वे आपाततो भासमानत्वे सति विरो-धाभासो नामालंकारः । आभासत इत्याभासः । विरोधश्वासावाभासश्चेति व्यु-त्पत्तेः ईषदर्थकेन चाङा भानस्यापातरूपत्वमर्थान्तरपरिहार्यत्वरूपं बोध्यते । तथा चैकाधिकरण्येन प्रतीयमानयोः कार्यकारणत्वेनागृह्यमाणयोधमयोराभासमानाप-र्यवसन्नविरोधत्वं लक्षणं द्रष्टव्यम् । शनिरशनिश्च तमुचैरित्यादावतिव्याप्तिवारणा-यादां विशेषणम् । 'अप्यलाक्षारसासिक्तं रक्तं तचरणद्वयम्' इति विभावनावा-रणाय द्वितीयम् । पर्यवसितस्य विरोधस्य दोषत्वादपर्यवसन्नत्वं विरोधविशेषण-मिति दिक् ॥ ऋषेति ॥ हारोऽनयोरस्तीखर्थे विरोधः । मनोहारिणाविखर्थेन तत्परिहारः ॥ प्रतीपेति ॥ तस्मान्नलाद्भयेन कृत्वा प्रतिकूलनृपैरिव विरुद्धधर्में-रिप भेतृता भेदकारिता खक्ता किमित्युत्प्रेक्षा । यस्मात्स नलः अमित्राणां श-त्रणां जयकृद्पि ओजसा मित्रस्य रवेर्जयकृत्। अथच मित्रजिदेव न मित्रजिदिति विरोध:। चारदृष्टिरिप विचारे दृष्टिर्यस्य तादृशः विगतचारदृगिति च विरोध:॥ विरोधिति ॥ विरोधसमाधानरूपोत्प्रेक्षा शिरः प्रधानं यस्य तादश इत्यर्थः । यत्त विरोधसमाधानात्मिकया मुखस्थितयोत्प्रेक्षया विरोधस्योत्थानमेव भन्नमिति कथमत्र विरोधालंकार इति केनचित्सुमनसापि विमनसेवाभिहितं तदसारम्। विरोधभानमन्तरेण विरुद्धधर्मेरपीत्यायुत्प्रेक्षाया एवानुत्थानेन श्लेषमूलमाभास-मानं विरोधमुपजीव्यैव विरोधलागोत्प्रेक्षाया अर्थान्तरानुगृहीतायास्तत्समाधान-त्वेन पश्चादवस्थितत्वादिति ॥ ७५ ॥ इति विरोधाभासप्रकरणम् ॥ ३३ ॥

विभावनेति ॥ प्रसिद्धे कारणाभावेऽपि कार्योत्पत्तिर्विभावनालंकारः । विभाव्यते कारणान्तरं यस्यामिति व्युत्पत्तेः । कारणाभावश्च शाब्द आर्थो वेति सर्वत्र लक्षणसमन्वयो वोध्यः । एतदेव तन्त्रेण सकलविभावनाप्रकारसाधारणं सामान्य-

१ 'अभासत्वं'. २ 'अपि लाक्षा'.

अत्र लाक्षारसासेकरूपकारणाभावेऽपि रक्तिमा कथितः । स्वाभाविकत्वेन विरोधपरिहारः । यथावा—

अपीतक्षीवकादम्बमसंमृष्टामलाम्बरम् । अप्रसादितसूक्ष्माम्ब जगदासीन्मनोरमम् ॥ अत्र पानादिप्रसिद्धहेत्वभावेऽपि क्षीवत्वादिनिबद्धम् । विभाव्यमानशर-त्समयहेतुकत्वेन विरोधपरिहारः । यथावा—

वरतनुकवरीविधायिना सुरभिनस्नेन नरेन्द्रपाणिना । अवचितकुसुमापि वछरी समजनि वृन्तनिलीनपट्रपदा ॥

अत्र वह्नयां पुष्पाभावेऽपि भृङ्गालिङ्गनं निवदं तत्र वरतनुकवरीसंक्रान्त-सौरभनरपतिनखसंसर्गरूपं हेत्वन्तरं विशेषणमुखेन दर्शितमिति विरोध-परिहारः॥ ७६॥

> हेतूनामसमग्रत्वे कार्योत्पत्तिश्च सा मता। अस्त्रेरतीक्ष्णकठिनैर्जगज्जयति मन्मथः॥ ७७॥

अत्र जगज्जये साध्ये हेत्नामस्त्राणामसमग्रद्यतीक्ष्णस्वादिगुणवैकल्यम् । यथावा—

> उद्यानमारुतोङ्ताश्चृतचम्पकरेणवः । उद्स्वयन्ति पान्थानामस्प्रशन्तो विलोचने ॥

लक्षणमाद्यप्रकारविशेषलक्षणं च वोध्यम् । तत्राद्यं दर्शितमेव । द्वितीयं तु कार-णान्विताभावकथनपूर्वकं कार्योत्पत्तिकथनमित्युदाहरणविशेषवलादेव गम्यत इति विविच्य न दर्शितम्। प्रतिवन्धके सति कार्योत्पत्तिरूपे तृतीयप्रकारेऽतिव्याप्तेर्वा-रणायान्वितेति । तत्र प्रतिवन्धकस्य वस्तुतः कारणाभावरूपस्य कथनेऽपि न कार-णान्वितत्वेन कथनमिति तन्निरासः । प्रकारपञ्चकेऽपि कारणान्विताभावस्यार्थतो गम्यत्वात्कथनेति ॥ अप्यलाक्षेति ॥ लाक्षारसेन आसमन्तात्सिक्तं लाक्षारसा-सिक्तम् । पश्चात्रज्समासः । तस्याः कामिन्याः ॥ अपीतेति ॥ आपीताः पान-शून्याः क्षीवा मत्ताः कादम्वाः कलहंसा यत्र तथा असंमृष्टं संमार्जनशून्यममल-मम्बरमाकाशं यत्र एवमप्रसादितं वस्त्रगालनकतकक्षोदप्रक्षेपादिना यत्प्रसादनं तच्छन्यं सूक्ष्मं लघ्वम्ब यत्र एवंभूतं जगन्मनोहरमासीदिखन्वयः । परमार्थ-तस्तु शुद्धाम्ब्वत्येव काव्यादर्शे दृष्टः पाठः ॥ विभाव्यमानेति ॥ वर्ण्यमाने-त्यर्थः ॥ वरेति ॥ वरतनोः केशपाशरचनासंपादकेनात एव सुर्भानखेन राज्ञो हस्तेनावचितकुसुमा छ्नपुष्पापि लता वृन्तासक्तभ्रमरा संजातेत्यर्थः ॥ ७६ ॥ हेत्नामिति ॥ असमग्रत्वे हेतुतावच्छेदकस्य धर्मस्य तत्संबन्धस्य वा वैकल्ये सति । अस्रिरिति धर्मवैकल्योदाहरणम् । संवन्धवैकल्ये उदाहरति — उद्यानिति ॥ विछोचने कर्मभूते । उदस्रयन्ति । उद्गताश्रृणि कुर्वन्तीलर्थः ॥ क्रियेति धात्वर्थत्वाभिप्रायं स्पर्शनस्य संयोगरूपत्वात् । इमां द्वितीयप्रकाररूपां विभावनाम्॥

अत्र बाष्पोद्गमनहेत्नामसमयत्वं स्पर्शनिकयावैकल्यम् । इमां विशेषो-किरिति दण्डी व्याजहार । यतस्तत्र प्रथमोदाहरणे मन्मथस्य महिमातिश-यरूपो द्वितीयोदाहरणे चम्पकरेण्नामुद्दीपकतातिशयरूपश्च विशेषः ख्या-प्यत इति । असाभिस्तु तीक्ष्णत्वादिवैकल्यमपि कारणविशेषाभावरूपमिति विभावना प्रदर्शिता ॥ ७७ ॥

> कार्योत्पत्तिस्तृतीया स्थात्सैत्यपि प्रतिवन्धके । नरेन्द्रानेव ते राजन्दशत्यसिभ्रजङ्गमः ॥ ७८ ॥

अत्र नरेन्द्रा विपवैद्याः सर्पदंशप्रतिबन्धकमन्त्रौषधिशालिनः श्लेषेण गृ-हीता इति सत्येव प्रतिबन्धके कार्योत्पत्तिः ॥ यथावा—

चित्रं तपित राजेन्द्र प्रतापतपनस्तव । अनातपत्रमुःस्ड्यं सातपत्रं द्विपद्गणम् ॥ ७८ ॥ अकारणात्कार्यजन्म चतुर्थी स्याद्विभावना । शङ्खाद्वीणानिनादोऽयमुदेति महदद्भुतम् ॥ ७९ ॥

अत्र शङ्खशब्देन कमनीयः कामिनीकण्ठस्तन्नीनिनाद्त्वेन तद्गीतं चाध्य-वसीयत इत्यकारणात्कार्यजन्म । यथावा---

तिलपुष्पात्समायाति वायुश्चन्दनसौरभः ।
इन्दीवरयुगाचित्रं निःसरन्ति शिलीमुखाः ॥ ७९ ॥
विरुद्धात्कार्यसंपत्तिर्दृष्टा काचिद्धिभावना ।
शीतांशुकिरणास्तन्वीं हन्त संतापयन्ति ताम् ॥ ८० ॥
अत्र तापनिवर्तकतया तापविरुद्धैरिन्दुकिरणेस्तापजनिरुक्ता । यथावा—
उदिते कुमारसूर्ये कुवलयमुझसति भाति नक्षत्रम् ।

व्याजहारिति॥ 'गुणजातिकियादीनां यत्र वैकल्यदर्शनम् । विशेष्यदर्शनायैव सा विशेषोक्तिरिष्यते ॥' इति प्रन्थेन व्यवहृतवानित्यर्थः । एतेन प्रथमप्रकाराद्वितीयप्रकारस्य वैलक्षण्यं दुरुपपादमिति वदन्नपास्तः । वैलक्षण्याभावे हि प्राचामलंकारान्तरत्वेन कथनमत्यन्तानुपपन्नमेव स्यात् । अस्ति च स्वरूपतः कारणाभावकथनात्कारणगतधर्मवैकल्यद्वारेण तद्विशिष्टकारणाभावकथने सहृदयसिद्धो
विच्छित्तिविशेषः । प्रकारान्तरास्त्रीकारे लाघवमिति तु स्त्रीयलाघवोद्घावनमिति
कृतमिथिकेन ॥ ७७ ॥ कार्योत्पित्ति ॥ प्रतिवन्धके सत्यपि कार्योत्पित्तकथनं तृतीया विभावना ॥ नरेन्द्रानिति ॥ 'नरेन्द्रो वार्तिके राज्ञि विषवैद्येऽपि कथ्यते' इति विश्वः । असिः सङ्ग एव भुजंगमः ॥ चित्रमिति ॥ प्रताप
एव तपनः सूर्यः । आतपत्रं छत्रं तद्रहितमनातपत्रम् । आतपत्रेण सहितं सातपत्रम् ॥ ७८ ॥ अकारणादित्यस्य सुगमत्वान्न व्याख्यानम् ॥ ७८ ॥ उदित

१ 'सत्यतिप्रति'. २ 'तन्वि इन्त'. ३ 'माम्'.

विशेषोत्तयलंकारः ३५] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

203

सुकुलीभवन्ति चित्रं परराजकुमारपाणिपद्मानि ॥ यथावा—

> अविवेकि कुचद्दन्द्वं हन्तु नाम जगत्रयम् । श्रुतिप्रणयिनोरङ्णोरयुक्तं जनमारणम् ॥

पूर्वोदाहरणयोः कारणस्य कार्यविरोधित्वं स्वाभाविकम् । इहतु श्रुतिप्रण-थित्वरूपागन्तुकगुणप्रयुक्तमिति भेदः ॥

> कार्यात्कारणजन्मापि दृष्टा काचिद्विभावना । यद्यः पयोराशिरभूत्करकल्पतरोस्तव ॥ ८१ ॥

यथावा--

जाता छता हि शैछे जातु छतायां न जायते शैछः। संप्रति तद्विपरीतं कनकछतायां गिरिद्वयं जातम्॥ ८१॥

विशेषोत्त्यलंकारः ३५ कार्याजनिर्विशेषोक्तिः सति पुष्कलकारणे । हृदि स्नेहक्षयो नाभृत्सारदीपे ज्वलत्यपि ॥ ८२ ॥

यथावा-

अनुरागवती संध्या दिवसस्तत्पुरःसरः । अहो दैवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः ॥ ८२ ॥

इति ॥ कस्यचिद्राजकुमारस्य प्रतापवर्णनम् । कुमाररूपे सूर्ये उदिते सित कोः पृथिव्या वलयं मण्डलमेव कुवलयं कुमुद्मुहासं प्राप्नोति । क्षत्रं क्षत्रियकुलं न भाति । अथच नक्षत्रं भातीति चित्रम् । तथा परेषां राजकुमाराणां पाणिक-मलानि मुकुलीभवन्ति संकुचन्ति । अञ्चलिवन्धात्तदाकृतीनि भवन्तीत्यर्थः ॥ अविवेकिति ॥ विवेको विशेषदर्शनं विश्लेषश्च तच्छून्यम् । परस्परं संश्लिष्ट-खात् । कुचयुगं कर्तृ । जगत्रयं हन्तु नाम । श्लुतिवेदः कर्णश्च । प्रणयः परिचयः ॥ ८० ॥ यश इति ॥ कर एव दानुत्वात्कल्पतरः । अत्र पयोधिजन्यात्कल्पतरोः कारणस्य पयोधिकत्याः पष्टी विभावना ॥ जातेति ॥ जातु कदाचित् कनकलतेव कनकलता कामिनी । गिरिद्वयमिव स्तनद्वयम् ॥ ८९ ॥ इति विभावनाप्रकरणम् ॥ ३४ ॥

विशेषोक्तिं लक्षयित—कार्याजनिरिति ॥ पुष्कले सहकारिसंपन्ने कारणे सित । प्रसिद्धकारणसमूहे सिताति यावत् । कार्यस्याजनिरनुत्पत्तिविशेषोक्तिः । विशेषस्यानुत्पत्तिनिमित्तस्योक्तिरवगतिर्यत्रेति व्युत्पत्तेः ॥ अनुरागेति ॥ अनु

१ 'कार्याचेत्कारणोत्पत्तिर्दृष्टा'. २ 'पयोधिरमवत्करः'.

कुवलयानन्दः। [ असंगत्यलंकारः ३७

१०२

असंभवाळंकारः ३६ असंभवोऽर्थनिष्पचेरसंभाव्यत्ववर्णनम् । को वेद गोपशिशुकः शैलमुत्पाटयेदिति ॥ ८३॥

यथावा--

अयं वारामेको निलय इति रत्नाकर इति श्रितोऽस्माभिस्तृष्णातरलितमनोभिर्जलनिधिः। क एवं जानीते निजकरपुटीकोटरगतं क्षणादेनं ताम्यत्तिमिमकरमापास्यति सुनिः॥ ८३॥

असंगत्यलंकारः ३७ विरुद्धं भिन्नदेशत्वं कार्यहेत्वोरसंगतिः । विषं जलधरैः पीतं मूर्ज्छिताः पथिकाङ्गनाः ॥ ८४ ॥

ययोः कार्यहेत्वोभिन्नदेशत्वं विरुद्धं तयोस्तन्निवध्यमानमसंगत्यलंकारः । यथात्र विषपानमूच्छेयोभिन्नदेशत्वम् ।

यथावा---

अहो खलभुजङ्गस्य विचित्रोऽयं वधकमः । अन्यस्य दशति श्रोत्रमन्यः प्राणिर्वियुज्यते ॥ क्वचिदसंगतिसमाधाननिबन्धनेन चारुतातिशयः । यथावा— अजस्रमारोहसि दूरदीर्घा संकल्पसोपानतितं तदीयाम् । श्वासान्स वर्षत्यधिकं पुनर्यद्धानात्तव त्वन्मयतामवाप्य ॥

रागो रिक्तमा रितश्च । पुरःसरोऽग्रवर्ता आज्ञाकरश्च । पूर्वोदाहरणेऽनुक्तिनिर्मिन त्ता इह दैवगतिवैचित्र्यस्य निर्मित्तस्योपादानादुक्तनिर्मित्तेति भेदः ॥ ८२ ॥ इति विशेषोक्तिप्रकरणम् ॥ ३५ ॥

असंभव इति ॥ कस्यचित्पदार्थस्य निष्पत्तेरसंभावनीयत्ववर्णनमसंभवो नामालंकारः । गोपशिशुको गोपावालकः । निन्दायां खार्थे वा कप्रत्ययः । उत्पाटयेदुद्धरेत् ॥ अयमिति ॥ वारां जलानां निलयः स्थानम् । तृष्णा पिपासा अर्थाभिलाषश्च । तरलितं चञ्चलीकृतम् । श्रित आश्रितः मुनिरगस्लः एनं समुद्रं झणादासमन्तात्पास्यति इदं को जानीत इत्यन्वयः । कीदशम् । निजकरपुटी करसंपुटमेव कोटरं विलं तद्गतं तथा ताम्यन्तो ग्लायन्तस्तिमयो मत्स्या मकराश्च यस्येवंभृतमित्यर्थः ॥ ८३ ॥ इत्यसंभवालंकारप्रकरणम् ॥ ३६ ॥

विरद्धमिति ॥ अदृष्टमिल्यर्थः । भिन्नदेशत्वं भिन्नाधिकरणत्वम् । विषं जलं हालाहलं च । संगतस्य भावः सांगलं तदभावोऽसांगल्यम् ॥ अजस्त्रमिति ॥

१ 'संभव्यत्व'. २ 'विरुद्धभिन्नदेशत्वं कार्यहेतोः'.

असंगत्यरंकारः ३७] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

103

विरुद्धमिति विशेषणाद्यत्र कार्यहेरवोभिन्नदेशस्वं न विरुद्धं तत्र नासं-गतिः । यथा--

> अचापवर्छी सुमुखी यावन्नयित वकताम् । तावत्कटाक्षविशिखेभियते हृदयं मम ॥ ८४ ॥ अन्यत्र करणीयस्य ततोऽन्यत्र कृतिश्व सा । अन्यत्कर्त्ते प्रवृत्तस्य तद्विरुद्धकृतिस्तथा ॥ ८५ ॥ अपारिजातां वसुधां चिकीर्पन्द्यां तथाकृथाः । गोत्रोद्धारप्रवृत्तोऽपि गोत्रोद्धेदं पुराऽकरोः ॥ ८६ ॥

अत्र कृष्णं प्रति शक्रस्य सोपालम्भवचने भुवि चिकीर्षिततया तत्र करणी-यमपारिजातत्वं दिवि कृतमित्येकासंगतिः । पुरा गोत्राया उद्धारे प्रवृत्तेन वराहरूपिणा तद्विरुद्धं गोत्राणां दलनं खुरकुट्टनैः कृतमिति द्विविधापि श्ले-योत्थापिता । यथावा—

> त्वत्त्वज्ञ खण्डितसपत्नविलासिनीनां भूपा भवन्त्यभिनवा भुवनैकवीर। नेत्रेषु कञ्कणमथोरुषु पत्रवल्ली चोलेन्द्रसिंह तिलकं करपल्लवेषु॥

दमयन्तीं प्रति हंसोक्तिः । हे दमयन्ति, त्वं तदीयां नलसंबन्धिनीं दूरमत्यन्तं दीर्घो संकल्पो मनोरथस्तद्रपसोपानपरम्परामजस्रं निरन्तरमारोहसि । स पुनर्न-लोऽधिकं श्वासान्वर्षति मुञ्जतीति यत्तव ध्यानात्त्वन्मयतां त्वत्खरूपतामवाप्ये-त्यन्वयः । अत्र चतुर्थपादेनासंगतिसमाधानम् ॥ **भूचापिति ॥** भूचापवर्ळी भूखरूपधनुर्लताम् । यावदिति परिमाणार्थम् । वक्रतां नयति । आकर्षतीति यावत् । तावत्परिमाणम् । हृदयं भिद्यत इत्यर्थः । अत्र हृदयभेदधनुराकर्षणयोः कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वमेव दृष्टमिति नासंगतिरलंकारः ॥ ८४ ॥ अन्यत्रेति॥ अन्यत्र कर्तव्यस्य वस्तुनस्ततोऽन्यस्मिन्नधिकरणे या कृतिः करणं तद्प्यसंगति-रिखनुषज्यते । तथा अन्यत्कार्ये कर्ते प्रवृत्तस्य तद्विरुद्धकार्यकरणं तृतीया असंगतिः । अपगतमारेजातं यस्यास्तां द्यां स्वर्गम् । तथा पारिजाततहरहि-तामकृथाः कृतवान् । एवं गोत्रायाः पृथिव्या उद्धाराय पुरा वराहावतारे प्रवृ-त्तोऽपि त्वं गोत्राणां पर्वतानामुद्भेदं दलनमकरोः कृतवानित्यर्थः । श्लेषोत्था-पिता श्लेपमूलकाभेदाध्यवसायोत्थापिता ॥ यथावा ॥ त्वत्खद्गेति ॥ हे भुवनैकवीर चोलदेशाधिप सिंहसदश, तव खड़ेन खण्डिता ये सपलाः शत्रव-स्तद्विलासिनीनामभिनवा अदृष्टपूर्वा भूषा भूषणानि भवन्ति । यथा नेत्रेषु कङ्कणं वलयं भवतीत्वनुषद्भः । अथेति समुचये । ऊरुषु च पत्रयुक्ता वही सैव पत्रि -

१ 'कृतिश्च यत्'. २ 'पुरोऽकरोत्'.

कुवलयानन्दः । [ असंगत्यलंकारः ३७

808

मोहं जगन्नयभुवामपनेतुमेत-दादाय रूपमिखलेश्वर देहभाजाम् । निःसीमकान्तिरसनीरधिनासुनैव मोहं प्रवर्धयसि सुग्धविलासिनीनाम्॥

अत्राद्योदाहरणे कङ्कणादीनामन्यत्र कर्तव्यत्वं प्रसिद्धमिति नोपन्यस्तम् । भवतिना भावनारूपा अन्यत्र कृतिराक्षिप्यत इति लक्षणानुगतिः ॥८५॥८६॥

कारचना । करपछवेषु तिलयुक्तं कं जलमेव ललाटभूषणमिति ॥ मोहमिति ॥ हे अखिलेश्वर, जगत्रयवर्तिनां देहधारिणां मोहमपनेतुमेतत् रूपं कृष्णशरीर-मादाय मर्यादातिकान्तकान्तिरूपरससमुद्रेणामुनैव रूपेण सुन्दरस्त्रीणां मोहं प्रवर्धयसीत्यन्वयः ॥ अत्रेति ॥ अनयोर्मध्य इत्यर्थः । आद्योदाहरणे इति लक्षणात्रगतिरित्यन्वयः । भवतिना भवत्यर्थेन । भवनेनेति यावत् । भावनारूपा भवनप्रयोजकव्यापाररूपा । यत्तु अन्यत्र करणीयस्येत्याद्यसंगतिप्रकारद्वयान्तर-कथनमयुक्तम् । अपारिजातामित्युदाहरणे पारिजातराहित्यचिकीर्षारूपकारणस्य कार्येण पारिजातराहित्येन वैयधिकरण्योपनिवन्धनेन प्राथमिकासंगतितो वेलक्ष-ण्यानुपपत्तेः । आलम्बनाख्यविषयतासंबन्धनचिकीर्षायाः सामानाधिकरण्येन कार्यमात्रं प्रति हेतुत्वात् । एवं नेत्रेषु कङ्कणमिलादौ कङ्कणत्वनेत्रालंकारत्वयो-विरुद्धयोः सामानाधिकरण्यवर्णनाद्विरोधाभासत्वमुचितम् । एवं गोत्रोद्धारप्रवृ-त्तोऽपीत्युदाहरणे विरुद्धात्कार्यसंपत्तिर्देष्टा काचिद्विभावनेत्युक्तविभावनाप्रकारेणैव गतार्थत्वादसंगतिभेदान्तरकल्पनानुचिता । मोहमित्यादाविप मोहनिर्वर्तकत्व-मोहजनकत्वयोर्विरुद्धयोरेकत्र वर्णनाद्विरोधाभास एवेति कैश्विदुक्तं तदसंगतम् । उक्तसंबन्धेन चिकीषीया हेतुत्वासिद्धेः । नहि यदधिकरणे कार्यचिकीषी तदधि-करणमन्तर्भाव्योक्तसंबन्धेन चिकीर्षायाः कार्यहेतुत्वं तान्त्रिकसंमतं युक्तं वा । अन्यत्र चिकीर्षितस्यापि प्रमादादिनान्यत्र करणेन व्यभिचारात् । अत एवैवंवि-धवैयधिकरण्यस्य विरुद्धत्वादपि न प्राथमिकासंगत्यन्तर्भावसंभवः । वस्तुतस्तु 'विषं जलधरै: पीतं मुर्च्छिताः पथिकाङ्गनाः' इत्यत्रेव नात्र कार्यकारणवैयधि-करण्यप्रयुक्तो विच्छित्तिविशेषोऽपि त्वन्यत्र कर्तव्यस्यान्यत्र करणप्रयुक्त एवेति सहृदयमेव प्रष्टव्यम् । एवं नेत्रेषु कङ्कणमित्यत्र सत्यपि विरोधाभासेऽन्यत्र चमत्कारित्वेन क्रुप्तालंकारभावान्यत्र करणरूपासंगतिरपि प्रतीयमाना न शक्या निराकर्तुम् । एवं गोत्रोद्धारप्रवृत्तोऽपीत्युदाहरणे गोत्रोद्धारविषयकप्रवृत्तेर्गोत्रो-द्भेदरूपकार्यविरुद्धत्वाद्विरुद्धा कार्यसंपत्तिरिप विभावनेत्यपि न युक्तम् । गोत्रो-द्धारप्रवृत्तेगीत्रोद्धेदनिवर्तकत्वाभावेन तद्विरुद्धत्वाभावात् । कथंचित्तदभ्यपगमे-Sप्यन्यत्कार्यं कर्तुं प्रवृत्तेन तद्विरुद्धकार्यान्तरकरणरूपासंगतिरिप मोहं जगत्रय-भुवामिलादौ चमत्कारित्वेन लब्धात्मिका न निवारियतुं शक्यते । नचा-त्रापि मोहनिवर्तकान्मोहोत्पत्तेः सैव विभावनेति वाच्यम् । मोहनिवर्तकस्य सिद्ध-

विषमालंकारः ३८] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

204

#### विषमालंकारः ३८

विषमं वर्ण्यते यत्र घटनाऽननुरूपयोः । केयं शिरीपमृद्वङ्गी क तावन्मद्नज्वरः ॥ ८७ ॥

अत्रापि मृदुःवेनातिदुःसहस्वेन चाननुरूपयोरङ्गनामद्नज्वरयोर्घटना । यथावा----

अभिलपित यदीन्दो वक्रलक्ष्मीं मृगाक्ष्याः पुनरिप सकृद्व्यो मज संक्षालयाङ्कम् । सुविमलमथ विम्वं पारिजातप्रस्नैः सुरभय वद नो चेत्वं क तस्या सुखं क ॥ पूर्वत्र वस्तुसती घटना । अत्रच चन्द्रवदनलक्ष्म्योस्तर्किता घटनेति भेदः८७

विरूपकार्यस्थोत्पत्तिरपरं विषमं मतम् । कीर्तिं प्रस्ते धवलां स्थामा तव कृपाणिका ॥ ८८ ॥

अत्र कारणगुणप्रक्रमेण विरुद्धाच्छ्यामाद्धवलोत्पत्तिः । कार्यकारणयोर्निर्व-त्यंनिर्वर्तकत्वे पञ्चमी विभावना । विलक्षणगुणशालित्वे त्वयं विपम इति भेदः ॥ ८८॥

> अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्च तदिष्टार्थसम्रुद्यमात् । भक्ष्याश्चयाहिमञ्जूषां दृष्ट्यासुस्तेन भक्षितः ॥ ८९ ॥

वद्प्रतीतेः । अतएव न विरोधाभासोऽपि विशेषोक्तिकथनं त्वत्रासंगतमेव । निह गोत्रोद्धारिवषयकप्रवृत्तिरूपकारणसत्त्वेऽपि गोत्रोद्धाररूपस्य कार्यस्यानुत्प-त्तिरिह प्रतीपाद्यते । किंतु विरुद्धकार्योत्पत्तिरेवेति विभावनीयम्॥ ८५॥ ८६॥ इत्यसंगतिप्रकरणम् ॥ ३७॥

विषममिति॥ परस्परमानुरूप्यरहितयोः पदार्थयोर्थत्र घटना संबन्धो वर्ष्यते तत्र विषमनामालंकारः । संबन्धश्च संयोगादिः उत्पाद्योतपादकभावश्चेति सर्वप्रकारसाधारणमेतल्लक्षणं वोध्यम् ॥ अभिलपसीति ॥ अङ्कं कलङ्कं संक्षालय प्रक्षालय । अथ प्रक्षालनानन्तरम् । नो चेत्तस्या मुखं क त्वं क इति वदेखन्वयः । वस्तुसती वस्तुगला विद्यमाना ॥ चन्द्रेति ॥ चन्द्रश्च वदनलक्ष्मीश्च तयोरित्यर्थः ॥ ८० ॥ विरूपकार्यस्येति ॥ कारणविलक्षणस्वरूपस्येत्यर्थः । कृपाणिका खज्ञः ॥ प्रक्रमेणेति ॥ प्रक्रमः परिपाटी । स्वजातीयकार्यगुणोत्पाद-कत्वरूपा विरुद्धा कार्यसंपत्तिरिति पञ्चमविभावनाप्रकारेणाभेदमाशङ्क्याह—कार्येति ॥ अयं विषमः उक्तविषमालंकारप्रभेदः ॥ ८८ ॥ तृतीयप्रकारमाह—अनिष्रस्यापीति ॥ अपिर्भिन्नकमः । इष्टार्थसमुद्धमादनिष्टस्यावाप्तिरित च तन्

१ 'अवाप्तिश्चेत्तदिष्टार्थ'.

कुवलयानन्दः।

[ विषमालंकारः ३८

308

इष्टार्थमुह्दिय किंचित्कर्मारव्धवतो न केवलमिष्टस्यानवाप्तिः किंतु ततो-ऽनिष्टस्यापि प्रतिलम्भश्चेत्तदपि विषमम् । यथा भक्ष्यप्रेप्सया सर्पपेटिकां दृष्ट्वा प्रविष्टस्य मूपकस्य न केवलं भक्ष्यालाभः किंतु स्वरूपहानिरपीति । यथावा—

गोपाल इति कृष्ण त्वं प्रचुरक्षीरवाञ्छया। श्रितो सातृस्तनक्षीरमप्यलभ्यं त्वया कृतम्॥

इदमर्थावाप्तिरूपेष्टार्थसमुद्यमादिष्टानवाप्तावनिष्टप्रतिलम्भे चोदाहरणम् । अनर्थपरिहारार्थरूपेष्टार्थसमुद्यमात्तदुभयं यथा—

दिवि श्रितवतश्चन्द्रं सेहिकेयभयाद्भवि । शशस्य पश्य तन्विङ्ग साश्रयस्य ततो भयम् ॥

अत्र न केवलं शशस्य स्वानर्थपरिहारानवासिः किंतु साश्रयस्याप्यनर्था-वासिरिति दर्शितम् । परानिष्टप्रापणरूपेष्टार्थसमुद्यमात्तदुभयम् । यथा—

दिधक्षनमारुतेर्वालं तमादीप्यद्शाननः । आत्मीयस्य पुरस्यैव सद्यो दहनमन्वभूत् ॥

पुरस्थेवेत्येवकारेण प्रानिष्टप्रापणाभावो दर्शितः। अनिष्टस्याप्यवासिश्चेति श्लोकेऽनिष्टावासेरपिशव्दसंगृहीताया इष्टानवासेश्च प्रत्येकमपि विषमपदेना-न्वयः। ततश्च केवलानिष्टप्रतिलम्भः केवलेष्टानवासिश्चेत्यन्यद्पि विषमद्वयं लक्षितं भवति।

तत्र केवलानिष्टप्रतिलम्भो यथा-

द्विषमित्यर्थः । अपिना इष्टानवाप्तिः संगृह्यते । चकारः पूर्वोक्तविषमसमुच-यार्थः ॥ भक्ष्येति ॥ अहिमजुषां सर्पपेटिकां दृष्टा भक्ष्यस्याशया प्रविष्ट आखुर्मू-पकस्तेनाहिना भक्षित इखन्वयः । यत्त प्रविष्ट इखस्यागम्यमानत्वान्यूनपदत्वमिति केनचिदुक्तं तद्भिनिवेशदुष्टस्बह्यानुभवविकत्थनमित्युपेक्षणीयम् । अनिष्टस्यापि प्रतिलम्भ इत्यत्राप्यपिभिन्नकमो वोध्यः ॥ गोपाल इति ॥ हे कृष्ण, त्वं गो-पाल इति हेतोर्वहुदुग्धवाञ्छया श्रित आश्रितः । त्वया तु मातृस्तनदुग्धमप्यलभ्यं कृतम् । मुक्तिदानेनेति भावः । पूर्वत्रेष्टानवाप्तिरर्थगम्या इह त्विपशब्दगम्येति विशेषः । इदमिति उदाहरणभिति च जातावेकवचनम् ॥ दिवीति ॥ भुवि सैं-हिकेयस्य सिंहीपुत्रस्य सिंहस्य भयात् दिवि आकाशे चन्द्रमाश्रितवतः शशस्य साश्रयस्याश्रयसहितस्य ततः सैंहिकेयाद्राहोर्भयमेतत् हे तन्वि । पर्येखन्वयः॥ परेति ॥ परस्यानिष्टावाप्तिरूपो य इष्टार्थ इत्यर्थः । तदुभयमिष्टानवाप्त्यनिष्टावा-प्रिद्वयम् ॥ दिधक्षित्रिति ॥ दशाननो रावणः मारुतेईनुमतो वालं पुच्छं दग्धु-मिच्छंस्तं वालमादीप्यद्दीपयति स्मेत्यर्थः ॥ प्रत्येकमपीति ॥ अपिना इष्टानवा-प्तिसमुचिताया अनिष्टावाप्तीर्विषमपदेनान्वयः समुचीयते । विषमपदेन विषमपरा-मर्शकेन तत्पदेन । तथाच तात्पर्यवलाद्वाक्यमावर्तनीयमिति भावः । यत्त्वनिष्ट-स्यैव तदुत्तरापिशब्दसमुचिताया इष्टानवाप्तेरप्याप्नोतिनैवान्वयो न तु तत्पदपरामृ-ष्टेन विषमेणाव्युत्पत्तेरिति तत्र्रागेवापिशब्दान्वयव्याख्यानेन निरस्तं वेदितव्यम्॥

पद्मातपत्ररसिके सरसीरुहस्य किं बीजमपीयतुमिच्छसि वापिकायाम् । कालः कलिर्जगदिदं न कृतज्ञमञ्जे स्थित्वा हरिष्यति मुखस्य तवैव लक्ष्मीम् ॥

अत्र पद्मातपत्रिष्टिप्सया पद्मवीजावापं कृतवत्यास्त्रह्याभोऽस्त्येव किंतु मुख-शोभाहरणरूपोक्कटानिष्टप्रतिलम्भः । केवलेष्टानवाप्तिर्यथा—

खिन्नोऽसि मुज्ज शैलं विभृमो वयमिति वद्दसु शिथिलभुजः। भरभुग्नविततवाहुषु गोपेषु इसन्हरिर्जयति ॥

अत्र यद्यपि शैलस्योपरिपतनरूपानिष्टावासिरपि प्रसक्ता तथापि भगवत्करा-म्बुजसंसर्गमहिस्ना सा न जातेति शैलधारणरूपेष्टानवासिमात्रम् । यथावा—

> लोके कलक्कमपहातुमयं मृगाक्को जातो मुखं तव पुनस्तिलकच्छलेन । तत्रापि कल्पयसि तन्वि कलक्करेखां नार्यः समाश्रितजनं हि कलक्कयन्ति ॥

अत्रानिष्टपरिहाररूपेष्टानवाप्तिः । यथावा— शापोऽप्यदृष्टतनयाननपद्मशोमे सानुम्रहो भगवता मयि पातितोऽयम् ।

पद्मिति ॥ दियतां प्रति नायकोक्तिः । पद्मस्यातपत्रं छत्रं तत्र रसिके हे तन्त्रि, वापिकायां सरसीरुहस्य पद्मस्य कन्दमपीयतुं किमितीच्छिस । यतः हे अज्ञे, क-लियुगरूपः कालः, इदं जगत्कृतज्ञं च न भवति । ततः किं तत्राह । इदं सरसी-रुहं स्थित्वा तवैव मुखस्य लक्ष्मीं हरिष्यति न त्वन्यस्या इत्यर्थः ॥ खिन्नो-**ऽसीति ॥** विभूमो धारयामः । वदत्सु गोपेषु शिथिलौ भुजौ यस्य सः । भरेण शैलभारेण भुन्ना वकाः वितता विस्तीर्णा वाहवो येषां तथाभृतेषु सत्सु हसन् ॥ अत्रेति ॥ नच भरभुन्नेत्वनेन बाहुगतास्थिसन्धिभङ्गरूपानिष्टप्राप्तेः साक्षादुपात्त-त्वात्सर्वोङ्गचूर्णीभावगर्वोपहाररूपायाश्च स्फुटं गम्यमानत्वात् कथमिष्टाप्राप्तिमात्र-मित्युच्यत इति वाच्यम् । अस्थिसंधिभङ्गस्याशब्दार्थत्वाद्भगवद्भजशैथित्यप्रयुक्त-भाराधिक्येन वकतापात्रस्य शब्दोपात्तस्य च क्लेशविशेपानाधायकत्वेनानिष्टव्यप-देशानईत्वात्, सुहद्भतानां गोपानामनिष्टप्राप्तौ हास्यानुपपत्तेश्व । अतएव न स-र्वाङ्गचूर्णाभावेऽपि गम्यः गर्वप्रसत्त्यभावाच न तदपहारोऽपि । यतश्चिरका-लशैलधारणजन्यश्रमपरिजिहीषया गोपानां प्रवृत्तिरिहावगम्यत इति निरवद्यम्॥ लोक इति ॥ हे तन्वि, लोके प्रसिद्धं कलङ्कमपहातुं निवारियतुं मृगाङ्कस्तव मुखं जातस्तत्रापि पुनस्तिलकव्याजेन कलङ्करेखां त्वं कल्पयसि करोषि। हि यसान्नार्यः समाश्रितजनं साश्रितजनं कलिङ्कनं कुर्वन्तीलन्वयः ॥ शापो-ऽपीति ॥ सृगयायां प्रमादतो हतपुत्रेण तापसेन त्वमपि पुत्रशोकान्मरिष्यसीति

१०८ कुवलयानन्दः।

[ विषमालंकारः ३८

कृष्यां दहन्नपि खल्ल क्षितिमिन्धनेद्धो बीजपरोहजननीं दहनः करोति॥

अत्र परानिष्टप्रापणरूपेष्टानवाप्तिः । स्वतोऽनिष्टस्यापि मुनिशापस्य महा-पुरुषार्थपुत्रलाभावश्यंभावगर्भतया दशरथेनेष्टत्वेन समर्थितत्वात् । यत्र के-नित्तस्वेष्टसिद्धर्थं नियुक्तेनान्येन नियोक्तरिष्टमुपेक्ष्य स्वस्येवेष्टं साध्यते तत्रा-पीष्टानवाप्तिरूपमेव विषमम् । यथा—

यं प्रति प्रेषिता दूती तिस्मिन्नेव लयं गता ।
स्वयः पश्यत मौद्ध्यं मे विपाकं वा विधेरमुम् ॥
तिस्मिन्नेव लयं गतेति नायके दूत्याः स्वाच्छन्द्यं दिशेतम् । यथावा—
नपुंसकमिति ज्ञात्वा प्रियाये प्रेषितं मनः ।
तत्तु तत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम् ॥
एतानि सर्वथैवेष्टानवाप्तेरुदाहरणानि । कदाचिदिष्टावाप्तिपूर्वकं तद्नवाप्रिर्यथा मदीये वरदराजस्तवे—

भानुर्निशासु भवदङ्गिमयूखशोभा-लोभात्प्रताप्य किरणोत्करमाप्रभातम् । तत्रोद्धते हुतवहात्क्षणलुप्तरागे तापं भजत्यनुदिनं स हि मन्दतापः॥

यथवा---

त्वद्वक्रसाम्यमयमम्बुजकोशसुद्धाः भङ्गात्तत्सुपममित्रकरोपकृष्या । छद्ध्वापि पर्वणि विधुः क्रमहीयमानः शंसत्यनीत्युपचितां श्रियमाञ्चनाशाम् ॥

शापे दत्ते तं प्रति दशरथस्येयमुक्तिः । अदृष्टपुत्रमुखपङ्कजशोभे मयि भगवता त्वया पातितोऽयं शापोऽपि सानुप्रहो भवति । खलु निश्चितम् । इन्धनैरिद्धो दीप्तो दहनः कृषियोग्यां क्षिति दहन्निप बीजाङ्करजननीं करोतीति दृष्टान्तः ॥ परेति ॥ परस्य दशरथस्यानिष्टप्रापणरूपं यदिष्टं तस्यानवाप्तिरर्थात्तापसस्येत्यर्थः । कुतस्तन्त्राह—स्वत इति ॥ नियोक्तः प्रेषयितुः ॥ यं प्रतीति ॥ मौद्धं मृदत्वम् । एवंविधायामाप्तत्ववुद्धेविधेदैवस्य विपाकं परिपाकम् । फलमिति यावत् ॥ भानुरिति ॥ हे हरे, भानुः सूर्यो भवचरणिकरणशोभाया लोभात्स्वीयिकरणस्मूहं निशासु प्रभातपर्यन्तं प्रताप्य रात्रौ सूर्यकरणानाममौ प्रवेशात्तापयित्वा तत्र तस्मिन्करणोत्करे हुतवहादमेः सकाशादुद्धते सति रक्ततादर्शनान्मन्दसंत्तापः सन् क्षणमात्रेण लुप्तरागे नष्टलौहित्ये सत्यनुदिनं तापं भजतील्यन्यः ॥ त्वद्वक्रोति ॥ हे हरे, अयं विधुः पर्वणि पूर्णिमायामम्बुजस्य कोशः कुञ्चलः स एवाम्बुजरूपभाण्डारगृहं तस्य मुद्रा मुक्कीभावो मुद्रणं च तस्य भक्नेनात्ता

विषमालंकारः ३८] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

208

अत्रायश्लोके सूर्यकिरणानां रात्रिष्वप्तिप्रवेशनमागमसिद्धम् । सूर्यस्य निजिकरणेषु भगवचरणारुणिमप्रेष्सया तत्कृतं तेपामग्नौ प्रतापनं परिकल्प्य
तेपामुद्रयकालदृश्यमरुणिमानं च तसोद्धृतनाराचानामिवाप्तिसंतापनप्रयुक्तारुणिमानुवृत्तिं परिकल्प्य सूर्यस्य महतापि प्रयत्नेन तात्कालिकेष्टावाप्तिरेव जायते न सार्वकालिकेष्टावाप्तिरिति दृश्तितम् । द्वितीयश्लोके चन्द्रस्य भगवन्मुखल्द्धमीं लिप्समानस्य सुहृत्वेन मित्रशब्दश्लेषवशात्सूर्यं परिकल्प्य तिकरणस्य कमलमुकुलविकासनं चन्द्रानुप्रवेशनं च सुहृत्याणेभगवन्मुखल्द्धमीनिधानकोशगृहसुद्रामोचनपूर्वकं ततो गृहीतभगवनमुखल्द्धमीकस्य तया भगवनमुखल्द्धस्या चन्द्रप्रसाधनार्थं चन्द्रस्पर्शस्त्रपं च परिकल्प्येतावतापि प्रयत्नेन पौर्णमास्यामेव भगवनमुखसाम्यरूपेष्टप्राप्तिजीयते न सार्वकालिकेति
दृश्तितम् । क्रचिदिष्टानवाप्ताविष तद्वाप्तिअमनिबन्धनविच्छित्तिविशेषः ।
यथावा—

बह्वालक्षोणिपाल त्वद्हितनगरे संचरन्ती किराती रवान्यादाय कीर्णान्युरुतरस्वद्गिङ्गारशङ्काकुलाङ्गी। क्षिह्वा श्रीखण्डखण्डं तदुपिर मुकुलीभूतनेत्रा धमन्ती श्वासामोदप्रसक्तैर्भशुकरपटलैर्धूमशङ्कां करोति॥ अत्र प्रभूताग्निसंपादनोद्योगात्तत्संपादनालाभेऽपि तह्याभो अमोपन्यास-मुखेन निबद्धः॥

गृहीता तत्सुषमा तच्छोभा यैस्तादशा ये मित्रकराः सूर्यकिरणाः सुहत्पाणयश्च तेषामुपक्रस्या लाभेन त्वद्वकस्य कान्ति लब्ध्वापि क्रमेण हीयमानः क्षीयमाणः सन् अनीत्या उपचितां प्रवृद्धां श्रियमाञ्च नाशो यस्यास्तां शंसति कथयतीत्यन्वयः ॥ अत्रेति ॥ आगमसिद्धं 'तस्माहिवामिरादित्यं प्रविशति रात्रावादित्यस्तम्' इति श्रुतिसिद्धं प्रवेशनं तत्कृतं सूर्यकृतं तेषां किरणानामग्रौ प्रतापनरूपं परिकल्प्य उत्प्रेक्ष्य एवं तेषां किरणानामरुणिमानमारक्तत्वं च अरुणिमानुवृत्तिरूपं परिकल्प्य इति दर्शितमित्यन्वयः । एवमग्रेऽपि सुहत्त्वेन सूर्ये परिकल्प्य तत्किरणचन्द्रानु-प्रवेशं च शास्त्रसिद्धं सुहत्पाणेर्यथोक्तविशेषणविशिष्टस्य चन्द्रस्पर्शरूपं च परिकल्प्य इति दर्शितमिखन्वयः ॥ बल्लालेति ॥ हे एतन्नामक भूपाल, त्वच्छत्रनगरे संचरन्ती भिल्ली प्रकीर्णानि रल्लान्यादाय उरुतरा महती या खदिराङ्गारस्य शङ्का भान्तिस्तया व्याकुलाङ्गी तदुपरि श्रीखण्डकाष्ट्रशकलं क्षिप्ता मुकुलीभूतनेत्रा फत्कारं कुर्वती सती श्वासपरिमलेन प्रसक्तरागतैर्भ्रमरसमूहैर्भूमशङ्कां करोतील-न्वयः ॥ प्रभृतेति ॥ बहुलेलर्थः । एतेषु च सर्वेषृत्पाद्योत्पादकभावरूपसंबन्धन गर्भेषु प्रभेदेषु कार्यकारणयोः क्वचिद्विलक्षणगुणशालित्वेनानुरूप्याभावात्कचिचे-ष्टोत्पादकत्वेनाभिमतस्य कारणस्येष्टानवाह्यनिष्टावाप्तिरूपकार्येणानुरूप्याभावा-त्सामान्यलक्षणसमन्वयो बोध्यः ॥ ८९ ॥ इति विषमालंकारप्रकरणम् ॥ ३८ ॥ 220

कुवलयानन्दः।

सिमालंकारः ३९

समालंकारः ३९
समं स्याद्वंणनं यत्र द्वयोरण्यनुरूपयोः ।
स्वानुरूपं कृतं संब हारेण कुचमण्डलम् ॥ ९०॥
प्रथमविषमप्रतिद्वन्द्वीदं समम् । यथावा—
कौमुदीव तुहिनांशुमण्डलं जाह्ववीव शशिखण्डमण्डनम् ।
पश्य कीर्तिरनुरूपमाश्रिता त्वां विभाति नरसिंह भूपते ॥
चित्रं चित्रं वत वत महचित्रमेतद्विचित्रं
जातो देवादुचितघटनासंविधाता विधाता ।
यित्रम्वानां परिणतफलस्कीतिरास्वादनीया
यचैतस्याः कवलनकलाकोविदः काकलोकः ॥
पूर्वं स्तुतिपर्यवसायीदं निन्दापर्यवसायीति भेदः ॥ ९०॥
सारूप्यमपि कार्यस्य कारणेन समं विदः ।

नीचप्रवणता र्लंक्ष्मीजेलजायास्तवोचिता ॥ ९१ ॥ इदं द्वितीयं विपमप्रतिद्वन्द्वि समस् । यथावा— दवदहनादुत्पन्नो धूमो घनतामवाष्य वर्षेस्तम् । यथ्छमयति तद्यक्तं सोऽपि च दवमेव निर्देहति ॥

यथावा---

आदौ हालाहलहुतभुजा दत्तहस्तावलम्बो बाल्ये शम्भोनिटिलमहसा बद्धमेत्रीनिरूढः। प्रौढो राहोरिप मुखविषेणान्तरङ्गीकृतो यः सोऽयं चन्द्रस्तपति किरणैर्मामिति प्राप्तमेतत्॥

समिति ॥ अनुरूपयोरिखनन्तरसंबन्धस्येति शेषः । परस्परमनुरूपयोः संबन्धस्य वर्णनं समं नामालंकारः । सद्य स्थानम्।शशिखण्डमण्डनं चन्द्रकला-भूषणं हरम् ॥ चित्रमिति ॥ अत्र चित्रवतशब्दयोवींप्सा विषयातिशयद्योत-नाय । परिणतं पक्षम् । स्फीतिः समृद्धिः । एतस्याः फलसमृद्धेः कवलनकला भक्षणचातुर्ये तत्र कोविदः पण्डितः ॥ ९० ॥ सारूप्यमपीति ॥ कार्यस्य कारणेन सारूप्यमपि समालंकारः ॥ नीचेति ॥ नीचप्रवणता नीचासक्तता जल्लायाः समुद्ररूपजलाजातायाः । उचितेति । जलस्य तादशत्वादिति भावः ॥ द्वेति ॥ घनतां मेघरूपतां वर्षेजलवर्षणैः शमयति नाशयति । हि यस्मात्सोऽपि दवदहनोऽपि दवमेव खोत्पादकं विनिर्देहति । तथाच कारणस्य खोत्पादकनाश-कत्वात्कार्यस्यापि धूमस्य तथात्वमुचितमित्यर्थः ॥ आद्याचिति ॥ विरहिण्या इयमुक्तिः । सोऽयं चन्द्रो मां किरणैस्तपतीत्येतत्प्राप्तं न्यायप्राप्तमित्यर्थः । सकः । यः

१ 'वर्ण्यते यत्र'. २ 'स्वस्य हारेण'. ३ 'कार्य स्यात्कारणेन'. ४ 'लि६म जलजायाः'.

समालंकारः ३९ ] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

388

पूर्वत्र कारणस्वभावानुरूप्यं कार्यस्यात्रागन्तुकतदीयदुष्टसंसर्गानुरूप्यमिति भेदः ॥ ९१ ॥

विनानिष्टं च तिसद्धिर्यदर्थं कर्तुमुद्यतः । युक्तो वारणलाभोऽयं स्यांच ते वारणार्थिनः ॥ ९२ ॥

इदं सममनिष्टस्याप्यवाप्तिश्चेत्यर्थसंगृहीतस्य त्रिविधस्यापि विषमस्य प्रतिद्विन् । इष्टावाप्तेरनिष्टस्याप्रसङ्गाच । अत्र गजार्थितया राजानमुपसर्पन्तं तदौवारिकेर्वार्थमाणं प्रति नर्मर्थचनमुदाहरणम् । नचात्र निवारणमनिष्टमापन्नामत्युदाहरणत्वं शङ्कनीयम् । राजद्वारि क्षणनिवारणं संभावितमिति तदङ्गीकृत्य प्रवृत्तस्य विषमालंकारोदाहरणेष्विवातर्कितोत्कटानिष्टापत्त्यभावात् ।
किंच यत्रातर्कितोत्कटानिष्टसत्त्वे श्रेपमहिम्ना इष्टार्थत्वप्रतीतिस्तत्रापि समालंकारोऽप्रतिहत एव ।

उचैर्गजैरटनमर्थयमान एव त्वामाश्रयन्निह चिरादुपितोऽस्मि राजन् । उचाटनं त्वमपि लम्भयसे तदैव मामद्य नैव विफला महतां हि सेवा ॥

अत्र यद्यपि व्याजस्तुतौ स्तुत्या निन्दाभिव्यक्तिविवक्षायां विपमालंकार-स्तथापि प्राथमिकस्तुतिरूपवाच्यविवक्षायां समालंकारो न निवार्यते । एवं

आदौ हालाहलरूपेण हुतभुजामिना दत्तो हस्तावलम्बो यस्य सः। निटिलं ललाटं तत्संवन्धिमहसा नेत्रामिना बद्धा संबद्धा मैत्र्या निरूढः प्रसिद्धः प्रौढो युवा । राहोर्भखसंविन्धभिविषेरन्तरङ्गीकृतः। यहणकाले संपर्कातिशयादन्तरङ्गतां प्रापित इत्यर्थः । अत्र कार्यस्य तापस्य कारणीभृतचन्द्रगतदुष्टसंसर्गानुरूपत्वम् ॥ ९१ ॥ भेदान्तरमाह - विनेति ॥ अनिष्टं विना यमर्थे कर्तुमुद्यतस्तत्सिद्धिरिप समिम-त्यनुवृत्त्या योज्यम् । यद्र्थमिति पाठे यश्चासावर्थश्चेत्यर्थः ॥ युक्त इति ॥ वा-रणं निवारणं वारणो गजश्च युक्तो न स्यादिप तु स्यादेवेलर्थः । शोभत इति क्रचित्पाठः साधुरेव । अपिसंगृहीतस्यापिशच्दसंगृहीतस्य । नर्भवचनं परिहासवच-नम् । अत्रेष्टावाप्तिः श्लेषकल्पिता बोध्या ॥ इष्टार्थप्रतीतिरिति ॥ इष्टार्थत्वेन प्रतीतिरित्यर्थः ॥ अप्रतिहत इति ॥ अनिष्टस्येष्टाभिन्नत्वेन ज्ञानकालेऽनिष्टत्वे-नाप्रतिभासादिति भावः ॥ उचैरिति ॥ गजैरटनं तदारोहणपूर्वकं गमनम् । इह त्वन्नगरे उषितोऽस्मि वासं कृतवानस्मि । तदेव मत्प्रार्थ्यमानमेव उचाटनं द्रिनरसनमेव । उच्चैर्गजैरटनं प्रति मां लम्भयसे प्रापयसि । हि यस्मात् महतां सेवा विफला न भवतीति मुखे सुतिः । ततो दूरनिरसनमेवार्थान्तरपरिप्रहेण विषमालंकारस्फूर्ला निन्दायां पर्यवसानम् । एतेन वैषम्यस्य निन्दारूपस्य व्याज-स्तुतिविषयत्वेन तथापवाद इति निरस्तम् । विषमस्य निन्दामूलत्वेन तद्रपत्वाभा-

१ 'विना यलेन तिसिद्धिर्यदर्थः'. २ 'जातस्ते वार'. ३ 'प्रतिपत्तिः'.

223

कुवलयानन्दः। विचित्रालंकारः ४०

यत्रेष्टार्थावाहिसस्वेऽिप श्लेपवशादसतोऽनिष्टार्थस्य प्रतीतिस्तत्रापि समालंका-रस्य न क्षतिः । यथा—

> शस्त्रं न खलु कतर्व्यमिति पित्रा नियोजितः। तदेव शस्त्रं कृतवान्पितुराज्ञा न लङ्किता॥

अत्र पितुराज्ञा छङ्कितेत्यनेन विरोधालंकाराभिन्यस्मयर्थे न खिन्वत्यत्र पदद्वयविभागात्मकरूपान्तरस्यापि विवक्षायाः सत्त्वेऽपि नखं छुनातीति नखिन्वत्येकपदेन वस्तुसदर्थान्तरपररूपान्तरमादाय समालंकारोऽप्यस्त्येव। श्लेष्ठच्धासिदिष्टावासिप्रतीतिमात्रेणापि गतमुदाहरणम् । यथा—

सत्यं तपः सुगत्ये यत्तस्वाम्बुषु रविप्रतीक्षं सत् । अनुभवति सुगतिमञ्जं त्वत्पद्जन्मनि समस्तकमनीयम् ॥ ९२ ॥

विचित्रालंकारः ४० विचित्रं तत्प्रयत्नश्रेद्विंपरीतः फलेच्छया । नमन्ति सन्तस्त्रेलोक्याद्पि लब्धुं सम्रुन्नतिम् ॥ ९३॥ यथावा—

मिलनियतुं खलवदनं विमलयित जगन्ति देव कीर्तिस्ते। मित्राह्मादं कर्तुं मित्राय दुद्धति प्रतापोऽपि॥ ९३॥

वादिति । इष्टार्थावाप्तिसत्त्वेऽपि वास्तविकेष्टार्थप्राप्तिसत्वेऽपि ॥ न क्षितिरिति ॥ अनिष्टप्रतीतेराभासरूपत्वेनापर्यवसानादिति भावः ॥ रास्त्रमिति ॥ तदेव न-खल्वेव । एकपद्त्वेनत्युपलक्षणे तृतीया । एकपद्त्वोपलक्षितं यद्वस्तु सदर्थान्तर्परं रूपं रूपान्तरमिखर्थः । अर्थान्तरं च वास्तविकं पद्व्युत्पत्तिकथनेन दर्शितमेव ॥ श्ठेषलब्धेति ॥ श्रेषेण लब्धा असती वस्तुतोऽविद्यमाना या इष्टावाप्तिप्रतीतिन्व्यवच्छेदः । युक्तो वारणलाभोऽयमित्यत्र किंचिद्निष्टस्यौचौरित्यत्र चोत्कटानिष्टस्य प्रतीतिसत्त्वादुदाहरणान्तरमाह—यथेति ॥ नायिकां प्रति नायकस्योक्तिः । हे तन्वि, तपः शोभनगत्येव भवतीति सत्यं यद्यस्पाद्व्यं कमलमम्बुषु जल्यु र्विं, प्रतीक्षते तादशं सत्त्वा तपः कृत्वा त्वत्पदरूपे जन्मनि समस्तेभ्यः कमलेभ्यः कमनीयं सुन्दरं सत्सुगति शोभनां गतिमनुभवतीत्यन्वयः । अत्र कमलस्योत्तमलोकरूपगतिप्राप्तये तपस्यतस्तद्लाभेऽपि शोभनगमनस्य गतिशब्द-श्रेपवलादिष्टत्वेन प्रतीतेरिष्टावाप्तिप्रतीतिमात्रं नत्विष्टप्रतिभासोऽपीति॥ ९२ ॥ इति समालंकारप्रकरणम् ॥ ३९ ॥

विचित्रमिति ॥ फलेच्छया विपरीतः प्रयत्नश्चेद्विचित्रं नामालंकारः । इष्ट-विपरीताचरणमिति यावत् । नमन्तीति । नम्रीभवन्तीत्यर्थः । समुन्नतिमुच-ताम् ॥ मिलनियतुमिति ॥ मिलनीकर्तुमित्यर्थः । विमलयति विमलीकरोति ।

१ 'विपरीतफलेच्छया'.

# अधिकालंकारः ४१ अधिकं पृथुलाधारादाधेयाधिक्यवर्णनम् । त्रह्माण्डानि जले यत्र तत्र मान्ति न ते गुणाः ॥९४॥

अत्र यत्र महाजलोवेऽनन्तानि ब्रह्माण्डानि बुहुद्कल्पानीत्याधारस्याति-विशालत्वं प्रदर्श्य तत्र न मान्तीत्याधेयानां गुणानामाधिक्यं वर्णितम् । यथावा—

युगान्तकालप्रतिसंहतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत । तनौ ममुस्तत्र न कैटमहिपस्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः॥ ९४॥

पृथ्वाधेयाद्यदाधाराधिक्यं तैद्पि तन्मतम् । कियद्वाग्त्रह्म यत्रैते विश्राम्यन्ति गुणास्तव ॥ ९५ ॥

अत्रेत इति प्रत्यक्षदृष्टमहावैभवत्वेनोक्तानां गुणानां विश्राम्यतीत्यसंबाधा-वस्थानोक्तयाधारस्य वाग्वह्मण आधिक्यं वर्णितम् । यथावा—

> अहो विशालं भूपाल भुवनत्रितयोदरम् । माति मातुमशक्योऽपि यशोराशियंदत्र ते ॥

अत्र यद्यप्युदाहरणद्वयेऽपि कियद्वाग्ब्रह्मेति अहो विशालमिति चाधारयोः प्रशंसा क्रियते तथापि तनुत्वेन सिद्धवत्कृतयोः शब्दब्रह्मभुवनोदरयोर्गुणय-शोराश्यधिकरणत्वेनाधिकत्वं प्रकल्प्येव प्रशंसा क्रियत इति तत्प्रशंसा प्रस्तुत-गुणयशोराशिप्रशंसायामेव पर्यवस्यति ॥ ९५ ॥

जगन्ति त्रिभुवनानि । सित्रं सुहन्मित्रः सूर्यश्च ॥ ९३ ॥ इति विचित्रालंकारः ४० अधिकिमिति ॥ पृथुलादाधेयापेक्षया विशालादाधारादाधेयस्याधिक्यवर्णन-मेकोऽधिकालंकारः ॥ सुगान्तेति ॥ युगान्तकाले प्रलये प्रतिसंहतः स्वस्मिँ ह्रयं प्रापित आत्मा स्वविलासरूपः प्रपन्नो येन तादशस्य कैटमद्विषः श्रीकृष्णस्य यस्यां तनौ जगन्ति भुवनानि विकाशसहितं यथा स्यात्तथा आसत स्थितानि तत्र तस्यां तनौ तपोधनस्य नारदस्याभ्यागमात्संभवो यासां ता मुदः प्रीतयोन मसु-रिस्यन्ययः ॥ ९४॥

पृथ्विति ॥ विशालादाधेयायदाधारस्याधिक्यं तद्प्यधिकम् ॥ कियदिति॥ अपिरिमितमित्यर्थः । वाक् शब्द एव ब्रह्म । इयं च परमेश्वरं प्रति भक्तस्योक्तिः ॥ असंवाधिति ॥ असंकटेत्यर्थः ॥ अहो इति ॥ माति संमाति । मातुमशक्यो-ऽपिरिमेतः । अत्र भुवनत्रयोदरे । नन्वाधारयोः शब्दब्रह्मभुवनोदरयोरप्रस्तुतत्वे-नाप्रशंसनीयत्वात्तदाधिक्यवर्णनमयुक्तमित्याशङ्क्याह—अत्रेति ॥ न चात्राप्रस्तु-तप्रशंसा शङ्कनीया । प्रस्तुतस्याप्यभिधानादिति । इत्थं चाधाराधेयान्यतरस्य तनो-रप्याधिक्यवर्णनमिति सामान्यलक्षणं वोध्यम् ॥ ९५ ॥ इत्यधिकालंकारः॥ ४९ ॥

१ 'तदपि वर्ण्यते'.

कुवलयानन्दः। अन्योन्यालंकारः ४३

888

अल्पालंकारः ४२

अल्पं तु सूक्ष्मादाधेयाद्यदाधारस्य सूक्ष्मता । मणिमालोर्मिका तेऽद्य करे जपवटीयते ।। ९६ ।।

अत्र मणिमालामयोर्मिका तावदङ्गुलिमात्रपरिमितत्वात्सूक्ष्मा सापि विर-हिण्याः करे कङ्कणवत्प्रवेशिता तस्मिन् जपमालावल्लम्बत इत्युक्त्या ततोऽपि करस्य विरहकार्श्योदतिसौक्ष्म्यं दर्शितम् । यथावा—

यन्मध्यदेशादपि ते सूक्ष्मं छोलाक्षि दृश्यते । मृणालसूत्रमपि ते न संमाति स्तनान्तरे ॥ ९६ ॥

अन्योन्यालंकारः ४३ अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम् । त्रियामा श्रश्चिना भाति शशी भाति त्रियामया॥९७॥ <sub>यथावा</sub>—

> यथोर्ध्वाक्षः पिबलम्बु पथिको विरलाङ्गुलिः। तथा प्रपापालिकापि धारां वितनुते तनुम्॥

अत्र प्रपापालिकायाः पथिकेन स्वासत्तया पानीयदानव्याजेन बहुकालं स्वमुखावलोकनमभिलपन्या विरलाङ्गुलिकरणतश्चिरं पानीयदानानुवृत्तिसं-पादनेनोपकारः कृतः । तथा प्रपापालिकयापि पानीयपानव्याजेन चिरं स्वमु-

अरुपिमिति ॥ यदिति सामान्ये नपुंसकम् । खापेक्षया सूक्ष्मादाधेयादाधा-रस्य सूक्ष्मता यत्तदल्पं नामालंकारः ॥ मणीति ॥ मणिपङ्किरूपा ऊर्मिका अङ्गुलीयकं ते करे अद्य विरहावस्थायां जपमालायत इत्यर्थः । वटीशब्दस्य गुटिकापर्यायत्वात् । अतिसूक्ष्मता आधेयभूतमालापेक्षयापि सूक्ष्मता ॥ यदिति॥ हे चञ्चलक्षि, तव मध्यभागादिष यत्सूक्ष्मं दृश्यते तत् मृणालसूत्रमि तव स्तनयोरन्तरे मध्ये न मातीत्यन्वयः ॥ ९६ ॥ इत्यल्पालंकारः ॥ ४२ ॥

अन्योन्यमिति ॥ यत्र परस्परमुपकारः स्यात्तत्रान्योन्यं नामालंकारः । त्रियामा रात्रिः ॥ यथेति ॥ ऊर्ध्वाक्ष ऊर्ध्वनयनः प्रपापालिका प्रपादानाधिकृता काचिद्वनिता । धारां जलधाराम् । तनुं सूक्ष्माम् ॥ अत्रोति ॥ प्रपापालिकायाः पिथकेनोपकारः कृत इत्यन्वयः । स्वासत्त्रयेत्यादि प्रपापालिकाया विशेषणम् । संपादनेन करणभूतेन । एवं प्रपापालिकयापि पिथकस्योपकारः कृत इत्यन्वयः। यत्तु स्वमुखावलोकनमभिलषन्त्या इत्यत्र स्वशब्दस्य प्रपापालिकावोधकत्वमेव न्याय्यं न पान्थवोधकत्वं यद्विशेषणघटकत्वेन स्वनिजादिशब्दा उपात्तास्तद्वोधका इति ब्युत्पत्तिरिति कैश्चिदुक्तम् । तद्युक्तम् । मुख्यविशेष्यविशेषणघटकस्यैव स्वनिजादिशब्दस्य मुख्यविशेष्यमात्रगामित्वन्युत्पत्तेः । यथा देवदत्तस्य पुत्रः स्वनातृभक्त इत्यादौ स्वशब्दस्य तादशपुत्रगामित्वम्, नतु गुणभूतदेवदत्तगामित्वम्।

विशेषालंकारः ४४] अलंकारचिन्द्रकासहितः । ११५

खावलोकनमभिलपतः पथिकस्य धारातन् करणतिश्चरं पानीयपानानुवृत्तिसं-पादनेनोपकारः कृतः । अत्रोभयोर्व्यापाराभ्यां स्वस्त्रोपकारसद्भावेऽपि परस्प-रोपकारोऽपि न निवार्यते ॥ ९७ ॥

# विद्योषालंकारः ४४ विद्येषः ख्यातमाधारं विनाप्याधेयवर्णनम् । गतेऽपि सूर्ये दीपस्थास्तमदिछन्दन्ति तत्कराः ॥ ९८ ॥

यथावा---

कमलमनम्भसि कमले कुवलयमेतानि कनकलतिकायाम् । सा च सुकुमारसुभगेत्युत्पातपरम्परा केयम् ॥

अत्राधे सूर्यस्य प्रसिद्धाधारस्याभावेऽपि तत्कराणामन्यत्रावस्थितिरुक्ता । द्वितीये त्वम्भसः प्रसिद्धाधारस्य भावेऽपि कमलकुवलययोरन्यत्रावस्थिति- रुक्ता । क्वचित्प्रसिद्धाधाररहितानामाधारान्तरनिर्देशं विनेवाप्रलयमवस्थिते- वर्णनं दृश्यते । यथावा—

दिवमप्युपयातानामाकल्पमनल्पगुणगणा येपाम् । रमयन्ति जगन्ति गिरः कथमिव कवयो न ते वन्द्याः ॥ अत्र कवीनामभावेऽपि तद्गिरामाधारान्तरनिर्देशं विनैवाप्रलयमवस्थिति-वैणिता ॥ ९८ ॥

> विशेषः सोऽपि यद्येकं वस्त्वनेकत्र वर्ण्यते । अन्तर्वहिः पुरः पश्चात्सर्वदिक्ष्विप सेव मे ॥ ९९ ॥

अत एवेदशस्थल एव 'निजतनुखच्छलावण्यवापीसंभूताम्भोजशोभां विद्धद्भिनवो दण्डपादो भवान्या' इत्यत्राभवन्मतयोगत्वं दूषणमुदाहृतं मम्मटभट्टैः काव्य-प्रकाशिकायाम् । अन्यत्र तु न स्वविशेष्यगामित्वनियमः । स्वाधितानां विप्राणाम्यं पालकः स्वाज्ञाकारिणां भृत्यानामयं कृत्पनृक्ष इत्यादौ व्यभिचारात् । नचैवं स्वदाररतानां विप्राणामहं भक्त इत्यत्र मदीयदाररतानामिति प्रतीतिः स्यादिति वाच्यम् । तात्पर्यस्य नियामकत्वेनापत्त्यभावादिति॥९०॥इत्यन्योन्यालंकारः॥४३॥

विशेष इति ॥ ख्यातं प्रसिद्धम् । तदुक्तम् 'विना प्रसिद्धमाधारमाध्यस्य व्यवस्थितिः' इति । छिन्दन्ति नाशयन्ति । तत्कराः सूर्यकिरणाः । रात्रावादिख-स्याग्ने प्रवेशश्रवणाद्दीपस्थत्वम् ॥ कमळिमिति ॥ अत्र कमळत्वादिना मुखादेर-ध्यवसानं वोध्यम् । कुवळये नेत्रे एतानि कमळकुवळयानि कनकळतारूपायां कामिन्याम् । सा च कनकळतिका च । निर्देशः कथनम् । आप्रळयं प्रळयपर्यन्तम् ॥ दिवमिति ॥ दिवमुपयातानामपि येषामनल्पगुणगणयुक्ता गिरः आकल्पं कल्पपर्यन्तं जगन्ति भुवनानि रमयन्तीखन्वयः॥ ९८॥ प्रभेदान्तरमाह—

कुवलयानन्दः । [ व्याघातालंकारः ४५

यथावा---

११६

हृदयान्नापयातोऽसि दिश्च सर्वासु दृश्येसे। वत्स राम गतोऽसीति संतापेनानुमीयसे॥ ९९॥ किंचिदारम्भतोऽश्वयवस्त्वन्तरकृतिश्च सः। त्वां पश्यता मया लब्धं कल्पवृक्षनिरीक्षणम्॥१००॥

यथावा-

स्फुरदद्भुतरूपमुत्प्रतापज्वलनं त्वां सृजतानवद्यविद्यम् । विधिना सस्त्रे नवो मनोभूर्भुवि सत्यं सविता बृहस्पतिश्च ॥ अत्राद्ये राजदर्शनारम्भेण कल्पवृक्षदर्शनरूपाशक्यवस्त्वनन्तरकृतिः । द्वि-तीये राजसृष्ट्यारम्भेण मनोभ्वादिसृष्टिरूपा शक्यवस्त्वन्तरकृतिः ॥ १०० ॥

#### व्याघातालंकारः ४५

स्योद्ध्याघातोऽन्यथाकारि तथाकारि क्रियेत चेत्। यैर्जगत्त्रीयते हन्ति तैरेव कुसुमायुधः ॥ १०१॥

यद्यस्माधनस्वेन लोकेऽवगतं तस्केनचित्तद्विरुद्धसाधनं क्रियेत चेत्स व्या-घातः । यद्वा । यत्साधनतया केनचिदुपात्तं तदन्येन तत्प्रतिद्वन्द्विना तद्वि-रुद्धसाधनं क्रियेत चेत्सोऽपि व्याघातः । तत्राद्य उदाहृतः ।

द्वितीयो यथा-

हशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति हशैव याः। विरूपक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः॥ १०१॥ सौकर्येण निवद्धापि क्रिया कार्यविरोधिनी।

सौक्यण निवद्धापि किया कॉयविरोधिनी । दया चेद्वाल इति मय्यपरित्याज्य एव ते ॥ १०२ ॥

यदीति ॥ ९९ ॥ तृतीयं प्रकारमाह — किंचिदिति ॥ किंचित्पदार्थारम्भेणा-शक्यस्य वस्त्वन्तरस्य कृतिः करणं च स विशेषः । त्वामिति प्रभुं प्रति याच-कोक्तिः ॥ स्पुरदिति ॥ उत्कटः प्रतापह्रपो ज्वलनोऽन्निर्यस्थेत्यर्थः । उक्तवि-शेषणं त्वां सजता विधिना भुवि नवो मनोभवादिः सस्जे सष्ट इति सत्यमित्य-न्वयः । अत्र चोक्तभेदत्रयान्यतमत्वं सामान्यलक्षणं वोध्यम् ॥ १०० ॥ इति विशेषालंकारः ॥ ४४ ॥

स्यादिति ॥ तथाकारि तत्कार्यसाधनवस्तु अन्यथाकारि तत्कार्यविरुद्धकार्य-साधनं चेत्कियेत तदा व्याघातोऽलंकारः स्यादित्यर्थः ॥ येरिति ॥ यैः कटाक्ष-विभ्रमादिभिर्जगत्त्रीयते संतुष्यति तैरेव कुसुमायुधो हन्तीत्यन्वयः । विरूपाक्षस्य हरस्य जयिनीर्विजयकारिणीः । सुवे स्तौमि ॥ १०१ ॥ भेदान्तरमाह—सोक-

१ 'दृश्यते'. २ 'स्यादुद्यातो'. ३ 'कार्याविरो'.

कार्यविशेपनिष्पादकतया केनचित्संभाव्यमानादर्थादन्येन कार्यविरोधि-कियासौकर्येण समर्थ्यते चेत् सोऽपि व्याघातः । कार्यविरुद्धियायां सौकर्ये कारणस्य सुतरां तदानुगुण्यम् । यथा जैत्रयात्रोन्मुखेन राज्ञायुवराजस्य राज्य एव स्थापने यत्कारणत्वेन संभावितं वाल्यं तत्प्रत्युत तद्विरुद्धस्य सहनयन-स्येव कारणतया युवराजेन परित्यागस्यायुक्तत्वं दर्शयता समर्थ्यते ।

यथावा---

लुब्धो न विस्रजल्पर्थे नरो दारिद्यशङ्कया । दातापि विस्रजल्पर्थ तयैव ननु शङ्कया ॥ अत्र पूर्वोत्तरार्धे पक्षप्रतिपक्षरूपे कयोश्चिद्वचने इति लक्षणानुगतिः ॥१०२॥

कारणमालालंकारः ४६
गुम्फः कारणमाला स्याद्यंथा प्राक्प्रान्तकारणेः ।
नयेन श्रीः श्रिया त्यागम्त्यागेन विपुलं यद्याः ॥१०३॥
उत्तरोत्तरकारणभूतपूर्वपूर्वेः पूर्वपूर्वकारणभूतोत्तरोत्तरेवा वस्तुभिः कृतो
गुम्फः कारणमाला । आद्योदाहता । द्वितीया यथा—
भवन्ति नरकाः पापात्पापं दारिद्यसंभवम् ।
दारिद्यमप्रदानेन तस्मादानपरो भवेत् ॥ १०३॥

येणेति ॥ कारणस्यानुगुण्याधिक्येनेत्यर्थः । निवद्धा कविवर्णिता । कार्यविरोधिनी पराभिमतकार्यविरुद्धा ॥ द्येति ॥ दिग्विजयाय प्रस्थितं राजानं प्रति युवराजस्योक्तिः । वाल इत्यतो मिय दया यौवराज्ये स्थापनरूपा चेत्तदा तस्मादेव हेन्तोरहं तवापरित्याज्य एव किंतु स्थेन सह नेतव्य इत्यर्थः ॥ अर्थादिति ॥ हेतौ पञ्चमी । अन्वयश्वास्य समर्थ्यते इत्यनेन अन्येन वक्ता ॥ जेत्रेति ॥ जयसायनेत्यर्थः ॥ लुद्ध इति ॥ तयेव शक्क्या दारिद्यशक्क्ष्येव । ननु निश्चितम् । अत्र पूर्वार्थे लुद्धस्य दानाभावसाधकत्वाभिमतदारित्यशक्कारूपपूर्वपक्षनिरूपणम् । दानुतुत्तु सेव विरुद्धदानसाधकत्वेन संमतेति पूर्वविरुद्धपक्षनिरूपणमुत्तरार्थे । यद्यि दारिद्यस्य तात्कालिकत्वेन जन्मान्तरीयत्वेन च शक्का भिनातथाप्यभेदाध्यवसायान लक्षणासमन्वय इति बोध्यम् । सामान्यलक्षणं पूर्ववद्न्यतमत्वघटितमनुसंधेयमिति दिक् ॥ १०२ ॥ इति व्याघातालंकारः ॥ ४५ ॥

गुम्फ इति ॥ रचनेत्यर्थः । कैस्तत्राह—यथेति ॥ प्राक् च प्रान्तं च प्राक्पान्ते ते अनितक्रम्येति यथाप्राक्पान्तं यानि कारणानि तैः । पूर्वं पूर्वं प्रति कारणेक्तरोत्तरं प्रति कारणेश्वेत्यर्थः । एवं चोत्तरोत्तरेत्यादिन्युत्कमेणाभिधानमु-दाहरणक्रमानुरोधेनेति ज्ञेयम् ॥ १०३ ॥ इति कारणमालालंकारः ॥ ४६ ॥

१ 'यदा'. २ 'भवत्'.

कुवलयानन्दः । [ मालादीपकालंकारः ४८

एकावल्यलंकारः ४७

गृहीतमुक्तरीत्यार्थश्रेणिरेकावैलिर्मता । नेत्रे कर्णान्तविश्रान्ते कर्णौ दोस्तम्भदोलैनौ ॥ १०४॥ दोस्तम्भौ जानुपर्यन्तप्रलैम्यन्यनेहरौ ।

जानुनी रत्नमुकुराकारे तस्य हिं भूभुजः ॥ १०५ ॥ उत्तरोत्तरस्य पूर्वपूर्वविशेषणभावः पूर्वपूर्वस्थोत्तरोत्तरविशेषणभावो वा गृही-

तमुक्तरीतिः । तत्राद्यः प्रकार उदाहृतः । द्वितीयो यथा-

दिकालात्मसमेव यस्य विभुता यस्तत्र विद्योतते यत्रामुष्य सुधीभवन्ति किरणा राशेः स यासामभूत् । यस्तित्पत्तमुषःसु योऽस्य हविषे यस्तस्य जीवातवे वोढा यद्वणमेष मन्मथरिपोस्ताः पान्तु नो मूर्तयः ॥१०४॥१०५॥

मालादीपकालंकारः ४८

दीपकैकावलीयोगान्मालादीपकमिष्यते । सारेण हृदये तस्यास्तेन त्विय कृता स्थितिः ॥ १०६॥

अत्र स्थितिरिति पदमेकं सारेण तस्या हृदये स्थितिः कृता हृदयेन त्विय स्थितिः कृतेत्येवं वाक्यद्वयान्विय । अतो दीपकम् । गृहीतमुक्तरीतिसद्भावा-देकावली चेति दीपकैकावलीयोगः । यथावा—

गृहीतेति ॥ वक्ष्यमाणया गृहीतमुक्तरीत्या निवद्धार्थपिक्करेकाविठरलंकारः ॥ नेत्रे इति ॥ तस्य भूभुज इति सर्वत्र संवध्यते । दोल्तम्भयोर्भुजसम्भयोदीं ित्मान्दोलनं ययोस्तौ । दोलनाविति पाठे दोला दोलनं ययोर्स्तीति विद्रहः । रलमुकुरो रलदर्पणः ॥ दिक्कालेति ॥ दिकालात्मिभस्तुल्या यस्याकाशस्य विभुता । यश्च तत्राकाशे विशेषण द्योतते सूर्यः । यत्र च चन्द्रे अमुष्य सूर्यस्य किरणा अमृतह्मपा भवन्ति । स च चन्द्रो यासाममां राशेः समुद्रादभूत् । यश्चानिस्तासाममां पित्तं भवति । 'शुचिरिष्पत्तम्' इति कोशात् । यश्च यजमान उपः सुप्रातःकालेऽप्यस्य वहेईविषे हविद्याम्य भवति । यश्च वायुः प्राणह्मस्तस्य यजमानस्य जीवातवे जीवनौषधाय भवति । यस्याश्च पृथिव्या गुणं गन्धमेष वायुन्वांद्या ता मन्मथिरपोईरस्याष्टो मूर्तयो वो युष्मान्मान्त्वत्यन्वयः ॥१०४॥१०५॥ इस्रेकावल्यलंकारः ॥ ४७ ॥

माळादीपकिमिति ॥ माळादीपकं नामाळंकारः । एकिमिति वाक्यद्वयान्व-यीत्यनेनान्वितम् ॥ अत इति ॥ एतावन्मात्रेण दीपसाद्दयाद्दीपकं नतु प्रागुक्त-

१ 'वली मता'. २ 'दोलिती'. ३ 'प्रलम्बण'. ४ 'महीमुजः'. ५ 'मुच्यते'.

### सारालंकारः ४९ ] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

229

संग्रामाङ्गणमागतेन भवता चापे समारोपिते
देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यासमासादितम् ।
कोदण्डेन शराः शरेरिशिरस्तेनापि भूमण्डलं
तेन त्वं भवता च कीर्तिरतुला कीर्त्या च लोकत्रयम् ॥
अत्र येन येन सहसा यद्यत्समासादितमिति संक्षेपवाक्यस्थितमेकं समासादितपदं कोदण्डेन शरा इत्यादिषु पद्स्विप विवरणवाक्येषु तत्तदुचितिलङ्गवचनविपरिणासेनान्वेतीति दीपकम् । शरादीनामुत्तरोत्तरविशेपणभावादेकावली चेति दीपकैकावलीयोगः ॥ १०६॥

सारालंकारः ४९ उत्तरोत्तरमुत्कर्षः सार इत्यभिधीयते । मधुरं मधु तसाच सुधा तस्याः कवेर्वचः ॥ १०७॥

यथावा--

अन्तर्विष्णोखिलोकी निवसति फणिनामीश्वरे सोऽपि शेते
सिन्धोः सोऽप्येकदेशे तमपि चुलक्यां कुम्मयोनिश्वकार ।
धत्ते खद्योतलीलामयमपि नभसि श्रीनृसिंह क्षितीन्द्र
त्वरकीर्तेः कर्णनीलोत्पलमिदमपि च प्रेक्षणीयं विभाति ॥
अयं श्लाच्यगुणोत्कर्षः । अश्लाच्यगुणोत्कर्षां यथा—

तृणाल्लघुतरस्तूलस्तूलादपि च याचकः ।

वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं प्रार्थयेदिति ॥
उभयरूपो यथा—

गिरिर्महान्गिरेरविधर्महानव्धेर्नभो महत् । नभसोऽपि महद्रह्म ततोऽप्याशा गरीयसी ॥

दीपकालंकारः । प्रकृताप्रकृतानां साह्यस्य गम्यत्वे तदङ्गीकारादिति भावः ॥ संग्रामिति ॥ कोदण्डेन धनुषा शराः समासादिताः शरैः शत्रुमस्तकं समासादितो दितं तेन शत्रुमस्तकेनापि भूमण्डलं तेन भूमण्डलेन त्वं पालकः समासादितो भवता कीर्तिरासादिता कीर्स्या च लोकत्रयं समासादितमित्यनुषङ्गेणान्वयः ॥ १०६॥ इति मालादीपकम् ॥ ४८॥

सार इति ॥ सारो नामालंकारः । तस्याः सुधातः ॥ अन्तरिति ॥ वि-छ्णोरन्तरुदरे त्रयाणां लोकानां समाहारिश्वलोकी सोऽपि विष्णुरिप फिणनां ना-गानामीश्वरे शेषे शेते निदाति । सोऽपि शेषोऽपि सिन्धोरेकदेशे तिष्ठतीति शेषः । तमिप सिन्धुमपि कुम्भयोनिरगस्त्यश्चलकयांचकार पीतवान् । अयमग-स्त्योऽपि नमित गगने खद्योतशोमां धत्ते । इदं गगनमिप प्रेक्षणीयं सुन्दरं त्व-त्कीर्तेः कर्णभूषणं नीलोत्पलं विभातीत्यन्वयः । तूलः कार्पासः । प्रकृतार्थाशायां प्रकृतार्थह्मपायामाशायाम् ॥ १००॥ इति सारालंकारः ॥ ४८॥ कुवलयानन्दः । पर्यायालंकारः ५१

220

अत्र ब्रह्मपर्यन्तेषु महत्त्वं श्लाध्यगुणः । प्रकृतार्थाशायामश्लाध्यगुणः ॥ १०० ॥

यथासंख्यालंकारः ५०

यथासंख्यं क्रमेणेव क्रमिकाणां समन्वयः। शत्रुं मित्रं विपत्तिं च जय रद्धय भद्धय ॥ १०८ ॥

यथावा--

शरणं किं प्रपन्नानि विषवन्मारयन्ति वा । न त्यज्यन्ते न भुज्यन्ते कृपणेन धनानि यत् ॥ अमुं क्रमालंकार इति केचिंद्याजहुः ॥ १०८ ॥

पर्यायालंकारः ५१

पर्यायो यदि पर्यायेणैकस्थानेकसंश्रयः । पद्मं मुक्त्वा गता चन्द्रं कामिनीवर्दनोपमा ॥ १०९॥

अत्रैकस्य कामिनीवदनसाद्द्यस्य क्रमेण पद्मचन्द्ररूपानेकाधारसंश्रयणं पर्यायः । यद्यपि पद्मसंश्रयणं कण्ठतो नोक्तं तथापि पद्मं मुक्त्वेति तत्परित्या-गोक्तया प्राक् तत्संश्रयाक्षेपेण पर्यायनिर्वाहः । अतपुत्र—

> 'श्रोणीवन्धस्त्यजित तनुतां सेवते मध्यभागः पद्मां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्याम् । धत्ते वक्षः कुचसचिवतामद्वितीयं तु वक्रं देवद्गात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥'

यथासंख्यमिति ॥ कमिकाणां कमेणोक्तानां पदार्थानां तेनैव कमेणान्वयो यथासंख्यनामालंकारः ॥ शरणिमिति ॥ कृपणेन धनानि यत् न त्यज्यन्ते तर्तिक तानि शरणं प्रपन्नानि, यच न भुज्यन्ते तर्तिक विषवन्मारयन्तीति कमेणान्वयः । केचिद्वामनादयः ॥ १०८ ॥ इति यथासंख्यालंकारः ॥ ५०॥

पर्याय इति ॥ पर्यायेण कमेण । अनेकसंश्रयोऽनेकाश्रितत्वम् । तदुक्तम्— 'एवं कमेणानेकस्मिन्पर्यायः' इति ॥ पद्मिमिति ॥ रात्रौ पद्मसंकोचात्त्यागः । अतएव त्यागेन पूर्वसंश्रयणाक्षेपादेव ॥ श्रोणीिति ॥ जघनवन्धस्तनुतां कृदातां त्यजित । मध्यभागस्तां सेवते आश्रयित । वक्षःस्थलं कुचसचिवतां कुचसहितत्वं धत्ते । वक्षं त्वद्वितीयम् । अत्र पूर्वं वक्षसोऽद्वितीयत्वावगमात्पर्यायसंभवी क्षेत्रः । अद्वितीयत्वं द्वितीयरहितत्वमनुपमत्वं चैकत्वेनाध्यवसितम् । एवं चोदाहरणद्व-येऽपि पूर्वाधारसमाश्रयणं गम्यमुत्तराधारसमाश्रयणं शाब्दमिति । सर्वत्र सर्वा-

१ 'द्यवजहुः'. २ 'वदनप्रभा'.

पर्यायालंकारः ५१] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१२१

इ्स्रत्र पर्यायं काव्यप्रकाशकृदुदाजहार । सर्वत्र शाव्दः पर्यायो यथा—
नन्वाश्रयस्थितिरियं तव कालकृट
केंनोत्तरोत्तरविशिष्टपदोपदिष्टा ।
प्रागणवस्य हृदये वृपलक्ष्मणोऽथ
कण्ठेऽधुना वससि वाचि पुनः खलानाम् ॥
सर्वोऽप्ययं गुद्धपर्यायः । संकोचपर्यायो यथा—
प्रायश्चरित्वा वसुधामशेषां छायासु विश्रम्य ततस्तरूणाम् ।
प्रोहिं गते संप्रति तिग्मभानौ शैत्यं शनैरन्तरपामयासीत् ॥
अत्र शैत्यस्थोत्तरोत्तरमाधारसंकोचात्संकोचपर्यायः । विकासपर्यायो यथा—

विम्बोष्ट एव रागस्ते तन्वि पूर्वमदश्यत । अधुना हृद्येऽप्येष मृगशावाक्षि दृश्यते ॥ अत्र रागस्य पूर्वाधारपरित्यागेनाधारान्तरसंक्रमणमिति विकासपर्याय: १०९

> एकस्मिन्यद्यनेकं वा पर्यायः सोऽपि संमतः। अधुना पुलिनं तत्र यत्र स्रोतः पुराजिन ॥ ११०॥

यथावा--

पुराभूदस्माकं प्रथममविभिन्ना तनुरियं ततो नु त्वं प्रेयान्वयमपि हताशाः प्रियतमाः ।

धारसमाश्रयणांशे ॥ निन्वति ॥ हे कालकृट, उत्तरोत्तरविशिष्टमुत्कृष्टं पदं स्थानं यस्यां तादशी इयमाश्रयस्थितिस्तव केनोपिदष्टेल्यन्वयः । हृदयेऽभ्यन्तरे । अवस इति शेपः । अथानन्तरं वृषलक्ष्मणो हरस्य कण्ठे । अधुना पुनरिति संबन्धः । ग्रुद्धः संकोचविकासामिश्रितः ॥ प्राय इति ॥ शैलं प्रायोऽशेषां वसुधां हेमन्ते चरित्वा ततो वसन्ते तरूणां छायासु विश्रम्य संप्रति प्रीष्मे तिगमभानी सूर्थे प्रौढिं प्रागल्भ्यं प्राप्ते सति शनैरपां जलानामन्तरमभ्यन्तरे अयासीत् गच्छित स्मेखर्थः ॥ विस्वोष्ट एवेति ॥ विस्वफलसदशे ओष्टे । रागो रक्तिमा अनुरागश्च । एष रागः । अत्र रागस्य भेदेऽप्यभेदाध्यवसायादेकत्वम् । यत्त एकसंबन्धनाशोत्तरमपरसंबन्धे सत्येव लोके पर्यायपदप्रयोगाच्छोणीबन्ध इति प्रकाशोदाहृते तथैव दृष्टत्वाच विम्बोष्ट एवेत्यत्र पर्यायकथनम्युक्तमिति केनचिदुक्तं तत्प्रकाश एव विम्बोष्ट इत्युदाहरणे पर्यायसमर्थनाद्धान्तप्रलपनिम-वोपेक्षणीयम् । आलंकारिकपरिभाषितानां शब्दानां लोकव्यवहारविसंवादस्यार्कि-चित्करत्वाचेति दिक् ॥ १०९ ॥ भेदान्तरमाह—एकस्मिन्निति ॥ पर्यायेणे-त्यनुवर्तते । एकस्मिनाधारे कमेण यद्यनेकं भवति सोऽपि, पर्यायालंकारः संमत इल्पर्थः ॥ प्रेति ॥ अस्माकमिति 'अस्मदो द्वयोश्व' इति द्वयोरिप वहुवचनम् । पुरेखनेन स्थूलोऽतीतकाल उच्यते । तत्रापि प्रथमं तनुरविभिन्नाभूत् । ततो

१ 'श्रोतः'.

कुवलयानन्दः । [ परिसंख्यालंकारः ५३

इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं हतानां प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम् ॥ अत्र दम्पत्योः प्रथममभेदस्ततः प्रेयसीप्रियतमभावस्ततो भार्यापतिभाव इत्याधेयपर्यायः॥ ११०॥

> परिवृत्त्यलंकारः ५२ परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथः । जग्राहैकं शरं मुक्त्वा कटांक्षात्स रिपुश्रियम् ॥ १११॥

यथावा---

तस्य च प्रवयसो जटायुपः स्वर्गिणः किमिव शोच्यतेऽधुना । येन जर्जरकलेवरव्ययात्क्रीतमिन्दुकिरणोजवलं यशः ॥ १११ ॥

परिसंख्यालंकारः ५३ परिसंख्या निषिध्यैकमेकस्मिन्वस्तुयत्र्रणम् । स्रोहक्षयः प्रदीपेषु न स्वान्तेषु नतभ्रुवाम् ॥ ११२ ॥

यथावा---

विलङ्घयन्ति श्रुतिवर्त्म यस्यां लीलावतीनां नयनोत्पलानि । विभर्ति यस्यामपि विक्रमाणमेको महाकालजटार्धचन्द्रः॥ आद्योदाहरणे निषेधः शाब्दो द्वितीये त्वार्थः॥ ११२॥

नु वितर्के । त्वं प्रियतमः वयं प्रियतमाः । इदानीं तु त्वं नाथः पितः वयं भार्याः । इतोऽपरं किमिष्टमिति शेषः । कुलिशं वज्रम् । अत्र त्वं प्रेयानित्येकवचने-न एकरूपप्रेमपात्रत्वं व्यज्यते । प्रियतमा इत्यादिवहुवचनेनानेकरूपतस्मितिरेक इति बोध्यम् ॥ ११० ॥ इति पर्यायालंकारः ॥ ५१ ॥

परिवृत्तिरिति ॥ न्यूनाधिकयोर्मिथः परस्परं विनिमयः परिवृत्तिरलंकारः ॥ जग्राहेति ॥ कटाक्षपूर्वकमेकं शरं मुक्त्वा रिपोः श्रियं जग्राहेत्यर्थः ॥ तस्य चेति ॥ प्रवयसो वृद्धस्य जटायुषो गृध्रविशेषस्य स्वर्गे गतवतः किमिव शोचनीयं न किंचित् । जर्जरं जीर्णतरं कलेवरं शरीरं तस्य व्ययो रावणेन सह युद्धे स्यागस्तस्माद्यशः क्रीतम् । शरीरं दत्वा यशो गृहीतमित्यर्थः ॥ १९९ ॥ इति परिवृत्त्यलंकारः ॥ ५२ ॥

परिसंख्येति ॥ एकं वस्तु प्रतिषिध्यापरिसम्बस्तुनो नियन्त्रणं नियमनं परिसंख्यालंकारः ॥ स्नेहिति ॥ स्नेहसैलादिक्षिग्धद्रव्यमनुरागश्च । स्वान्तेषु चि-तेषु ॥ विळङ्कयन्तीति ॥ यस्यामुज्जियनीपुर्याम् । श्रुतिः कर्णी वेदश्च । वर्षे

१ 'कटाक्षान्स'. २ 'रिपुक्तियाम्'.

विकल्पालंकारः ५४ विरोधे तुल्यवलयोर्विकल्पालंकृतिर्मता । सद्यः शिरांसि चापान्वा नमयन्तु महीभ्रजः ॥ ११३॥

अत्र संधिविप्रहप्रमाणप्राप्तयोः शिरश्चापनमनयोर्युगपदुपस्थितयोर्युगपत्क-र्तुमशक्ययोर्विकल्पः । यथावा—

> पतत्यविरतं वारि नृत्यन्ति च कलापिनः । अद्य कान्तः कृतान्तो वा दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥

त्रियसमागमश्रेन्न मरणमाशंसनीयं मरणे तु न त्रियसमागमसंभव इति तयोराशंसायां विकल्पः ॥ ११३ ॥

#### समुचयाळंकारः ५५

वहूनां युगपद्भावभाजां गुम्फः सम्रचयः । नश्यन्ति पश्चात्पश्यन्ति त्रस्यन्ति च भवद्विपः ॥११४॥

अविरोधेन संभावितयौगपद्यानां नाशादीनां गुम्फनं समुचयः । यथावा-बिश्राणा हृदये त्वया विनिहितं प्रेमाभिधानं नवं शल्यं यद्विदधाति सा विधुरिता साधो तदाकण्यंताम् । शेते शुष्यति ताम्यति प्रलपति प्रम्लायति प्रेञ्चति आम्यत्युख्ठति प्रणश्यति गल्त्युन्मुर्च्छति त्रुट्यति ॥

अत्र कासांचित्कियाणां किंचित्कालभेदसंभवेऽपि शतपत्रपत्रशतभेदन्या-येन यौगपद्यं विरहातिशयद्योतनाय विवक्षितमिति लक्षणानुगतिः॥ ११४॥

मार्गे विक्रमाणं कौटिल्यं वकाकारतां च । महाकाल इति तत्रेव ख्यातं शिवलि-क्रम् ॥ ११२ ॥ इति परिसंख्यालंकारः ॥ ५३ ॥

संधिविग्रहप्रमाणेति ॥ संधिविग्रहयोः कर्तव्यताबोधकप्रमाणेत्यर्थः॥११३॥ इति विकल्पालंकारः ॥ ५४ ॥

बहुनामिति ॥ युगपद्भावो भवनं तद्भाजां वहूनां गुम्फो निवन्थः। वर्णन-मिति यावत्। स समुच यालंकारः॥ विभ्राणिति ॥ नायकं प्रति दूला इयमुक्तिः। हे साधो, त्वया हदये विनिहितं प्रेमाभिधानं नवं शल्यं धारयन्ती विधिरता वि-रहविह्वला सा नायिका यद्विद्धाति तदाकर्ण्यतामित्यन्वयः। किं तदित्यपेक्षाया-माह—शेते निद्राति। ताम्यति ग्लानि प्राप्नोति। प्रकर्षेण म्लायति। प्रेक्कृति चलति प्रणश्यति। नैर्वल्यातिशयेन मृतप्राया भवति। गलति खेदा-तिशयात्। तुष्यति क्षीणा भवतीति। कासांचिच्छयनभ्रमणादीनाम्। शत-

१ 'द्वाजां भावगुम्फः'. २ 'अश्यन्ति च तव द्विषः'.

कुवलयानन्दः । [ कारकदीपकालंकारः ५६

अहं प्राथमिकाभाजामेककार्यान्वेयेऽपि सः ।

कुलं रूपं वयो विद्या धनं च मद्यन्त्यमुम् ॥ ११५॥

यत्रैकः कार्यसिद्धिहेतुत्वेन प्रकानतस्तत्रान्येऽपि यद्यहमहमिकया खलेकपोतन्यायेन तिसाद्धिं कुर्वन्ति सोऽपि समुचयः । यथा मदे आभिजात्यमेकं
समग्रं कारणं ताहगेव रूपादिकमपि तत्साधनत्वेनावतरतीति ।

यथावा---

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते संभ्रमविधि-निरुत्सेको लक्ष्म्यामनिभमवगन्धाः परकथाः । प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः श्रुतेऽत्यन्तासक्तिः पुरुपमभिजातं कथयति ॥ ११५॥

कारकदीपकालंकारः ५६

क्रमिकैकगतानां तु गुम्फः कारकदीपकम् । गच्छत्यागच्छति पुनः पान्थः पश्यति पृच्छति ॥११६॥

यथावा---

निद्राति स्नाति भुक्के चलति कचभरं शोषयत्यन्तरास्ते दीव्यत्यक्षेने चायं गदितुमवसरो भूय आयाहि याहि । इत्युद्ण्डैः प्रभूणामसकृद्धिकृतैर्वारितान्द्रारि दीना-नस्मान्पश्याव्धिकन्ये सरसिरुहरुचामन्तरङ्गेरपाङ्गैः ॥

पत्रस्य कमलस्य पत्रशतं दलशतम् ॥ ११४ ॥ अहंप्राथिमकेति ॥ अहंपूर्विकेत्यर्थः । 'अहं पूर्वमहं पूर्विमित्यहंपूर्विका स्त्रियाम्' इत्यमरः । एककार्यान्वये
एककार्यसाधकत्वे । स समुचयालंकारः । अहमहिमिकया परस्पराहंकारेण ।
आभिजात्यं कुलीनत्वम् । समग्रं पुष्कलम् ॥ प्रदानिमिति ॥ प्रच्छत्रं ग्रुप्तं ग्रहं
प्रत्युपगतेऽर्थादतिथो । लक्ष्म्यां सत्यां निरुत्सेको गर्वाभावः । अभिभवो निन्दा
तद्गन्थश्चन्याः । मौनमनुद्धाटनम् । सदिस सभायां परेण कृताया उपकृतेः
कथनम् । श्रुते शास्त्रश्चर्यो । सर्वप्रथमान्तानां पुरुषमभिजातं प्रथयतीत्यनेनान्वयः ।
अभिजातं कुलीनम् । प्रथयति कथयति ॥ ११५ ॥ इति समुचयालंकारः॥५५॥

क्रिमिकेति ॥ क्रिमिकाणामर्थात्कियाणामेककारकगतानां गुम्को निवन्धः कार-कदीपकं नामालंकारः । तदुक्तम्—'सैव कियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम्' इति । सैव सकृदृत्तिः । पश्यति सार्थम् । प्रच्छति मार्गम् ॥ निद्रातीति ॥ हे अब्धिकन्ये, प्रभूणामुद्यतदण्डेर्द्वारि अधिकृतेर्द्वारपालैरित्यसकृद्वारितान् अतएव दीनानस्मान्सरसीरुह्युतीनां परमपरिचितैरपाङ्गेः कटाक्षैः पश्येत्यन्वयः । इति किम् । प्रभुनिदातीत्यादि । अन्तः अन्तः पुरे । अक्षैः पाशैर्दाव्यति क्रीडति।

१ 'प्रथमिका'. २ 'न्वयोऽपि'. ३ 'शीलं'.

## प्रत्यनीकालंकारः ५८] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१२५

आद्योदाहरणे श्रुतस्य पान्थस्य कर्तृकारकस्थेकस्य गमनादिष्वन्वयः, द्वितीये त्वध्याहृतस्य प्रभुकर्तृकारकस्य निद्गादिष्वन्वय इत्येकस्यानेकवाक्यान्वयेन दी-पकच्छायापस्या कारकदीपकं प्रथमसमुचयप्रतिद्वन्द्वीदम् ॥ ११६ ॥

समाध्यलंकारः ५७

समाधिः कार्यसौकर्यं कारणान्तरसंनिधेः । उत्कण्ठिता च तैरुणी जगामास्तंच भानुमान् ॥११७॥

यथावा---

मानमस्या निराकर्तुं पादयोर्मे पतिष्यतः । उपकाराय दिष्टयैतदुदीणं घनगर्जितम् ॥

केनचिदारिष्सितस्य कार्यस्य कारणान्तरसंनिधानाद्यत्सौकर्यं तत्सम्यगा-धानात्समाधिः । द्वितीयसमुचयप्रतिद्वन्द्वी अयं समाधिः । तत्र बहूनां प्रत्येकं समर्थानां खलेकंपोतिकान्यायेन युगपत्कार्यसाधनत्वेनावतारः । अत्र त्वेकेन कार्ये समारिष्सितेऽन्यस्य काकतालीयन्यायेनापतितस्य तत्सौकर्याधायकत्व-मात्रम् । अत्रोदाहरणमुत्कण्ठितेति । उत्कण्ठैव प्रियाभिसरणे पुष्कलं कारणं नान्धकारागममपेक्षते 'अत्याख्डो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः' इति न्यायात् देवादापतता त्वन्धकारेण तत्सौकर्यमात्रं कृतमिति । एवं द्वितीयो-दाहरणेऽपि योज्यम् ॥ ११७ ॥

#### प्रत्यनीकालंकारः ५८

प्रत्यनीकं वलवतः शत्रोः पक्षे पराक्रमः । जैत्रनेत्रानुगौ कर्णावुत्पलाभ्यामधःकृतौ ॥ ११८ ॥

भूयः पुनः । छायासादृश्यं मुख्यदीपकस्य पूर्वोक्तप्रकारेण संभवादिति भावः । प्रतिद्वन्द्वि विपरीतम् ॥ ११६ ॥ इति कारकदीपकालंकारः ॥ ५६ ॥

समाधिरिति॥ कारणान्तरसंनिधेर्वशात्कार्यस्य सुकरत्वं समाधिरलंकारः । उत्कण्ठिता नायकसमीपं गन्तुम् ॥ मानमिति ॥ मानं निराकर्तुमस्याः पादयोः पितिष्यतो ममोपकाराय दिष्ट्या भाग्येनेदं घनगर्जितसुदीर्णसुद्रतिमत्यन्वयः। ससु-चये कारणानां तुल्यकक्षत्विमह तु तिद्विपरीतमतुल्यकक्षत्विमिति प्रतिद्विन्द्वत्वं तत्रे-त्यादिना दर्शितम् ॥ १९७॥ इति समाध्यलंकारः ॥ ५७॥

प्रत्यनीकमिति ॥ बलवतः शत्रोः पक्षे पक्षान्तःपातिनि तदीये यः परा-कमस्तत्प्रत्यनीकं नामालंकारः । अनीकप्रतिनिधिरूपत्वात् ॥ जैत्रेति ॥ उत्प-लाभ्यां खजयकारिनेत्रानुसारिणौ कर्णावधःकृतौ तिरस्कृतौ । अवतंसतया तदु-

१ 'कुलटा'. २ 'वृद्धा युवानः शिशवः कपोताः खले यथामी युगपत्पतन्ति' इत्येनेन.

१२६

यथावा---

मम रूपकीर्तिमहरद्भवि यस्तद्नु प्रविष्टहृद्येयमिति ।
त्विय मत्सरादिव निरस्तद्यः सुतरां क्षिणोति खळु तां मदनः ॥
एवं बलवित प्रतिपक्षे प्रतिकर्तुमशक्तस्य तदीयबाधनं प्रत्यनीकमिति स्थिते साक्षात्प्रतिपक्षे पराक्रमः प्रत्यनीकमिति केमुतिकन्यायेन फलति । यथामधुवतौद्यः कुपितः स्वकीयमधुप्रपापद्मनिमीलनेन ।
विम्बं समाक्रम्य बलात्सुधांशोः कलङ्कमङ्के ध्रुवमातनोति ॥ ११८ ॥

अर्थापत्त्यलंकारः ५९ कैम्रुत्येनार्थसंसिद्धिः काव्यार्थापत्तिरिष्यते । स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः का वार्ता सरसीरुहाम् ॥११९॥

अत्र स इत्यनेन पद्मानि येन जितानि इति विविक्षितं, तथाच सोऽपि येन जितस्तेन पद्मानि जितानीति किमु वक्तव्यिमिति दण्डापूपिकान्यायेन पद्मरूष्पत्मार्थस्य संसिद्धिः काव्यार्थापत्तिः। तान्त्रिकाभिमतार्थापत्तिव्यावर्तनाय काव्येति विशेषणम्। यथावा—

अधरोऽयमधीराक्ष्या वन्युजीवप्रभाहरः। अन्यजीवप्रभां हन्त हरतीति किमद्भतम्॥

परि स्थितत्वाद्धसात्कृतौ चेति श्लेषः ॥ ममेति ॥ भुवि भूलोके मम रूपख्यातिं यो हतवान् तस्मिन्ननुप्रविष्टमनुरक्तं हृदयं यस्याः तस्यानुप्रविष्टं हृदयं यस्यां
वा तादृगियमिति त्विय मत्सरादिव खल्ल निश्चितं निरस्तद्यो मदनस्तां क्षिणोति
क्षीणां करोतीत्यन्वयः । अत्र मत्सरादिवेति हेत्वंशे उत्प्रेक्षासत्त्वेऽि तद्धेतुकप्रतिपक्षसंविध्वाधनं प्रत्यनीकालंकारस्य विविक्तो विषय इति वोध्यम् । अतएव
मम्मटभट्टैरिप—'त्वं विनिर्जितमनोभवरूपः सा च सुन्दर भवत्यनुरक्ता । पञ्चभिर्युगपदेव शरैस्तां तापयत्यनुश्यादिव कामः ॥' इत्युदाहृतम् । एवंच हेत्दूप्रेक्षयेव गतार्थत्वान्नेदमलंकारान्तरं भिवतुमर्हतीति कस्यचिद्वचनमनादेयम् ॥
केमुतिकिति ॥ तत्संविध्वाधनापेक्षया साक्षात्तद्वाधने विशेषादिति भावः ॥
मिच्चिति ॥ भ्रमरौधः खकीयमधुप्रपारूपस्य पद्मस्य निमीलनेन कुपितः सन्
सुधांशोविंम्वं बलात्समाकृष्य तस्याङ्के मध्यभागे कलङ्कं ध्रुवमातनोतीत्यन्वयः
॥ ११८ ॥ इति प्रत्यनीकालंकारः ॥ ५८ ॥

केमुत्येनेति ॥ कैमुलन्यायेनेल्यः । काव्येऽलंकाररूपार्थापत्तः काव्यार्था-पत्तः ॥ दण्डापूपिकेति ॥ दण्डाकर्षणे तदवलिम्बनामपूपानामाकर्षणं यथा-र्थितिद्धं तद्वित्थर्थः ॥ व्यावर्तनायेति ॥ लक्ष्यतावारणायेल्ययः ॥ अधरो-ऽयमिति ॥ वन्धुजीवं वन्धूकपुष्पं तत्प्रभाहरो वन्धुभूतानां जीवानां प्रभाहरश्च यत्त्वेतल्लक्षणमयुक्तम् । कैमुतिकन्यायस्य न्यूनार्थविषयत्वेनाधिकार्थापत्तावव्या-सेः । यथा—'तवाप्रे यदि दारिद्यं स्थितं भूप द्विजन्मनाम् । शनैः सवितुर्प्यप्रे

## काव्यलिङ्गालंकारः६०] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१२७

स्वकीयं हृद्यं भिष्वा निर्गतौ यौ पयोधरौ । हृद्यस्यान्यदीयस्य भेदने का कृपा तयोः ॥ ११९ ॥

काव्यळिङ्गालंकारः ६०

समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्गं समर्थनम् । जितोऽसि मन्द कन्दर्प मिचेत्तेऽस्ति त्रिलोचनः ॥१२०॥

अत्र कन्दर्पजयोपन्यासो दुष्करविषयःवात्समर्थनसापेक्षः । तस्य मचित्ते-ऽस्ति त्रिलोचन इति स्वान्तःकरणे शिवसंनिधानप्रदर्शनेन समर्थनं काव्यलि-क्रम् । व्याप्तिधर्मतासापेक्षनैयायिकलिक्वव्यावर्तनाय काव्यविशेषणम् । इदं वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिक्नम् । पदार्थहेतुकं यथा—

> भसोदृष्टन भद्रमस्तु भवते रुद्राक्षमाले शुभं हा सोपानपरम्परे गिरिसुताकान्तालयालंकृते ।

तमः स्थास्यत्यसंशयम् ॥' अत्र शनैःशब्दमहिम्रा राजाप्रे दारिद्यस्थित्यपेक्षया सूर्याप्रे तमोऽवस्थानं दुःशकमेवेत्यवगतमिष न्यायसाम्यादापद्यते । ननु कैमुति-कन्यायेनेति केनिचदुक्तं तत्रेदं वक्तव्यम् । केनिचद्र्येन तुत्यन्यायत्वादर्थान्तर-स्यापित्तर्थापित्तरिति तदुक्तलक्षणमयुक्तम् । का वार्ता सरसीहहामित्यादिकेमुन्त्यन्यायविषयार्थापत्तावव्याप्तेः । कैमुतिकन्यायस्य न्यूनार्थविषयत्वेन तुत्यन्या-यत्वाभावादापादनाप्रतीतेश्वेति । न चात्र कैमुत्यन्यायतामात्रं न त्वलंकारत्विमिति युक्तम्, अलंकारतत्त्वाभियुक्तानां प्राचीनानां श्रून्यहृद्यताया अपामरेण संभावियुम्पशक्यत्वात् । लोकव्यवहारेऽिष कैमुत्यन्यायस्य चमत्कारित्वानुभवेन तेनेव न्यायेन तस्यालंकारतासिद्येश्व । इत्यंच त्वदुक्तार्थापत्त्यद्वाहरणे वक्ष्यमाणः संभावनालंकारो योऽन्यर्थद्यर्थोक्तो च कल्पनमिति यद्यर्थातिशयोक्तित्वेनोक्तः । यद्यर्थातिशयोक्तावापाद्यापादकयोर्विपरीतार्थविश्वान्तत्वम्, इह त्वापादकस्य सिद्धत्वमापाद्यस्य संभाव्यमानत्विमिति वैचित्र्यं तु तद्वान्तरभेदतायाः साधकं न तु तद्वहिर्भूतताया इति न तत्राव्याप्तिशङ्कापीत्यलं विस्तरेण ॥ १९९ ॥ इत्यर्था-पत्त्यलंकारः ॥ ५९ ॥

समर्थनीयस्येति ॥ समर्थनापेक्षस्यार्थस्य समर्थनं काव्यिलङ्गमलंकारः । अर्थान्तरन्यासवारणाय समर्थनापेक्षस्येति । यदा त्वर्थान्तरन्यासप्रकरणे वक्ष्यमाण्यास्य समर्थनापेक्षस्येति । यदा त्वर्थान्तरन्यासप्रकरणे वक्ष्यमाण्यास्य सामान्यविशेषभावातिरिक्तत्वं निवेदयते तदा नोपादेयमेवैतदितिबोध्यम् । दुष्करविषयत्वात् दुष्करविषयरूपत्वात्समर्थनापेक्षस्येत्वनन्तरमर्थस्येतिशेषः ॥ नेयायिकेति ॥ नैयायिकाभिमतिलङ्गस्य लक्ष्यतावारणायेत्वर्थः ॥ भस्मेति ॥ भसोद्वलनेति संवोधनम् । द्यभमित्विति शेषः। गिरिस्ताकान्तस्य शिवस्यालयः प्रासादस्तदलंकारभूते सोपानपङ्के इत्यपि संवोधनम् । हेति दैन्ये । विभुना प्रभुणा शिवेन । युष्माकं या सपर्या पूजा तत्सुखस्यालोकः प्रकाशस्तदुच्छेदके

अद्याराधनतोषितेन विभुना युष्मत्सपर्यासुखा-लोकोच्छेदिनि मोक्षनामनि महामोहे निलीयामहे ॥

अत्र मोक्षस्य महामोहत्वमप्रसिद्धमिति तत्समर्थने सुखालोकोच्छेदिनीति पदार्थो हेतुः । कचित्पदार्थवाक्यार्थौ परस्परसापेक्षौ हेतुभावं भजतः । यथावा—

चिकुरप्रकरा जयन्ति ते विदुषी मूर्धनि यान्विभर्ति सा। पशुनाप्यपुरस्कृतेन तत्तुलनामिच्छतु चामरेण कः॥

अत्र चामरस्य दमयन्तीकुन्तलभारसाम्याभावे विदुषी मूर्धनि यान्विभ-तिं सेति वाक्यार्थः, पशुनाष्यपुरस्कृतेनेति पदार्थश्चेत्युभयं मिलितं हेतुः । कचित्समर्थनीयार्थसमर्थनार्थे वाक्यार्थे पदार्थो हेतुः ॥

> वपुःप्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा पुरारे न कापि कचिदपि भवन्तं प्रणतवान् । नमन्मुक्तः संप्रेत्यहमतनुरग्रेऽप्यनतिमा-नितीश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि ॥

अत्र तावद्पराधद्वयं समर्थनीयम् । अस्पष्टार्थत्वात् । तत्समर्थनं च पूर्वा-परजन्मनोरनमनाभ्यां वाक्यार्थभूताभ्यां क्रियते । अत्र द्वितीयवाक्यार्थेऽत-जुत्वमेकपदार्थों हेतुः । अत्रापि संप्रति नमन्मुक्त इति वाक्यार्थोऽनेकपदार्थों वा हेतुः । क्रचित्परस्परविरुद्धयोः समर्थनीययोरुभयोः क्रमादुभौ हेतुभावं भजतः ॥

> असोढा तत्कालोल्लसदसहभावस्य तपसः कथानां विसम्भेष्वथ च रसिकः शैलदुहितुः। प्रमोदं वो दिश्यात्कपटबदुवेषापनयने त्वराशैथिल्याभ्यां युगपदिभयुक्तः स्मरहरः॥

निलीयामहे । वयमित्यर्थात् ॥ चिकुरिति ॥ चिकुरप्रकराः केशपाशाः । विदुषी पण्डिता । सा दमयन्ती । अपुरस्कृतेनानाद्देन पुरोभागेऽनिहितेन च । पदार्थिथानेकपदार्थथ ॥ वपुरिति ॥ पुरा पूर्वस्मिन्कापि जन्मनि कचिदपि क्षणे भवन्तं न प्रणतवान् । इतीदं वपुषः शरीरस्य प्रादुर्भावादनुमितम् । संप्रति नमन्नतिं कुर्वन्मुक्तः । अतनुरशरीरः । अतोऽहमप्रेऽप्यनतिमान्नतिरहितः ॥ अत्रेति ॥ समर्थनीयं हेतुकथनेनोपपादनीयम् । अस्पष्टार्थत्वादस्पष्टहेतुकत्वात् । अन्नानयोर्वाक्यार्थयोर्भध्ये द्वितीयवाक्यार्थे अप्रेऽप्यनतिमानिति वाक्यार्थे । अन्न्राप्यतनुत्वेऽपि । नमन्मुक्त इत्यस्यावाक्यत्वादाह—अनेकपदार्थो वेति ॥ अस्पोढिति ॥ तपस्यन्तीमुमां प्रति वद्ववेषेणागतस्य हरस्य वर्णनम् । कपटेन यो वटोर्बद्धाचारिणो वेषस्तस्यापनयने त्यागे त्वराशैथिल्याभ्यां युगपदिभयुक्त आकान्तः । त्वराशैथिल्यहेतुगर्भे कमेण विशेषणद्वयमाह । तत्काले उल्लसन्प्रादु-

१ 'संप्रत्यतनुरहमये'.

अत्र शिवस्य युगपत्कृत्रिमत्रहाचयेवेपापनयनत्वरातदनुवर्तनेच्छयोर्विर-द्वयोः क्रमाद्गिरिजातीत्रतपसोऽसिहण्णत्वं तत्संलापकौतुकं चेत्युभावयौं हेतु-त्वेन निवद्धौ । क्रचित्परस्परविरुद्धयोरुभयोः समर्थनीययोरेक एव हेतुः। यथा—

जीयादम्बुधितनयाधररसमास्वादयन्मुरारिरयम् ।
अम्बुधिमथनहेशं कलयन्विफलं च सफलं च ॥
अत्र विफल्टवसफल्टवकल्नयोरुभयोविरुद्धयोरेक एवाम्बुधितनयाधररसास्वादो हेतुः । इदं काव्यलिङ्गं हेत्वलंकार इति केचिद्ध्याजहुः ॥
हे गोदावरि देवि तावकतटोदेशे कलिङ्गः कविवाग्देवीं बहुदेशदर्शनसर्खी त्यक्त्वा विरक्तिं गतः ।
एनामर्णवमध्यसुसमुरभिन्नाभीसरोजासनं
बह्याणं गमय क्षितौ कथमसावेकािकनी स्थास्यति ॥

इत्यत्र ब्रह्मणः प्रापणं कथं गोदावर्या कर्तव्यमित्यसंभावनीयार्थोपपादक-स्याणवमध्येत्यादितद्विशेपणस्य न्यसनं श्रेपाख्यो गुण इति 'श्रेपो विघटमा-नार्थघटकार्थस्य वर्णनम्'इति श्रेपछक्षणमिति च जयदेवेनोक्तम् । वस्तुतस्त्व-त्रापि पदार्थहेतुकं काव्यछिङ्गमेव तद्वेदकाभावात् । ननु साभिप्रायपदार्थवा-क्यार्थविन्यसनरूपात्परिकरात्काव्यछिङ्गस्य किं भेदकम् । उच्यते । परिकरे पदार्थवाक्यार्थवछात्प्रतीयमानार्थों वाच्योपस्कारकतां भजतः । काव्यछिङ्गे तु पदार्थवाक्यार्थवछात्प्रतीयमानार्थों वाच्योपस्कारकतां भजतः । काव्यछिङ्गे तु पदार्थवाक्यार्थवेव हेतुभावं भजतः । ननु यद्यपि सुखावछोकोच्छेदिनीत्या-दिपदार्थहेतुककाव्यछिङ्गोदाहरणे 'अग्रेऽप्यनतिमान्' इत्यादिवाक्यार्थहेतुक-काव्यछिङ्गोदाहरणे च पदार्थवाक्यार्थावेव हेतुभावं भजतस्त्रधापि पशुनाप्य-पुरस्कृतेनेति पदार्थहेतुकोदाहरणे मचित्तेऽस्ति त्रिछोचन इति वाक्यार्थहेतु-कोदाहरणे च प्रतीयमानार्थस्यापि हेतुकोट्यनुप्रवेशो दृश्यते । पशुनेति द्यवि-

भैवन्नसहभावो दुःसहत्वमर्थाद्रौर्या यस्य तादृशस्य तपसः असोढा सहनासमर्थः शैलकन्यायाः कथानां विसम्भेषु विश्वासेषु रसिकश्चेति । ब्रह्मचर्यं ब्रह्मचारिवेषः॥ जीयादिति ॥ अम्बुधेस्तनयाया लक्ष्म्या अधररसमास्वाद्यत्रयं मुरारिर्जीया-त्सर्वोत्त्रकर्षेण वर्तताम् । कीदृशः । समुद्रमथनक्षेशमेवंविधाङ्गनालाभात्सफलं कलयन् जानन् एतद्धरमाधुर्ये सल्यमृतस्य वैयर्थ्याद्विफलं च कलयन्नित्यर्थः ॥ हे गोदावरीति ॥ अत्राणवमध्येत्यादिब्रह्मविशेषणस्य न्यसनं श्रेषाख्यो गुण इति जयदेवेनोक्तमित्यन्वयः । तावकतटोदृशे त्वदीयतीरभूमौ कलिङ्गाख्यः किवर्वद्वनां देशानां दर्शने सहचारिणीम् । विरक्तिं मुक्तिम् । एनां सरस्वतीं ब्रह्माणं प्रति गमय नयेति संवन्धः । कीदृशं । अर्णवमध्ये मुप्तो यो मुर्गिन्मुरारिस्तनाभिकमलस्यम् । श्रेषोऽविघटमानेत्यत्राकारप्रश्रेषः । अविघटमानस्यार्थस्य घटक उपपादको योऽर्थस्तस्य वर्णनं श्रेषाख्यो गुण इत्य-र्थः । पदार्थहेतुकं समस्तपदार्थहेतुकम् । पदार्थवाक्यार्थिति द्वन्द्वः । प्रतीयमानो-

वेकित्वाभिप्रायगर्भम् । विदुपीत्यस्य प्रतिनिर्देश्यत्वाचिछोचन इति च कन्द-पदाह्कतृतीयलोचनत्वाभिप्रायगर्भे कन्द्रपेजयोपयोगित्वात्तस्य । सत्यम् । तथापि न तयोः परिकर एव किंतु तदुत्थापितं काव्यिकङ्गमि ॥

प्रतीयमानाविवेकविशिष्टेन पशुनाप्यपुरस्कृतत्वस्यानेकपदार्थस्य प्रतीयमान्तकन्दर्पदाहकृत्तीयलोचनविशिष्टस्य शिवस्य चित्ते संनिधानस्य च वाक्यार्थस्य वाच्यस्यैव हेतुभावात् । निह तयोर्वाच्ययोर्हेतुभावे ताभ्यां प्रतीयमानं मध्ये किंचिद्वारमस्ति । यथा सर्वाशुचिनिधानस्येखादिपदार्थपरिकरोदाहरणे सर्वाशुचिनिधानस्येखादिनानेकपदार्थेन प्रतीयमानं शरीरस्यासंरक्षणीयत्वम्। तथाच वाक्यार्थपरिकरोदाहरणे पर्यायोक्तविधया तत्तद्वाक्यार्थेन प्रतीयमानं नाहं व्यास इखादि तस्मात्पशुनेत्यत्र त्रिलोचन इत्यत्र च प्रतीयमानं वाच्यस्येव पदार्थस्य वाक्यार्थस्य च हेतुभावोपपादकतया काव्यलिङ्गस्याङ्गमेव । यथा—'यत्वक्रेत्रसमानकान्ति सिलले मग्नं तदिनदीवरम्' इत्यनेकवाक्यार्थहेतुककाव्यलिङ्गोदाहरणे त्वक्रेत्रसमानकान्तीत्यादिकानि इन्दीवरशिशहंसविश्रोपणानि तेषां वाक्यार्थानां हेतुभावोपपादकानीति । तत्र वाक्यार्थहेतुककाव्यलिङ्गोदाहरणे त्वक्रेत्रसमानकान्तीत्यादिकानि इन्दीवरशिशहंसविश्रोपणानि तेषां वाक्यार्थानां हेतुभावोपपादकानीति । तत्र वाक्यार्थहेतुककाव्यलिङ्गे पदार्थहेतुकाव्यलिङ्गमङ्गमिति न तयोः काव्यलिङ्गोदाहरणत्वे काचिन्दनुपपत्तिः ॥ १२० ॥

sर्थो व्यक्तचोsर्थः ॥ प्रतिनिर्देश्यत्वादिति ॥ निर्दिश्यते उचार्यत इति निर्दे-शः शब्दः तेन । विपरीतार्थशब्दत्वादिखर्थः । तस्य तादशतृतीयलोचनत्वस्य । तथा चोभयत्र परिकरालंकारसत्त्वात्काव्यलिङ्गोदाहरणत्वमनुपपन्नमिति भावः। तयोः पशुनेत्यायुक्तोदाहरणयोः । तदुत्थापितं परिकरोपपादितम् । व्यक्तचस्य हे-तुकोटावेवानुप्रवेशादिति भावः॥ एतदेव विवृणोति—प्रतीयमानेति॥ वाच्य-स्यैवेलेवकारस्चितं व्यङ्गयाद्वारकत्वं न हीलादिना विवृतम् । तदयमर्थः । यदि पश्चादिपद्व्यक्त्यं केशपाशसाम्याभावादेरर्थस्य साक्षादुपपादकं स्यात्तदात्र परिकर एव स्यान काव्यलिङ्गम् । न त्वेवमस्ति पशुपदप्रतीताविवेकित्वमात्रेण साम्या-भावस्योपपादनासंभवात् । किंतु तद्विशिष्टपञ्जपुरस्कृतत्वाभाव एव साक्षादुपपा-दक इति तत्कोटिनिविष्टं व्यक्तयं काव्यलिङ्गरूपस्य तस्याङ्गमेव । व्यक्तयान्तरं त नोक्तकाव्यलिङ्गगम्यमर्थोपपादकमस्तीति निरावाधमेव काव्यलिङ्गमिति । ननु खयमन्योपपादकस्य काव्यलिङ्गस्याप्युपपादकं क दृष्टमित्याशङ्क्योदाहरति-यत्त्वन्नेत्रेति ॥ एतत्प्रतीपालंकारे प्रागुदाहृतम् ॥ अनेकवाक्यार्थहेतके-ति ॥ पूर्वपादत्रयवाक्यार्थत्रयस्य चतुर्थपादार्थहेतुत्वमिति ज्ञेयम् ॥ हेत्सावी-पपादकानीति ॥ इन्दीवरस्य नेत्रसमानकान्तित्वं विना पटादेरिव तददर्शन-स्य दैवगतकान्तासाद्दयविनोदासहिष्णुत्वे हेतुत्वासंभवादिति भावः । समाहित-मर्थमुपसंहरति—इतीति ॥ तयोः पञ्जनापीति मिनतेऽस्तीत्येतयोः ॥ १२० ॥ इति काव्यलिङ्गालंकारः ॥ ६० ॥

अर्थान्तरन्यासालंकारः ६१ उक्तिरथीन्तरन्यासः स्थात्सामान्यविशेषयोः । हन्मानव्धिमतरदुष्करं किं महात्मनाम् ॥ १२१ ॥ गुणवद्वस्तुसंसर्गाद्याति स्वल्पोऽपि गौरवम् । पुष्पमालानुपङ्गेन सुत्रं शिरसि धार्यते ॥ १२२ ॥

सामान्यविशेषयोईयोरप्युक्तिरथान्तरन्यासस्तयोश्चेकं प्रस्तुतमन्यद्प्रस्तुतं भवति । ततश्च विशेषे प्रस्तुते तेन सहाप्रस्तुतसामान्यरूपस्य सामान्ये प्रस्तुते तेन सहाप्रस्तुतविशेषरूपस्यार्थान्तरस्य न्यसनमर्थान्तरन्यास इत्युक्तं भवति । तत्राद्यस्य द्वितीयार्थसुदाहरणं द्वितीयस्य द्वितीयश्चोकः । नन्वयं काव्यिष्ठिः क्षाम्नातिरिच्यते । तथाहि । उदाहरणद्वयेऽप्यप्रस्तुतयोः सामान्यविशेषयोरुक्तिः प्रस्तुतयोर्विशेषसामान्ययोः कथसुपकरोतीति विवेक्तव्यम् । निष्ट सर्व-थेव प्रस्तुतानन्वय्यप्रस्तुताभिधानं युज्यते । न तावद्प्रस्तुतप्रशंसायामिव प्रस्तुतव्यक्षकतया, प्रस्तुतयोरिष विशेषसामान्ययोः स्वशब्दोपात्तत्वात् । नाप्यनुमानालंकार इव प्रस्तुतप्रतीतिजनकत्या, तद्वदिह व्याप्तिपक्षधमेताच्यभावात् । नापि दृष्टान्तालंकार इव उपमानत्या,

'विस्नव्धवातदोपः स्ववधाय खलस्य वीर कोपकरः। नवतरुभङ्गध्वनिरिव हरिनिदातस्करः करिणः॥'

इत्यादिषु सामान्ये विशेषस्योपमानत्वदर्शनेऽपि विशेषे सामान्यस्य क्वि-दिपि तददर्शनात् । उपमानतया तदन्वये सामञ्जस्याप्रतीतेश्च । तसात्प्रस्तु-तसमर्थकतयेवाप्रस्तुतस्योपयोग इहापि वक्तव्यः । ततश्च वाक्यार्थहेतुकं का-व्यिलङ्गमेवात्रापि स्यान्न त्वलंकारान्तरस्यावकाश इति चेत् ॥ अत्र केचित् । समर्थनसापेक्षस्यार्थस्य समर्थने काव्यलङ्गं निरपेक्षस्यापि प्रतीतिवैभवात्स-मर्थनेऽर्थान्तरन्यासः ॥ निह यत्त्वन्नेत्रसमानकान्तीत्यादिकाव्यलङ्गोदाहरणे-िवव,

प्रस्तुतव्यञ्जकतयेति ॥ अप्रस्तुताभिधानं युज्यत इखनुषज्यते । एवम-प्रेऽपि ॥ विस्त्रव्धेति ॥ खलस्य विश्वस्तवातरूपो दोषः सस्यैव वधाय भवति । यतो वीराणां कोपकारकः । सिंहनिद्रापहारी नवतरुभङ्गजन्यध्वनिः करिणो वधाय यथेल्यथः । तददर्शनादुपमानत्वादर्शनात् । ननु महापुरुषाकृतिरिव गम्भीरेयम-स्याकृतिरित्यादौ सामान्यस्याप्युपमानता दृष्टेलरुचेराह—उपमानिति ॥ इवा-वभावात्तात्पर्याभावाचोपमानतयाऽन्वयस्य सामजस्येनाप्रतीतिरित्यर्थः । इहापी-त्यपिना काव्यलिङ्गसमुच्यः । प्रतीतिवभवात्प्रतीतिदार्व्यरूपप्रयोजनवशात् । प्र-योजनस्यापि हेतुत्विवक्षया पञ्चमी ॥ उक्तवैलक्षण्यमुदाहरणनिष्ठतया दर्शयित— नहीत्यादिना ॥ इत्यादिकाव्यंलिङ्गोदाहरणेष्विव ॥ अथेति ॥ अथेत्यावर्था-

१ 'दुस्तरं किं'. २ 'नुसंगेन'.

'अथोपगृढे शरदा शशाङ्के प्रावृड्ययौ शान्तति हिःकटाक्षा । कासां न सौभाग्यगुणोऽङ्गनानां नष्टः परिश्रष्टपयोधराणाम् ॥ दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतिमवान्धकारम् । क्षुद्रेऽपि नृनं शरणं प्रपन्ने ममत्वसुचैःशिरसामतीव ॥'

इत्याद्यर्थान्तरन्यासोदाहरणेषु प्रस्तुतस्य समर्थनापेक्षत्वमस्तीति । वस्तु-तस्तु प्रायोवादोऽयम् । अर्थान्तरन्यासेऽपि हि विशेषस्य सामान्येन समर्थ-नानपेक्षत्वेऽपि सामान्यं विशेषेण समर्थनमपेक्षत एव निर्विशेषं न सामान्य-मिति न्यायेन 'बहूनामप्यसाराणां संयोगः कार्यसाधकः' इत्यादि सामान्यस्य 'तृणेरारभ्यते रञ्जुस्तया नागोऽपि वध्यते' इत्यादि संप्रतिपन्नविशेषावतरणं विना बुद्धौ प्रतिष्ठितत्वासंभवात् ॥

न च तत्र सामान्यस्य कासां न सौभाग्यगुणोऽङ्गनानामित्यादिविशेषसम-र्थनार्थसामान्यस्येव लोकसंप्रतिपन्नतया विशेषावतरणं विनेव बुद्धौ प्रतिष्ठि-तत्वं संभवतीति श्लोके तन्यसनं नापेक्षितमस्तीति वाच्यम् । सामान्यस्य सर्वत्र लोकसंप्रतिपन्नत्वनियमाभावात् । निह यो यो धूमवान् स सोऽग्नि-मानिति व्याप्तिरूपसामान्यस्य लोकसंप्रतिपन्नतया यथा महानस इति त-द्विशेषरूपदृष्टान्तानुपादानसंभवमात्रेणाप्रसिद्धव्याप्तिरूपसामान्योपन्यासेऽपि तद्विशेषरूपदृष्टान्तोपन्यासनैरपेक्ष्यं संभवति । न चैवं सामान्योपन्यासेऽपि सर्थनस्थलेऽपि कचित्तस्य सामान्यस्य लोकप्रसिद्धत्वाभावेन तस्य बुद्धावारो-हाय पुनर्विशेषान्तरस्य न्यासप्रसङ्ग इति वाच्यम् । इष्टापत्तेः । अत्रैव विषये विकस्यरालंकारस्यानुपदमेव दर्शयिष्यमाणत्वात् । किंच काव्यलिङ्गेऽपि न सर्वत्र समर्थनसापेक्षत्वनियमः । 'चिकुरप्रकरा जयन्ति ते' इत्यत्र तदभावा-

न्तरन्यासोदाहरणेषु प्रस्तुतस्य समर्थनार्थित्वं नह्यस्तीति संबन्धः। शरदा शशाक्के उपगृढे आलिक्किते सति। अथानन्तरम् शान्तास्तिहृपाः कटाक्षा यस्याः सा
प्रावृद्द ययो गतवती। उक्तं विशेषरूपमर्थं सामान्यरूपेणार्थान्तरेण समर्थयति।
परिश्रष्टपयोधराणां कासामङ्गनानां सौभाग्यगुणो न नष्ट इति। पयोधराः कुचा
मेघाश्र॥ दिवाकरादिति॥ कुमारसंभवे हिमालयवर्णनम्। यो हिमालयः।
ममत्वं मदीयताबुद्धिः। शिरो मस्तकं शिखरं च। समर्थनार्थित्वं समर्थनापेक्षत्वम्। अयमर्थान्तरन्यासे समर्थनानपेक्षत्वरूपः। सामान्यस्थलस्य बुद्धौ प्रतिष्ठितत्वासंभवादित्वनेनान्वयः॥ संप्रतिपन्निति॥ वक्तृश्रोतृसंमतेत्यर्थः। विशेषावतरणं विशेषावगमम् । तत्र बाहूनामिलादौ सामान्यस्येति विशेषावतरणं
विनेव बुद्धौ प्रतिष्ठितत्वं संभवतीलिश्रमेणान्वितम्। तन्न्यसनं तृणैरिलादिविशेषन्यसनम्। नन्वेवमप्यर्थान्तरन्यासे कचिदेव समर्थनापेक्षा, काव्यलिङ्के तु सर्वत्र
सेलस्तु भेद इलाशङ्कथाह—किचेति॥ कविकुलक्षण्णत्वेन कविसमूहाभ्यस्तत्वेन तदास्यदास्ये नलमुखदास्ये पर्वणि पूर्णिमायां भवः पार्वणः शर्वरीश्वरश्चन्दः।
न विषेणेत्यादेः स्त्रियः कृता इल्यनेनान्वयः। अपि तु स्रीभिरेव । यतः प्रती-

व्यर्थान्तरन्यासालंकारः६१] अलंकारचन्द्रिकासहितः। १३३

दुपमानवस्तुषु वर्णनीयसाम्याभावेन निन्दायाः कविकुळश्चण्णत्वेनात्र सम-र्थनापेक्षाविरहात् । निह 'तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां न शारदः पार्व-णशर्वरीश्वरः' इत्यादिषु समर्थनं दृश्यते ।

> 'न विषेण न शस्त्रेण नाग्निना न च मृत्युना । अप्रतीकारपारुष्याः स्त्रीभिरेव स्त्रियः कृताः ॥'

इत्यादिकाव्यिलङ्गिविषयेषु समर्थनापेक्षाविरहेऽपि अप्रतीकारपारुष्या इत्या-दिना समर्थनदर्शनाच । निह तत्र स्त्रीणां विषादिनिर्मितत्वाभावप्रतिपादनं समर्थनसापेक्षं प्रसिद्धत्वात् । तस्मादुभयतो व्यभिचारात्समर्थनापेक्षसमर्थने काव्यिलङ्गं तन्निरपेक्षसमर्थनेऽर्थान्तरन्यास इति न विभागः, किंतु सामर्थ्य-समर्थकयोः सामान्यविशेषसंवन्धेऽर्थान्तरन्यासस्तदितरसंवन्धे काव्यिलङ्ग-मित्येव व्यवस्थावधारणीया । प्रपञ्चश्चित्रमीमांसायां दृष्टव्यः ।

एवमप्रकृतेन प्रकृतसमर्थनसुदाहृतम् । प्रकृतेनाप्रकृतसमर्थनं यथा— यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपिमत्यव्यभिचारि तद्वचः । तथा हि ते शीलसुदारदर्शने तपिस्वनामप्युपदेशतां गतम् ॥

यथावा-

दानं ददत्यिप जलैः सहसाधिरूढे को विद्यमानगतिरासितुमुत्सहेत । यद्दन्तिनः कटकटाहतटान्मिमङ्को-र्मङ्क्षूद्रपाति परितः पटलैरलीनाम् ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

काररहितं पारुष्यं कार्ये यासां तथाभूताः । उभयतोऽन्वयव्यतिरेकाभ्याम् । समर्थनापेक्षायामपि तदास्यदास्थेऽपीलादौ तदभावात् । न विषेणेलादावपेक्षा-विरहेऽपि समर्थनसत्त्वात् ॥ अप्रकृतेनेति ॥ आद्ये महात्मनां सर्वसुकरत्वे-नाप्रकृतेन सामान्येन हनुमद्विधतरणस्य प्रकृतिविशेषस्य समर्थनं द्वितीये पुष्प-मालासूत्रवृत्तान्तेनाप्रकृतेन विशेषरूपेण प्रकृतस्य गुणवत्सङ्गप्रयुत्तपृज्यत्वस्य सामान्यरूपस्य समर्थनमिल्यथः ॥ यदुच्यत इति ॥ हे पार्वति, रूपमाकृति-सौन्दर्थे पापवृत्तये दुष्टाचरणाय न भवति 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति' इति न्यायादिति यदुच्यते तद्वचनमव्यभिचारि यथार्थम् । तथाहि उदारं रमणीयं दर्शनं यस्यास्तथाभूते पार्वति, तव शीलमाचरणं तपस्वनामप्युपदेशरूपतां प्राप्तमिति प्रकृतेन विशेषेणाप्रकृतस्य सामान्यस्य समर्थनम् ॥ दानमिति ॥ दानं वितरणं मदजलं च । जलैरदकैर्जंडैश्च । लडयोरभेदात् । अधिरूढे आकान्ते सति । विद्यमानगितः सगितको बुद्धमांश्च कः आसितुं स्थातुमुत्सहेत् शक्कृयात् । यस्मान्मिमङ्कोर्मजनं कर्तुमिच्छोर्दन्तिनो गजस्य कटो गण्ड एव कटा-हस्तस्य तटादग्रादलीनां पटलैः समूहैः परितो मङ्क शीप्रमुदपति उत्पतितिमि-

धया यथा-

कुवलयानन्दः । [विकस्वरालंकारः ६२

#### विकखरालंकारः ६२

यसिन्विशेषसामान्यविशेषाः स विकखरः । स न जिग्ये महान्तो हि दुर्धर्षाः सागरा इव ॥१२३॥

यत्र कस्यचिद्विशेषस्य समर्थनार्थं सामान्यं विन्यस्य तत्प्रसिद्धावप्यपरि-तुष्यता कविना तत्समर्थनाय पुनर्विशेषान्तरसुपमानरीत्यार्थान्तरन्यासविध-या वा विन्यस्यते तत्र विकस्वरालंकारः । उत्तरार्धं यथाकथंचिदुदाहरणम् । इदं तु व्यक्तसुदाहरणम् ।

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविकोपि जातम् । एको हि दोपो गुणसंनिपाते निमजतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥ इद्मुपमानरीत्मा विशेपान्तरस्य न्यसने उदाहरणम् । अर्थान्तरन्यासवि-

कर्णारुनतुद्मन्तरेण रिणतं गाहस्व काक स्वयं माकन्दं मकरन्दशालिनिमह त्वां मन्महे कोकिलम् । धन्यानि स्थलवैभवेन कतिचिद्वस्त्नि कस्त्ररिकां नेपालक्षितिपालभालपतिते पङ्के न शङ्केत कः ॥

खन्वयः । अत्रापि पूर्वार्धोक्तमप्रकृतसामान्यमुत्तरार्थोक्तेन प्रकृतेन विशेषेण समर्थितम् ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ इत्यर्थान्तरन्यासालंकारः ॥ ६१ ॥

यस्मिन्निति ॥ यस्मिन्काव्ये इत्यर्थात् । निवध्यत इति शेषः । समर्थ्यसम्ध्र्यक्रमावापन्नत्वं तु न लक्षणे निवेशनीयम् । तद्विना चमत्काराभावेन चमत्कारित्वविशेषणमवस्यवक्तव्येनैवानितप्रसङ्गात् । एवमर्थान्तरन्यासलक्षणेऽपि बोध्यम् ॥ स नेति ॥ स प्रकृतो राजा न जिग्ये न जितोऽर्थात्परैरिति शेषः । तत्समर्थनं महान्तो हि दुर्घषां अनाक्रमणीया इति सामान्येन तस्यापि सागरा इवेति विशेषोपमयेति श्लेयम् । प्रसिद्धेरल्पत्वाक्तप्रापरितोषो बोध्यः ॥ यथाकर्थंचिदिति ॥ महतामनाक्रमणीयत्वस्यातिप्रसिद्धत्वेन तत्समर्थनापेक्षाभावाचन्द्रालोकगतमेतन्न समझसमिति भावः । इदं वक्ष्यमाणम् ॥ व्यक्तमिति ॥ गुणसमुदाये एकस्य दोषस्यानाकलनमनतिप्रसिद्धत्वा समर्थनापेक्षमिन्दोरित्यादि विशेषण समर्थत इत्यतः स्फुटमित्यर्थः ॥ कर्णाति ॥ हे काक्ष्र, कर्णयोरहन्तुदं पीडाजनकं रितं शब्दितमन्तरेण विना स्वयं मकरन्दः पुष्परसस्तच्छालिनं माकन्दमाम्रवृक्षं गाहस्त आश्रय । इहाम्रतरौ त्वां वयं कोकिलं मन्महे जानी-महे यतः स्थलवैभवेन स्थानमाहात्म्येन कितिचद्वस्तूनि धन्यानि भवन्तीति सामान्येन पूर्वोक्तविशेषसमर्थनम् । अत्रापि तदाकाङ्कायां विशेषस्पमर्थान्तरं न्यसित । नेपालभूमिपालस्य भाले पतिते पक्षे कस्तूरिकां को न शक्कत, अपि तु

१ 'दुईशांः'.

मालिन्यमज्ञशक्षिनोर्मधुलिट्कलङ्कौ धत्तो मुखे तु तव इक्तिलकाञ्जनाभाम् । दोपावितः कचन मेलनतो गुणत्वं वक्तुर्गुणौ हि वचसि अमविप्रलम्भौ ॥ १२३ ॥

प्रौढोत्तयलंकारः ६३

प्रौढोक्तिरुत्कपिंहेतौ तद्वेतुत्वप्रकल्पनम् । कचाः कलिन्दजातीरतमालस्तोममेचकाः ॥ १२४ ॥

कार्यातिशयाहेतौ तद्वेतुत्वप्रकल्पनं प्रौढोक्तिः । यथा तमालगतनैल्याति-शयाहेतौ यमुनातटरोहणे तद्वेतुत्वप्रकल्पनम् । यथावा—

कल्पतरुकामदोग्धीचिन्तामणिधनदशङ्कानाम् । रचितो रजोभरपयस्त्रेजःश्वासान्तराम्बररेपः॥

अत्र कल्पवृक्षाचेकैकवितरणातिशायिवर्णनीयराजवितरणातिशयाहेतौ क-ल्पवृक्षपरागादिरूपपञ्चभूतनिर्मितत्वेन तद्वेतुत्वप्रऋल्पनं प्रौढोक्तिः॥ १२४॥

## संभावनालंकारः ६४ संभावना यदीत्थं स्थादित्यूहोऽन्यस्य सिद्धये । यदि शेषो भवेद्धक्ता कथिताः स्युर्गुणास्तव ॥ १२५॥

सर्व इति ॥ मालिन्यमिति ॥ मधुलिद्र भ्रमरः कलङ्कश्चेतावञ्जशिशोर्मालिन्यं धत्तः कुरुतः । तव मुखे तु दक् च तिलकाञ्जनं च तयोराभां शोभां धत्त द्रव्यनुष्वचते । अञ्जनाभे इति पाठे द्वितीयाद्विवचनम् । उक्तमर्थं सामान्येन समर्थयिति । दोषावि कचित् मेलनतो मिथो मिलनात् गुणत्विमतः प्राप्नुत इति । कथमेतत्तन्नाह । हि यतः वक्तवंचित भ्रमविप्रलम्भो भ्रान्तिप्रतारणे गुणो भवतः । घटवित घटाभावं निर्णाय परप्रतारणाय घटोऽस्तीति प्रयुक्ते वाक्ये प्रमाजनकत्वात्तयोर्गुणत्विमिति भावः ॥ १२३ ॥ इति विकस्वरालंकारः ॥ ६२ ॥

प्रौढोक्तिरिति ॥ उत्कर्षस्याहेतावुकपहेतुत्वकल्पनं प्रौढोक्तिः । किलन्दजा यमुना । स्तोमः समूहः । मेचकाः इयामाः । रोहणे उद्भवे ॥ कल्पेति ॥ एप राजा कल्पवृक्षादीनां कमेण रजोभरादिभिः पश्चभी रचित इल्पन्वयः । धनदः कुवेरः । शक्को निधिविशेषः । रजोभरः परागसमूहः । पयो दुग्धम् । श्वासः प्रसिद्धः । अन्तराम्वरं शङ्काभ्यन्तरमाकाशम् । अतिशायील्यिमवितरणेनान्वतम् । अहेतौ पश्चनिर्मितत्वे इति सामानाधिकरण्येनान्वयः ॥ १२४ ॥ इति प्रौढोक्त्यलंकारः ॥ ६३ ॥

संभावनेति ॥ ऊहस्तर्कः ॥ कस्त्रिकेति ॥ अहं यदि सृष्टिकर्ता स्यां

१ 'रुत्कर्षहेती'. २ 'संभावनं यदित्थं'.

१३६

यथावा--

कस्तूरिकामृगाणामण्डाद्गन्धगुणमिखलमादाय । यदि पुनरहं विधिः स्यां खलजिङ्कायां निवेशयिष्यामि ॥ यद्यर्थोक्तो च कल्पनमितशयोक्तिभेद इति काव्यप्रकाशकारः ॥ १२५॥

मिथ्याध्यवसित्यलंकारः ६५
किंचिन्मिथ्यात्वसिद्ध्यर्थे मिथ्यार्थान्तरकल्पनम् ।
मिथ्याध्यवसितिर्वेक्यां वक्षयेत्खस्रजं वहन् ॥ १२६ ॥
अत्र वेक्ष्यावक्षीकरणस्यात्मन्तासंभावितत्वसिद्धये गगनक्कसममालिकाधाः

रणरूपार्थान्तरकल्पनं मिथ्याध्यवसितिः । यथावा-

अस्य क्षोणिपतेः परार्धपरया लक्षीकृताः संख्यया प्रज्ञाचक्षुरवेक्ष्यमाणविधरश्राच्याः किलाकीर्तयः । गीयन्ते स्वरमप्टमं कलयता जातेन वन्ध्योदरा-न्मूकानां प्रकरेण कूर्मरमणीदुग्धोदधे रोधिस ॥

अत्राद्योदाहरणं निदर्शनागर्भं द्वितीयं तु शुद्धम् । असंबन्धे संबन्धरूपा-तिशयोक्तितो मिथ्याध्यवसितेः किंचिन्मिथ्यात्वसिद्धर्थं मिथ्यार्थान्तरकल्पना-तमना विच्छित्तिविशेषेण भेदः ॥ १२६ ॥

तदा कस्तूरिकामृगाणामण्डादिखलं गन्धरूपं गुणमादाय खलजिह्वायां निवे-शियष्यामीत्यन्वयः॥ १५॥ इति संभावनालंकारः॥ ६४॥

किचिदिति ॥ कस्यचिद्र्थस्य मिथ्यात्वसिद्ध्यं मिथ्याभूतार्थान्तरकल्पनं मिथ्याध्यवसितिरलंकारः । वेद्यामित्युदाहरणम् । खस्रजं गगनमालाम् । अत्र खपुष्पमालाधारणमिव वेद्यावशीकरणमिति निदर्शनापि वोध्या ॥ अस्यति ॥ परार्धपरया परार्धसंख्यामतिकान्तया । लक्षीकृता उपलक्षिताः । प्रज्ञाचक्षुषा अन्धेनावेक्ष्यमाणाश्च ता विधरशाव्याश्चेति कर्मधारयः । कल्यता कुर्वता । प्रकर्ण समूहेन । कूर्मरमणी कच्छपी । रोधित तीरे । मिथ्याध्यवसितेरित्यस्य भेद इत्यत्रान्वयः । कल्पनाविच्छित्तिविशेषेण कल्पनाप्रयुक्तिविच्छित्तिविशेषेण । कल्पनात्मनेति पाठे कल्पनात्मरूष्ट्येणत्यर्थः । उपधेयसंकरेऽप्युपाधेरसंकरात् । विच्छित्तिविशेषेणति च तस्यव विशेषणम् । विच्छित्तेविशेषेण यस्मादिति, विच्छित्तिविशेषेणति च तस्यव विशेषणम् । विच्छित्तेविशेषेण यस्मादिति, विच्छित्ति विशेषयति व्यावर्तयतीति वा व्युरपत्तः । एतेन प्रौढोत्तयेव गतार्थतामाचक्षाणा निरस्ता वेदितव्याः । नच मिथ्याध्यवसितेरलंकारान्तरत्वे 'हरिश्चन्द्रेण संजप्ताः प्रगीता धर्मसूनुना । खेलन्ति निगमोत्सङ्गे मातर्गङ्गे गुणास्तव ॥' इत्यादौ हरिश्चन्द्राणुगनां सत्यताप्रतीतेः सत्याध्यवसितिरिप तथा स्थादिति वाच्यम् । सत्यताप्रतीत्यां कस्याप्यर्थस्य कविप्रतिभाकित्पतत्वाभावेन शब्दमात्रेणान्त्वामावेत असंभवात् । कविप्रतिभामात्रकल्पितत्वाभावेन शब्दे अलंकारपदान्तिकारताया असंभवात् । कविप्रतिभामात्रकल्पता अर्थाः काव्ये अलंकारपदान

ल्हितालंकारः ६६ ] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१३७

# लितालंकारः ६६ वैर्ण्ये स्याद्वर्णवृत्तान्तप्रतिविम्बस्य वर्णनम् । लितं निर्गते नीरे सेतुमेषा चिकीर्षति ॥ १२७॥

प्रस्तुते धर्मिणि यो वर्णनीयो वृत्तान्तस्तमवर्णयित्वा तत्रेव तत्प्रतिविम्बरू-पस्य कस्यचिद्प्रस्तुतवृत्तान्तस्य वर्णनं छिलतम् । यथाकथंचिद्दाक्षिण्यसमाग-ततत्कालोपेक्षितप्रतिनिवृत्तनायिकान्तरासक्तनायकानयनार्थे सर्वी प्रेपयितु-कामां नायिकामुद्दिश्य सख्या वचनेन तद्व्यापारप्रतिविम्बभूतगतजलसेतुब-न्धवर्णनम् । नेयमप्रस्तुतप्रशंसा प्रस्तुतधर्मिकत्वात् , नापि समासोक्तिः प्रस्तु-तवृत्तान्ते वर्ण्यमाने विशेषणसाधारण्येन सारूप्येण वाप्रस्तुतवृत्तान्तस्फूर्त्यभा-वात्, अप्रस्तुतवृत्तान्तादेव सरूपादिह प्रस्तुतवृत्तान्तस्य गम्यत्वात्, नापि निद्र्शना प्रस्तुताप्रस्तुतवृत्तान्तयोः शब्दोपात्तयोरैक्यसमारोप एव तस्याः समुन्मेपात् । यदि विपयविपयिणोः शब्दोपात्तयोः प्रवर्तमान एवाछंकारो विषयिमात्रोपादानेऽपि स्यात्तदा रूपकमेव भेदेऽप्यभेदरूपाया अतिशयोक्तर-पि विषयमाकामेत् । ननु तह्यंत्र प्रस्तुतनायकादिनिगरणेन तत्र शब्दोपात्ता-प्रस्तुतनीराद्यभेदाध्यवसाय इति भेदे अभेदरूपातिशयोक्तिरस्तु । एवं तर्हि सारूप्यनिवन्धना अप्रस्तुतप्रशंसाविषयेऽपि सैवातिशयोक्तिः स्यात् । अप्रस्तुतथर्मिकःवान्न भवतीति चेत् । तत्राप्यप्रस्तुतथर्मिवाचकपदस्यापि प्रसिद्धातिशयोत्त्युदाहरणेष्विव प्रस्तुतधर्मिलक्षकत्वसंभवात् ॥ नन्वप्रस्तुतप्र-शंसायां सरूपाद्प्रस्तुतवाक्यार्थात्प्रस्तुतवाक्यार्थोऽवगम्यते नत्वतिशयोक्ताविव विषयवाचकैस्तत्तत्वदेविषया लक्ष्यन्त इति भेद इति चेत्तर्हि इहापि प्रस्तु-

स्पद्मिति विषमालंकारप्रकरणे त्वयैवाभिधानादित्यलं विस्तरेण ॥ १५६ ॥ इति मिथ्याध्यवसित्यलंकारः ॥ ६५ ॥

प्रस्तुत इति ॥ लिलतिमिति लक्ष्यिनिर्देशः । निर्गत इत्युदाहरणम् । दक्षिण्येखादिक्तप्रख्यान्तचतुष्टयं नायकविशेषणम् । दक्षिण्यमनुरोधशीलत्वम् ॥ तद्यापारेति ॥ सखीप्रेषणरूपनायिकाव्यापारखरूपेखर्थः । सारूप्यं चात्र नैरर्थक्यम् । क्रृप्तालंकारेष्वन्तर्भावमाशङ्कय निराकरोति—नेयिमत्यादिना ॥ प्रस्तुताप्रस्तुतेति ॥ तथाच प्रकृतेऽप्रस्तुतवृत्तान्तस्यवोपादानात्रिदर्शना न युक्तेति भावः । नन्भयोः शब्दोपात्तव इवाप्रस्तुतमात्रस्य तत्त्वेऽपि निदर्शनान्तित्वसाशङ्कयाह—यदिति ॥ प्रतिवन्या तावत्परिहरति—तिर्हि सारूप्येति॥ 'एकः कृती शकुन्तेषु योऽन्यं शकात्र याचते' इत्यादावित्यर्थः ॥ अप्रस्तुतेति ॥ अप्रस्तुतस्य शकुन्तोदेस्तत्र वर्णनीयत्वादितशयोक्तिस्थले च वापी कापीत्यादौ वापीत्वादिना प्रस्तुतनाभ्यादेविण्यत्वात्रातिशयोक्तिस्त्रत्रापादियतुं शक्येति भावः । अप्रसिद्धोऽयं हेतुरित्याह—तत्रेति ॥ प्रसिद्धेति ॥ वापी कापीत्यादिसर्वसंम-

१ 'प्रस्तते वर्ण्यवाक्यार्थ'.

[ लिलतालंकारः ६६

तगतादप्रस्तुतवृत्तान्तरूपाद्वाक्यार्थात्तद्गतप्रस्तुतवृत्तान्तरूपो वाक्यार्थोऽवग-न्यत इत्येवातिशयोक्तितो भेदोऽस्तु । वस्तुवस्तु—

> 'सोऽपूर्वो रसनाविपर्ययविधिस्तत्कर्णयोश्चापलं दृष्टिः सा मद्विस्मृतस्वपरदिक्तिं भूयसोक्तेन वा । पूर्वं निश्चितवानिस अमर हे यद्वारणोऽद्याप्यसा-वन्तः श्रून्यकरो निपेव्यत इति आतः क एप प्रहः ॥'

इत्याद्यप्रस्तुतप्रशंसोदाहरणे प्रथमप्रतीतादप्रस्तुतवाक्यार्थाऽवगम्यत इत्येतन्न घटते । अप्रस्तुते वारणस्य अमरासेव्यत्वे कर्णचापक्रमात्रस्य अमरिनराकरणहेतुत्वसंभवेऽि रसनाविपर्ययान्तः ग्रून्यकरत्वयोहें-तुत्वासंभवेन मदस्य प्रत्युत तत्सेव्यत्व एव हेतुत्वेन च रसनाविपर्ययादीनां तन्न हेतुत्वान्वयार्थं वारणपदस्य दुष्प्रभुरूपविषयकोडीकारेणेव प्रवृत्तेर्वक्तव्यत्वात् । एवं सत्यिष यद्यप्रस्तुतसंबोधनादिविच्छित्तिविशेषात्तन्नाप्रस्तुतप्रशं-साया अतिशयोक्तितो भेदो घटते तदात्रापि प्रस्तुतं धर्मिणं स्वपदेन निर्दिश्य तन्नाप्रस्तुतवर्णनारूपस्य विच्छित्तिविशेषस्य सद्भावात्ततो भेदः सुतरां घटते ॥ 'पश्य नीलोत्पल्द्वन्द्वान्निःसरन्ति', 'वापी कापि स्फुरति गगने तत्परं सूक्ष्मपद्या' इत्यादिषु तु प्रस्तुतस्य कस्यचिद्धर्मिणः स्ववाचकेनानिर्दृष्टत्वादिक्शयोक्तरेव । एतेन गतजलसेतुवन्धवर्णनादिष्वसंबन्धे संबन्धातिशयोक्तिर-रित्वति शङ्कापि निरस्ता। तथा सति कस्त्वं भोः कथयामीत्यादाविष तत्प्रसङ्कान

तेखर्थः ॥ तद्गतेति ॥ प्रस्तुतगतेखर्थः । अप्रस्तुतप्रशंसायां कचित्प्रस्तुताप्रस्तु-तयोरभेदाध्यवसानमप्यप्रस्तुतवाक्यार्थप्रतीतिकाले दृश्यते । ललिते तु न का-पीति सुतरामतिशयोक्तितो भेद इत्याह—सोऽपूर्व इत्यादिना॥ रसनावि-पर्ययः अग्निशापात्करिणां जिह्वापरिवृत्तिः पूर्वे विपरीताभिधानं च । कर्णचापलं प्रसिद्धं पिशुनप्रतार्यत्वं च । मदः प्रसिद्धः गर्वश्च । तेन विस्मृता स्वपरयोर्दिस्त्रार्ग आप्तानाप्तविभागश्च यया सा दृष्टिः । वारणो गजो वारकश्च । शून्यः सरन्ध्रो धनरहितश्च । करः गुण्डा हस्तश्च । यह आग्रहः । कुतो न घटते तत्राह-अप्रस्तृत इति ॥ एतच भ्रमरासेव्यत्व इत्यस्य विशेषणम् । भ्रमर-निरासकरणस्येति च कर्णचापलमात्रस्येत्यस्य कोडीकारः । स्वार्थेन सममभेदाध्य-वसायः अप्रस्तुतसंबोधनादिति । आदिना सारूप्यनिवन्धनप्रस्तुतवाक्यार्थावगति-परिप्रहः । अत्रापि ललितालंकारेऽपि ॥ वर्णनारूपस्येति ॥ चमत्कारितारू-पाया विच्छित्तेसादवच्छेदकवर्णनारूपत्वमित्यभिप्रायः ॥ कस्यचित्रेत्रद्वन्द्वादेः । खवाचकेन नेत्रादिपदेन । अनिर्दिष्टत्वादप्रतिपादितत्वात् ॥ अतिरायोक्ति-रस्तीति ॥ अतिशयोक्तिरेवास्तीत्यर्थः । तत्प्रसङ्गात्संबोध्यत्वोचारयितृत्वयोरसं-वन्धेऽपि संवन्धवर्णनादितिशयोक्तिमात्रप्रसङ्गातः । अलंकारान्तरं कस्त्वमित्या-दावप्रस्तुप्रशंसा प्रकृते तु लिलतमिति ॥ तत्प्रतिविम्येति ॥ प्रस्तुतार्थप्रति- त्सारूप्यनिवन्धनप्रस्तुतवाक्यार्थावगतिरूपविच्छित्तिविशेषालंकारान्तरकस्पनं त्विहापि तुल्यम् । तसात्सर्वालंकारविलक्षणमिदं ललितम् । यथावा—

क सूर्यप्रभवो वंशः क चाल्पविषया मतिः। तितीर्पुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥

अत्रापि निदर्शनाभ्रान्तिनं कार्यो । अल्पविषयया मत्या सूर्यवंशं वर्णयि-तुमिच्छुरहमिति प्रस्तुतवृत्तान्तानुपन्यासात्तत्प्रतिविम्बभूतस्य उडुपेन सागरं तितीर्पुरसीत्यप्रस्तुतवृत्तान्तस्य वर्णनेनादौ विषमालंकारविन्यसनेन च केवलं तत्र तात्पर्यस्य गम्यमानस्वात् । यथावा—

अनायि देशः कतमस्त्वयाद्य वसन्तमुक्तस्य दशां वनस्य । स्वदाससंकेततया कृतार्था श्राव्यापि नानेन जनेन संज्ञा ॥

अत्र कतमो देशस्त्वया परित्यक्तः इति प्रस्तुतार्थमनुपन्यस्य वसन्तमुक्तस्य वनस्य दशामनायीति तत्प्रतिविम्बभूतार्थमात्रोपन्यासाञ्जलितालंकारः॥१२७॥

प्रहर्पणालंकारः ६७ उत्कण्ठितार्थसंसिद्धिर्विना यत्नं प्रहर्पणम् । तामेव ध्यायते तस्मै निस्ष्टा सैव दृतिका ॥ १२८॥ उत्कण्ठा इच्छाविशेषः।

'सर्वेन्द्रियसुखास्वादो यत्रास्तीत्यभिमन्यते । तत्प्राप्तीच्छां ससंकल्पामुत्कण्ठां कवयो विदुः ॥'

इत्युक्तलक्षणात्तद्विषयस्यार्थस्य तदुपायसंपादनयतं विना सिद्धिः प्रहर्पणम्। उदाहरणं स्पष्टम् । यथावा—

विम्बरूपस्पाप्रस्तुतार्थस्येत्यर्थः । आदौ पूर्वार्धे विषमेति ॥ स्वमितसूर्यवंशयो-रत्यन्ताननुरूपत्वरूपेत्यर्थः । तात्पर्यस्य तादृशमितकरणकसूर्यवंशवणैनेच्छाभि-प्रायस्य ॥ अनायीति ॥ नलं प्रति दमयन्त्या उक्तिः । हे नल, अद्य त्वया कतमो देशो वसन्तमुक्तस्य वनस्य दशामनायि प्रापितः । त्विय प्राप्तसंकेततया कृतार्था संज्ञा नामाप्यनेन मल्लक्षणेन जनेन न श्राव्या न श्रवणाद्दी अपितु श्राव्यवेति । अत्रच तादृशवनदशारूपस्याप्रस्तुतार्थस्य प्रस्तुते देशे कथनात्रम्स्तुतृश्वतान्तस्योक्करपस्य प्रतीतिः । नचात्र वारणेन्द्रलीलामितिवत्यदार्थनिदर्शना युक्ति वाच्यम् । तत्र पूर्वार्धन प्रकृतवृत्तान्तोपादानेन सादृश्यपर्यवसानह्यनिदर्शना स्वर्गनासत्त्वेऽप्यत्र तद्नुपादानेन तद्यङ्गयताप्रयुक्तिविद्यित्वर्शयत्वत्त्वते लिलेनतालंकारस्यवोचितत्वात् । एतेन दशापदलक्षितिनिःश्रीकत्वरूपक्षप्रवृत्ते कारणस्य राजकर्तृकत्यागकर्मत्वस्याभिधानात्पर्यायोक्तमित्यपि निरस्तम् । उपघेयसंकरेऽप्युपाधेरसंकराचेति संक्षेपः ॥ १२०॥ इति लिलेतालंकारप्रकरणम् ॥६६॥ तामेवेति ॥ दृतिकामेवेत्यर्थः। निस्प्षाप्रेषिता। ससंकल्पां मनोर्थसहिताम्॥

१ 'विस्रष्टा'.

मेघेर्मेंदुरमम्बरं वनभुवः इयामास्तमालद्वमे-र्नकं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय । इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुअद्भुमं राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥ राधामाधवयोः परम्परमाकण्डित्वं प्रसिद्धतरम्प्रे च प्रनः

अत्र राधामाधवयोः परस्परमुक्षिण्ठत्वं प्रसिद्धतरमप्रे च प्रन्थकारेण निबद्धमित्यत्रोदाहरणे लक्षणानुगतिः॥ १२८॥

> वाञ्छितादधिकार्थस्य संसिद्धिश्च महर्पणम् । दीपमुँदचोजयेद्यावत्तावदभ्युदितो रविः ॥ १२९ ॥

स्पष्टम् । यथावा--

चातकश्चिचतुरान्पयःकणान्याचते जलधरं पिपासया । सोऽपि प्रयति विश्वमम्भसा हन्त हन्त महतामुदारता॥ १२९॥ यत्नादुपायसिद्ध्येथीत्साक्षाछाभः फलस्य चै । निध्यञ्जनौपधीमूलं खॅनता साधितो निधिः ॥१३०॥

फलोपायसिद्धार्थाचलान्मध्ये उपायसिद्धिमनपेक्ष्य साक्षात्फलस्येव लाभो-ऽपि प्रहर्पणम् । यथा निध्यञ्जनसिद्धार्थं मूलिकां खनतस्तत्रेव निधेर्लाभः । यथावा—

उच्चित्य प्रथममधःस्थितं मृगाक्षी पुष्पोधं श्रितविटपं ग्रहीतुकामा । आरोढुं पदमद्धादशोकयष्टावामूलं पुनरिप तेन पुष्पिताभूत् ॥

मेघेरिति ॥ मेदुरं तुन्दिलम् । नक्तं रात्रिरस्तीति शेषः । नन्द्निदेशतो नन्द-स्याज्ञावशात् । प्रत्यध्वकुष्ठद्वुममध्वसंवन्धिकुष्ठद्वुमं द्वमं प्रति । प्रन्थकारेण गीतगोविन्दकृता ॥ १२८॥ चातक इति ॥ यत्तु चातकस्य त्रिचतुरकणमात्रा-धितया जलदकर्तृकेणाम्भसा विश्वपूरणेन हर्षाधिक्याभावादयुक्तमुदाहरणमिति तत्तुच्छम् । हेत्वसिद्धेः । नहि क्षुदुपशमाय तत्पर्याप्तात्रमात्रार्थिनस्तद्धिकात्रलामे हर्षाधिक्यं नास्तीति वक्तं शक्यते । तदानीमुपयोगाभावेऽपि खस्येव कालान्तरे तदुपयोगसत्त्वात् । नच चातकस्य जलसंप्रहानुपयोगाद्वेषम्यं शङ्कनीयम् । चातकवृत्तान्तस्याप्रस्तुततया तद्ध्यक्त्ये प्रस्तुतदानृयाचकवृत्तान्ते काव्यस्य पर्यवसानादिति ॥ १९९॥ तृतीयं प्रभेदमाह—यत्नादिति ॥ प्रहर्षणमित्यनुवर्तते ॥ निध्यञ्जनेति ॥ निधिदर्शनसाधनं यद्ष्यनं तत्साधनौषंधीमूलमित्यर्थः । साधितो लच्धः ॥ उच्चित्येति ॥ अधःस्थितं वृक्षस्याधोदेशे स्थितम् । अवस्थितमिति पाठे समीपाशोकयष्टाववस्थितमित्यर्थः । श्रिता आश्रिता विटपाः शाखा येनेति पृष्पौषविशेषणम् । अद्धादाहितवती । यष्टिः स्कन्धः । तेन पादाघातेन । पुनरप्यामूलं पृष्पिताभूत् । अर्थादशोकयष्टः । अत्रच तदसाध्यकयलात्त्वाः भ

१ 'दीपमुद्दीपयेचानत्'. २ 'सिद्धार्थात्'. ३ 'चेत्'. ४ 'खलता'. ५ 'आसादितो'.

उल्लासालंकारः ६९ ] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

888

अत्र पुष्पग्रहणोपायभूतारोहणसिद्धर्थात्पदनिधानात्तत्रैव पुष्पग्रहण-लामः॥ १३०॥

> विषादनाळंकारः ६८ इष्यमाणविरुद्धार्थसंप्राप्तिंस्तु विषादनम् । दीपंग्रद्योजयेद्यावन्निर्वाणस्तौवदेव सः ॥ १३१ ॥

यथावा---

रात्रिगीमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कनश्रीः । इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे हा हन्त हन्त निल्नीं गज उज्जहार ॥ १३१ ॥

उह्यासालंकारः ६९
एकस्य गुणदोषाभ्यामुह्यासोऽन्यस्य तौ यदि ।
अपि मां पावयेत्साध्वी स्नात्वेतीच्छित जाह्वी॥१३२॥
काठिन्यं कुर्चेयोः स्रष्टं वाञ्छन्त्यः पादपद्ययोः ।
निन्दन्ति च विधातारं त्वद्वाटीष्वरियोपितः ॥१३३॥
तदभाग्यं धनस्यैव यन्नाश्रयति सज्जनम् ।
लाभोऽयमेव भूपालसेवकानां न चेद्वधः ॥ १३४॥

इति प्रकारत्रयसाधारणं सामान्यलक्षणं वोध्यम् ॥ १३९ ॥ इति प्रहर्षेणालंकार-प्रकरणम् ॥ ६७ ॥

इष्यमाणविरोधो योऽर्थस्तत्संप्राप्तिर्विषादनमलंकारः । उद्योजयेदुद्दीप्तं कुर्यात् । उद्योजयेद्यावदित्यनेन तदिच्छामात्रं न तु तत्करणमिति विषमाद्भेदः । एवमित्र-मोदाहरणेऽपीच्छामात्रं न त्विष्टोत्पत्त्यनुकूलाचरणमिति ॥१३१ ॥ इति विषादन-प्रकरणम् ॥ ६८ ॥

पकस्येति ॥ एकस्य गुणदोषाभ्यामन्यस्य तौ गुणदोषौ यदि भवतस्तदोल्ला-सालंकारः ॥ अपीति ॥ अपिः संभावनायाम् । साध्वी पतित्रता स्नात्वा मां पावयेदिति जाह्ववी इच्छतीत्यन्वयः । तव धाटीषु युद्धयात्रासु कुचयोः सृष्टं का-ठिन्यं पादपद्मयोर्वाञ्छन्त्योऽरियोषितो विधातारं निन्दन्तीत्यन्वयः । सृष्टुमिति पाठे कुचयोः काठिन्यं पादयोः सृष्टुमिच्छन्त्य इत्यन्वयः ॥ स्नाभोऽयमिति ॥

१ 'प्राप्तिश्च'. २ 'मुद्दीपयेत्'. ३ 'ताबन्निर्वाण एव सः'. ४ 'कुचयोर्द्रष्टुं'. ५ 'विश्वधातारं'.

कुवलयानन्दः । [ उल्लासालंकारः ६९

885

यत्र कस्यचिद्वणेनान्यस्य गुणो दोषेण दोषो गुणेन दोषो दोषेण गुणो वा वर्ण्यते स उद्घासः ॥ द्वितीयार्धमाद्यस्योदाहरणम् । तत्र पतिव्रतामहिमगुणेन तदीयस्नानतो गङ्गायाः पावनत्वगुणो वर्णितः । द्वितीयश्लोके द्वितीयस्योदा-हरणम् । तत्र राज्ञो धाटीपु वने पलायमानानामरातियोषितां पादयोधीव-नपरिपन्थिमार्दवदोषेण तयोः काठिन्यमसृष्ट्वा व्यर्थे कुचयोस्तत्सृष्टवतो धातु-निन्दात्वदोषो वर्णितः । नृतीयश्लोकस्नृतीयचतुर्थयोरुदाहरणम् । तत्र सज्जन-महिमगुणेन धनस्य तदनाश्रयणं दोपत्वेन राज्ञः क्रौर्यदोपेण तत्सेवकानां वधं विना विनिर्गमनं गुणत्वेन वर्णितम् ॥

अनेनैव क्रमेणोदाहरणान्तराणि।

यदयं रथसंक्षोभादंसेनांसो निपीडितः। एकः कृती मदङ्गेषु शेपमङ्गं भुवो भरः॥

अत्र नायिकासौन्दर्यगुणेन तदंसनिपीडितस्य स्वांसस्य कृतित्वगुणो वर्णितः॥

छोकानन्दन चन्दनद्वम सखे नास्मिन्वने स्थीयतां दुर्वेशैः परुपैरसारहृदयैराकान्तमेतद्वनम् । ते द्यन्योन्यनिघर्षजातदहनज्वालावलीसंकुला न स्वान्येव कुलानि केवलमंदी सर्वं दहेयुर्वनम् ॥ अत्र वेणूनां परस्परसंघर्षणसंजातदहनसंकुलस्वदोषेण वननाशरूपदोषो वर्णितः ।

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैदूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्धा ।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेपा
भुङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने चरन्ति ॥
भत्र अमराणामलंकरणत्वगुणेन गजस्य तत्प्रतिक्षेपो दोपत्वेन वर्णितः ।
आधातं परिचुम्बितं परिमुहुर्लीढं पुनश्चर्वितं
त्यक्तं वा भुवि नीरसेन मनसा तत्र व्यथां मा कृथाः ।
हे सद्दल तवैतदेव कुशलं यद्दानरेणाद्रादन्तःसारविलोकनव्यसनिना चूर्णीकृतं नाइमना ॥

भूपालसेवकानामयमेव लाभो यदि वधो न भवतीत्यन्वयः ॥ यद्यमिति ॥ रथस्य संक्षोभाचलनायद्यमंसोंऽसेनार्थाद्यताया निपीडितः संघृष्टो ममाक्षेषु मध्ये-स एवेकः कृती कुशलः। अवशिष्टमङ्गं भूमेर्भारमित्यर्थः। दुवेंशैर्दुष्टवेणुभिर्दुष्कुलैश्चे स्यादः श्रेषो वोध्यः। वननाशरूपो वनसंवन्धिनाशरूपः । वनस्यति युक्ततरः पाठः। तत्प्रतिक्षेपो भ्रमरिनरासो गजस्य दोषत्वेनेति संवन्धः॥ आद्यातमिनित ॥ मुहुः परिलीडमास्वादितम् । नीरसेन मनसा करणभूतेन । वानरेण।

१ 'मिदं सर्वे'.

### अवज्ञालंकारः ७०] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

\$83

अत्र वानरस्य चापलदोपेण रतस्य चूर्णनाभावो गुणत्वेन वर्णितः । अत्र प्रथमचतुर्थयोरुलासोऽन्वर्थः । मध्यमयोर्छित्रन्यायेन लाक्षणिकः ॥ १३४ ॥

#### अवज्ञालंकारः ७०

ताभ्यां तौ यदि न स्थातामवज्ञालंकृतिस्तु सा । स्वल्पमेवाम्बु लभते प्रैस्थं प्राप्यापि सागरम् ॥ मीलन्ति यदि पद्मानि का हानिरमृतद्युतेः॥ १३५॥

ताभ्यां गुणदोपाभ्यां । तौ गुणदोपौ । अत्र कस्यचिद्वणेनान्यस्य गुणालाभे द्वितीयार्धमुदाहरणम् । दोपेण दोपस्यात्राप्तौ तृतीयार्धम् । यथा—

मदुक्तिश्चेदन्तर्भद्यति सुधीभ्य सुधियः
किमस्या नाम स्याद्रुसपुरुपानादरभरैः।
यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयापि रमणी
कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते॥
त्वं चेत्संचरसे वृषेण छघुता का नाम दिग्दन्तिनां
व्यालैः कञ्चणभूषणानि कुरुषे हानिन हेम्नामि।
मूर्धन्यं कुरुषे सितांशुमयशः किनाम छोकत्रयीदीपसाम्बुजवान्धवस्य जगतामीशोऽसि किं बृमहे॥

अत्राचे कवितारमणीगुणाभ्यामरसवालकयोईदयोहासरूपगुणाभावो व-र्णितः । द्वितीये परमेश्वरानङ्गीकरणदोषेण दिग्गजादीनां लघुतादिदोषाभावो वर्णितः ॥ १३५ ॥

कर्ता । तत्र तस्मिन्सित । विचारणव्यसिनना विचारणतत्परेण । अद्मना पाषा-णेन । प्रथमचतुर्थयोर्गुणेन गुणदोषेण वा गुण इति भेदयोः । उल्लास उल्लासश-व्दः ॥ अन्वर्थ इति ॥ उत्कृष्टोल्लासः सुखं यत्रेव्यर्थानुगत इत्यर्थः ॥ छत्रि-न्यायेनेति ॥ केषुचिच्छत्रसंवन्धाच्छत्र्यच्छत्रिसमुदाये छत्रिणो यान्तीतिवदि-त्यर्थः ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ इत्युल्लासाळंकारः ॥ ६९ ॥

प्रस्थं प्रस्थपरिमाणपात्रम् ॥ मदुक्तिरिति ॥ ममोक्तिः कविता । सुधियो-ऽन्तःकरणं सुधीभूयामृतीभूय चेन्मद्यति तोषयित तदास्या मदुक्तेः अरसानां नीरसानां पुरुषाणामनादरसमूहैः किं नाम स्यात् । न किंविदिखर्थः । क्विवदल-सेति पाठः । परमरमणीयापि । केव । रमणी स्त्री यूनस्तरुणस्य यथान्तःकरणह-रणं कुरुते तद्वत्कुमाराणां वालानामित्यन्वयः ॥ त्वं चेदिति ॥ शिवं प्रति कस्यापि कवेरुक्तिः । जलांग्रं चन्द्रं पक्षे जडांग्रम् । अम्बुजवानधवः सूर्यः । उह्या-सह्तपगुणाभाव उल्लासहत्रस्य गुणस्याभावः ॥ १३५ ॥ इत्यवज्ञाप्रकरणम् ॥ ७०॥

१ 'पान्थं प्राप्यापि'.

# अनुज्ञालंकारः ७१ दोपस्याभ्यर्थनानुज्ञा तत्रैव गुणदर्शनात् । विपदः सन्तु नः शश्वद्यासु संकीर्त्यते हरिः ॥ १३६ ॥

यथावा---

मरयेव जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं हरे । नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकाङ्कृति ॥

इयं हनुमन्तं प्रति राघवस्योक्तिः । अत्र प्रत्युपकाराभावो दोषस्तदभ्युपग-मे हेतुर्गुणो विपत्त्याकाङ्काया अप्रसक्तिः । सा च व्यतिरेकमुखपवृत्तेन सामा-न्येन विशेषसमर्थनरूपेणार्थान्तरन्यासेन दर्शिता । यथावा—

> वैजेम भवदन्तिकं प्रकृतिमेल पैशाचिकीं किमिलमर्रसंपदः प्रमथनाथ नाथामहे । भवद्भवनदेहलीविकटतुण्डदण्डाहति-त्रुटन्मुकुटकोटिभिर्मघवदादिभिर्भूयते ॥ १३६॥

> > लेशालंकारः ७२

लेशः साद्दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनम् । अखिलेषु विहङ्गेषु हन्त स्वच्छन्दचारिषु ॥ शुक पञ्जरवन्धस्ते मधुराणां गिरां फलम् ॥ १३७॥

दोषस्य गुणत्वकल्पनं गुणस्य दोषत्वकल्पनं च लेशः । उदाहरणं राज्ञो-ऽभिमते विदुषि पुत्रे चिरं राजधान्यां प्रवसित तद्दर्शनोत्कण्ठितस्य गृहे स्थि-तस्य पितुर्वचनमप्रस्तुतप्रशंसारूपम् । तत्र प्रथमार्धे इतरविह्गानामवकृत्व-दोषस्य स्वच्छन्दचरणानुकूलतया गुणत्वं कल्पितम् । द्वितीयार्धे मधुरभाषि-त्वस्य गुणस्य पञ्जरबन्धहेतुतया दोषत्वं कल्पितम् । न चात्र व्याजस्तुतिरा-

दोषस्येति ॥ अभ्यर्थना इच्छा । तत्रैव दोष एव । अनुज्ञेति लक्ष्यिनदेशः। शश्वित्रन्तरं संकीर्ल्यत इत्यनेनान्विय ॥ मय्येवेति ॥ जीर्णतां प्रत्युपकाराक्षम-ताम् । हरिशब्दो वानरार्थः ॥ व्यतिरेकमुखेति ॥ वैधर्म्यमुखेत्यर्थः । अस्य चार्थान्तरन्यासेनेत्वनेनान्वयः ॥ द्रितिति ॥ वैधर्म्यविपर्यये प्रत्युपकारानिभिलाषी विपत्तिं नाकाङ्कृतीत्यर्थपर्यवसानादिति भावः ॥ व्रज्ञेनेति ॥ हे प्रमथनाथ हर, पैशाचिक्षः पिशाचसंविध्वनीं प्रकृतिं पिशाचतामेत्य प्राप्य भवतोऽन्तिकं समीपदेशं भजेम । अमरसंपत्तीः किमिति प्रार्थयामहे । यतो मघवदादिभिरिन्द्रप्रमुखेरिप भवद्भवनदेहलीषु विकटतुण्डस्य वक्षतुण्डस्य दण्डाघातैः स्फुटन्मुकु-टाप्रभूयत इत्यर्थः ॥ १३६ ॥ इत्यनुज्ञाप्रकरणम् ॥ ७१ ॥

१ 'यत्त्वयैव कृतं'. २ 'अस्य क्रचित्पूर्वार्थोत्तरार्धयोर्वेलोम्येन पाठः'. ३ 'संपदं'.

शङ्कनीया । नहात्र विह्गान्तराणां स्तुतिव्याजेन निन्दायां शुकस्य निन्दा-व्याजेन स्तुतौ च तारपर्यम् । किंतु पुत्रदर्शनीत्कण्ठितस्य दोषगुणयोर्गुणदोष-त्वाभिमान एवात्र श्लोके निवदः । यथावा—

> सन्तः सचरितोद्यव्यसनिनः प्रादुर्भवद्यञ्चणाः सर्वत्रैव जनापवाद्चिकता जीवन्ति दुःखं सदा । अव्युत्पन्नमतिः कृतेन न सता नैवासता व्याकुलो युक्तायुक्तविवेकशून्यहृदयो धन्यो जनः प्राकृतः ॥

दण्डी त्वत्रोदाजहार-

'युवेप गुणवात्राजा योग्यस्ते पतिरूर्जितः। रणोत्सवे मनः सक्तं यस्य कामोत्सवाद्पि॥ चपलो निर्देयश्चासौ जनः किं तेन मे सिख। आगःप्रमार्जनायैव चाटवो येन शिक्षिताः॥'

अत्राद्यश्लोके राज्ञो वीर्योक्षर्षस्तुतिः । कन्याया निरन्तरसंभोगनिविवर्ति-पया दोपत्वेन प्रतिभासतामित्यभिप्रेत्य विद्ग्ध्या सख्या राजप्रकोपपिरिजि-हीर्पया स एव दोपो गुणत्वेन वर्णितः । उत्तरश्लोके सखीभिरुपदिष्टं मानं कर्तुमशक्तयापि तद्यतो मानपिरग्रहानुगुण्यं प्रतिज्ञाय तद्गिर्वाहमाशङ्कमा-नया सखीनामुपहासं पिरिजिहीर्पन्त्या नायिकया नायकस्य चाटुकारितागुण एव दोपत्वेन वर्णितः । नचाद्यश्लोके स्तुतिर्निन्दापर्यवसायिनी द्वितीयश्लोके निन्दा स्तुतिपर्यवसायिनीति व्याजस्तुतिराशङ्कनीया । राजप्रकोपादिपरिहारा-र्थमिह निन्दास्तुत्योरन्याविदितत्या छेशत एवोद्घाटनेन ततो विशेषादिति । वस्तुतिस्वह व्याजस्तुतिसद्भावेऽपि न दोषः । नद्येतावता छेशमात्रस्य व्या-जस्तुत्यन्तर्भावः प्रसज्जते । तदसंकीर्णयोरिप छेशोदाहरणयोदंशितत्वात् । नापि व्याजस्तुतिमात्रस्य छेशान्तर्भावः प्रसज्जते । भिन्नविषयव्याजस्तुत्युदा-

हेश इति लक्ष्यनिर्देशः । प्रवसतीति सितसप्तम्यन्तम् । श्रुकस्य निन्दायाः निन्दाव्याजेन स्तृतो चेल्यन्वयः ॥ सन्त इति ॥ सचितस्योदयो वृद्धिसद्ध्यस्विनस्तत्पराः प्रादुर्भवद्यन्त्रणं स्वेच्छाचरणिनरोधो येषां ते । सर्वत्रेव विषये । दुःलिमिति कियाविशेषणम् । अव्युत्पन्नमितरिनपुणमितः । सता समीचीनेन कृत्तेनाचरणेन प्राकृतो नीचः ॥ युवैष इति ॥ वराधिनीं कन्यकां प्रति सखीव-चनम् । चपल इलादि च नाथिकायाः सखीं प्रति । उत्सेक इति पाठेऽप्युत्कषे एवार्थः । कन्याया दोषत्वेन भासतामिल्यन्वयः । निवर्तितुमिच्छा निविवर्तिषा तन्त्रूपदोपत्वेनल्यथः । निर्विवित्सोरिति पाठे राज्ञो विशेषणम् । कुतस्तिर्हि गुणत्वेन वर्णनं तत्राह—राजप्रकोपेति ॥ अन्येनाविदितं यथा स्यादिति कियाविशेषणम् ॥ लेशतः कृत्ताम् एवति ॥ तदुक्तं दण्डिनेव । 'लेशमेके विदुर्निन्दां स्तुर्ति वा लेशतः कृत्ताम्' इति । लेशमात्रस्थेति कृत्सार्थकम् । उदाहरणयोरिलिलेख्याद्योः ॥ भिन्न-

१ 'निविंवित्सोदींपत्वेन'.

कुवलयानन्दः।

मुद्रालंकारः ७३

हरणेषु 'कस्त्वं वानर रामराजभवने लेखार्थसंवाहको यहक्रं मुहुरीक्षसे न धनिनां बूपे न चाटून्स्या' इत्यादिषु दोपगुणीकरणस्य गुणदोपीकरणस्य चा-भावात्। तत्रान्यगुणदोपाभ्यामन्यत्र गुणदोपयोः प्रतीतेः॥ विपयैक्येऽपि

'इन्दोर्लक्ष्म त्रिपुरजयिनः कण्ठमूलं मुरारि-दिङ्कागानां मदजलमपीभाक्षि गण्डस्थलानि । अद्याप्युवीवलयतिलक इयामलिम्नानुलिप्ता-न्याभासन्ते वद धवलितं किं यशोभिस्त्वदीयैः॥'

इत्याद्यदाहरणेषु छेशास्पर्शनात्। तत्र हीन्दुळक्ष्म्यादीनां धवलीकरणाभा-वदोप एव गुणत्वेन न पर्यवस्यति किंतु परिसंख्यारूपेण ततोऽन्यत्सर्वं धव-ि लितिमित्यन्यो गुणः प्रतीयते । कचिद्ध्याजस्तुत्युदाहरणे गुणदोषीकरणसन्त्वे-ऽपि स्तुतेर्विषयान्तरमपि दृश्यते । यथा—

सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या संस्त्यते बुधैः । नारयो लेभिरे पृष्टं न वक्षः परयोषितः ॥

अत्रहि वाच्यया निन्द्या परिसंख्यारूपेण ततोऽन्यत्सर्वमर्थिनामभिमतं दीनारादि दीयते इति स्तुत्यन्तरमपि प्रतीयते । एवंच येपूदाहरणेषु कस्ते शौर्यमदो योद्धमित्यादिषु गुणदोपादिषु गुणदोपीकरणादिकमेव व्याजस्तुति-रूपतयावतिष्ठते, तत्र लेशव्याजस्तुत्योः संकरोऽस्तु। इत्थमेव हि व्याजस्तुत्य-प्रस्तुतप्रशंसयोरिप प्रावसंकरो वर्णितः ॥ १३७ ॥

# मुद्रालंकारः ७३ सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः । नितम्बगुर्वी तरुणी टग्युग्मविपुला च सा ॥ १३८॥

विषयेति ॥ अन्यनिन्दयान्यस्य स्तुतिरन्यस्तुस्यान्यनिन्देस्येवमादिरूपेस्यर्थः। नतु
तथाप्येकविषयाञ्याजस्तुतिर्न लेशाद्भियेतेसाशङ्कयाह—विषयेक्येऽपीति ॥
लेशास्पर्शनादिस्येयतनेनान्वयः ॥ इन्दोरिति ॥ हे उर्वीवलयतिलकरूप राजन्,
त्वदीयैर्यशोभिः किं धवलितं तद्वद। यतोऽद्यापि इन्दुलक्ष्मादीनि इयामलिम्ना इयामवर्णेनानुलिप्तान्याभासन्ते इस्यन्वयः । लक्ष्म लाञ्छनम् । दिङ्नागानां दिग्गजानां
मदजलमेव मधी तद्भाक्षि तद्युक्तानि ॥ परिसंख्येति ॥ एतान्येव इयामानीस्येवंरूपेस्यर्थः । विषयान्तरं दोषीकृताद्भित्रं गुणरूपमालम्बनम् ॥ सर्वदेति ॥
अरयः पृष्टमर्थात्तव न लेभिरेऽप्राप्तवन्तः पलायनाभावात् । दीनारः परिमाणविशेषपरिच्छिन्ना सुवर्णमुद्रा । एवंच लेशन्याजस्तुस्योरसंकीर्णविषयसत्त्वे च गुणदोषीकरणादिकमिस्यादिपदेन दोषगुणीकरणसंभवः । येष्वित्युपक्रमात्तत्रिति पाठो
युक्ततरः । अत्रेस्यि युक्त एव । इदमोऽपि यच्छन्दार्थपरामर्शकत्वात् ॥१३०॥
इति लेशालंकारः ॥ ७२ ॥

सुच्यार्थेति ॥ सूचनीयस्यार्थस्येत्यर्थः । मुद्रेति लक्ष्यनिर्देशः । दग्युगमं

१ 'रामचन्द्रभवने'.

### रतावल्यलंकारः ७४] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

580

अत्र नायिकावर्णनपरेण युग्मविपुलापदेनास्यानुष्टुभो युग्मविपुलानामत्य-रूपसूच्यार्थसूचनं मुद्रा । यद्यप्यत्र प्रन्थे वृत्तनाम्नो नास्ति सूचनीयत्वं तथा-प्यस्योत्तरार्धस्य लक्ष्यलक्षणयुक्तच्छन्दःशास्त्रमध्यपातित्वेन तस्य सूचनीयत्व-मस्तीति तद्भिप्रायेण लक्षणं योज्यम् । एवं नवरत्नमालायां तत्तद्वनामिन-वेशेन तत्तन्नामकजातिसूचनम् । नक्षत्रमालायामस्यादिदेवतानामिभिनंक्षत्र-सूचनिमत्यादावयमेवालंकारः । एवं नाटकेषु वक्ष्यमाणार्थसूचनेष्विप ॥१३८॥

रत्नावल्यलंकारः ७४

र्ऋमिकं प्रकृतार्थानां न्यासं रत्नांवर्ला विदुः । चतुरास्यः पतिर्लक्ष्म्याः सर्वज्ञस्त्वं महीपते ॥ १३९ ॥

अत्र चतुरास्यादिपदैर्वणनीयस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मता प्रतीयत इति प्रसि-द्धसहपाठानां क्रमेण निवेशनं रकावली । यथावा—

> रसाप्तप्रियलाञ्छने कठिनतावासे रसालिङ्गिते प्रह्णादैकरसे क्रमादुपचिते भूभदुरुत्वापहे। कोकस्पार्धिनि भोगभाजि जनितानङ्गे खलीनोन्मुखे भाति श्रीरमणावतारदशकं बाले भवत्याः स्तने॥

विपुलं यस्याः सा । अत्र प्रन्थे अस्मिन्नलंकारग्रन्थे । रत्नमालाशब्देन भगवत्सुतिपद्यावलीविशेष उच्यते । रत्ननामनिवेशेन प्रकृतार्थपररत्नवाचिपद्घटनेन ।
तत्तन्नामकजातिसूचनं तत्तन्नामप्रवृत्तिनिमित्तरत्नजातिसूचनम् । नक्षत्रमालाशब्दार्थोऽपि पूर्वोक्त एव । अध्यादिदेवतानामभिर्नक्षत्राणां तद्देवत्यानां सूचनं वोध्यम् ॥ वश्यमाणिति ॥ यथा अनर्घराघवे 'यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्थन्चोऽपि
सहायताम् । अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुन्नति ॥' इति सूत्रधारवचनेन वक्ष्यमाणरामरावणवृत्तान्तसूचनमिति वोध्यम् ॥ १३८ ॥ इति मुद्रालंकारः ॥ ७३ ॥

ऋिमकिमिति ॥ प्रकृतार्थानां कमिकं प्रसिद्धकमानुसारि न्यसनं प्रतिपादनं रलाविहरलंकारः । प्रकृतत्वं च यथाकथंचित्प्रकृतसंवन्धवत्त्वं वोध्यम् ॥ चतुरे-िति ॥ चतुरमास्यं यस्य सः चतुर्मुखश्च ॥ रत्याप्तिति ॥ हे वाले, भवलाः स्तने श्रीरमणस्य विष्णोरवतारदशकं भातीलन्वयः । कीदशे । रतावाप्तं प्राप्तं प्रियस्य लाञ्छनं चिह्नं नखक्षताङ्गरागादिकं येन तथाभूते । किनताया आवासे स्थानभूते । रसेनालिङ्गिते । प्रकृताहादे एकरसे तत्परे । कमाद्वदरामलकादिप-रिमाणलाभेनोपचिते प्रवृद्धे । भूभृतां पर्वतानां गुरुत्वमपहन्ति नाशयित तादशे, ततोऽपि महत्त्वात् । चक्रवाकस्पर्धाशीले तत्सदशत्वात् । भोगः सुखं शरीरं वा तद्भाजि । जनितमदने । खेष्विन्दियेषु लीना आसक्ता उन्मुखा यस्मित्तादशे । एतैरेव विशेषणैरवतारदशकरूपतापि स्तनस्य बोध्या।तद्यथा—रत्या आप्तः प्रयः

१ 'ऋमिका'. २ 'रलावली'. ३ 'कुम्भावैभी'.

कुवलयानन्दः । [ रलावल्यलंकारः ७४

886

यथावा---

लीलालानां नयनयुगलद्गाधिमा दत्तपत्रः कुम्भावेतौ कुचपरिकरः पूर्वपक्षीचकार । श्रूविश्रान्तिर्मदनधनुषो विश्रमानन्ववादी-द्वऋज्योत्स्ना शशधररुचं दूपयामास यस्याः ॥

अत्र पत्रदानपूर्वपक्षोपन्यासानुवाददूपणोद्भावनानि बुधजनप्रसिद्धक्रमेण न्यसानि । प्रसिद्धसहपाठानां प्रसिद्धक्रमाननुसरणेऽप्ययमेवाळंकारः।यथावा— 'यस्य विद्मयो हृदयेषु जलमयो लोचनपुरेषु मारुतमयः श्वसितेषु क्षमा-मयोऽङ्गेष्वाकाशमयः स्वान्तेषु पञ्चमहाभूतमयो मूर्त इवादश्यतः निहतप्रति-सामन्तान्तःपुरेषु प्रतापः ।' एवमष्टलोकपालनवप्रहादीनां प्रसिद्धसहपाठानां यथाकथंचित्पकृतोपमानोपरञ्जकतादिप्रकारेण निवेशने रत्नावल्यलंकारः । प्र-कृतान्वयं विना क्रमिकतत्तन्नाम्ना श्रेषभङ्ग्या निवेशने क्रमप्रसिद्धरहितानां प्रसिद्धसहपाठानां नवरतादीनां निवेशनेऽप्ययमेवालंकारः ॥ १३९ ॥

कामस्तस्य लाञ्छनं मत्स्यस्तद्रूपे । कठिनताया आवासे कूर्मे । रसया पृथिव्या स्वोद्धरणकाल आलिक्षिते वराहे। प्रहादे एको रसः प्रीतिर्वस्य तस्मिन्नसिंहे। कमः पादविक्षेपस्तद्नुसारेणोपचिते प्रवृद्धे वामने । भूभृतां राज्ञां गौरवनाशके भागवे । कोकस्पिधिनि सीतावियोगातुरतया चक्रवाकशापदे रामे । भोगः फणा तद्भाजि शेषावतारे बलभद्रे । जनितमनङ्गमङ्गस्य शरीरस्य विरुद्धं मौनभोगत्या-गसमाधिप्रमृति येन तस्मिन् बुद्धे । खलीनमश्रस्य वल्गा तदुन्मुखे किल्कनीति ॥ कमान्तुसरणेऽपीति ॥ तथाच प्रसिद्धसहपाठानामधीनां न्यसनं रलावलि-रिति सामान्यलक्षणम् । सकमाकमत्वे तत्प्रभेदाविति भावः ॥ यस्येति ॥ यस्य प्रतापो निहतानां प्रतिशत्रुभूतानामन्तः पुरेषु पत्रमहाभूतमयो मूर्त इवादस्यतेल-न्वयः । पश्चमहाभूतमयत्वमेव विशेषणैर्दर्शयति — विह्नमय इत्यादि ॥ अङ्गेषु क्षमामयः पृथ्वीमयः पीडाभरसिहिष्णुत्वात् । स्वान्तेष्वन्तःकरणेषु आकाशमयः तेषां श्रून्यताश्रयत्वात् ॥ यथाकथंचिदित्यस्य प्रपञ्चनं प्रकृतोपमानेत्यादि॥ उपमानं चोपरञ्जकं चोपमानोपरञ्जके तयोभीवस्तत्ता । प्रकृतं प्रत्युपमानता उपर-अकता चेल्रथः । उपरञ्जकता चारोप्यमाणता । तदुक्तम्—'उपरञ्जकतामेति विषयी रूपकं तदा' इति । तत्रोपमानता रिवरिव प्रतिदिवसोपजायमानोदय इ-लादिवत् । उपरञ्जकता तु चतुरास्य इत्यायुदाहरणे विह्नमय इत्यादिप्रतापवर्णने च स्पष्टिति ॥ प्रकृतान्वयं विनेति ॥ 'मित्र चन्द्रमुखी बाला लोहिताधरपह-वा' इत्यादाविति भावः । क्रमिकेत्युपलक्षणम् । तदभावेऽपि 'गुरुणा जघनेनैषा तरुणी मन्दगामिनी' इत्यादावप्ययमलंकार इति वोध्यम् ॥ १३९ ॥ इति रला-वल्यलंकारः ॥ ७४ ॥

# पूर्वेरूपालंकारः७६] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

388

तहुणाळंकारः ७५ तहुणः स्वगुणत्यागादन्यदीयगुणग्रहः । पद्मरागायते नासामौक्तिकं तेऽधरत्विषा ॥ १४० ॥

यथावा--

वीर त्वद्गिपुरमणी परिधातुं पछ्ठवानि संस्पृश्य । न हरति वनभुवि निजकररुहरुचिखचितानि पाण्डुपत्रधिया ॥१४०॥

पूर्वरूपाछंकारः ७६ पुनः स्वगुणसंप्राप्तिः पूर्वरूपम्रदाहृतम् । हरकण्ठांशुलिप्तोऽपि शेषस्त्वद्यशसा सितः ॥ १४१ ॥

यथावा-

विभिन्नवर्णा गरुडायजेन सूर्यस्य रथ्याः परितः स्फुरन्त्या । रत्नेः पुनर्यत्र रुचा रुचं स्वामानिन्यिरे वंशकरीरनीलैः ॥ अयमेव तद्गुण इति केचिद्यवजहुः ॥ १४१ ॥

पूर्वावस्थानुवृत्तिश्च विकृते सति वस्तुनि । दीपे निर्वापितेऽप्यासीत्काश्चीरतैर्महन्महः ॥ १४२ ॥

तहुण इति ॥ खगुणलागादनन्तरमन्यदीयगुणप्रहणं तहुणालंकारः ॥ प-द्मेति ॥ तव नासामौक्तिकमधरकान्ला पद्मरागवदाचरतीलर्थः ॥ वीरेति ॥ हे वीर, त्वदरिकामिनी वनभुवि परिधानं कर्तु पह्नवानि करेण संस्पृश्य पाण्डुप-त्रबुद्धा न हरति न गृह्णाति । कीदशानि । निजकररुहाणां नस्नानां रुच्या श्वेत-कान्ला खचितानि व्याप्तानीलर्थः ॥ १४० ॥ इति तहुणालंकारः ॥ ७५ ॥

पुनरिति ॥ खगुणलागानन्तरं पुनः खगुणप्राप्तिः पूर्वेह्पमलंकारः ॥ हरेति ॥ नीलोऽपीति युक्तः पाठः ॥ विभिन्नेति ॥ माघे रैवतकिगिरिवर्णनम् ।
गरुडाप्रजेनारुणेन विभिन्नवर्णा मिश्रितवर्णाः सूर्यस्य रथ्या अश्वा यत्र गिरौ वंशाङ्करवन्नीलै रक्तैः परितः स्फुरन्त्या रुचा खां रुचं नीलशुतिमानिन्यरे आनीतवन्तः । रुचा विभिन्नवर्णा इति वान्वयः । केचिदित्यस्वरसवीजं तु पद्मरागायत
इत्युदाहरणे तद्गणालंकारो न स्यात् । नचेष्टापितः । अनुभवसिद्धचमत्कारस्य
निरालम्बनत्वापत्तेरित्यूह्नीयम् । अथवायं तद्गण एवेत्येवकारकमभन्नेन काव्यप्रकाशकारादिमतोपन्यासपरत्वेन व्याख्येयम् । तैरत्र तद्गणस्योदाहृतत्वात् । अत्रिहि पूर्वमश्वानामरुणगुणत्वं अनन्तरं रैवतकरक्षेरुभयेषां तद्गणत्विमिति तद्गणद्वयमिति तेषामभिमतम् ॥१४९॥ पूर्वेति ॥ वस्तुनि विकृते विगते सत्यिप पूर्वा-

१ 'शेषस्तु शशिना सितः'.

लक्षणे चकारात्पूर्वरूपिमिति लक्ष्ययाचकपदानुवृत्तिः । यथावा— द्वारं खिक्किमरावृतं बिहरिप प्रस्तित्रगण्डेर्गजै-रन्तः कञ्चिकिभः स्फुरन्मणिधरेरध्यासिता भूमयः । आकान्तं महिपीभिरेव शयनं त्वद्विद्विपां मन्दिरे राजन्सेव चिरंतनप्रणयिनी शून्येऽपि राज्यस्थितिः ॥

> अतद्वणालंकारः ७७ संगतान्यगुणानङ्गीकारमाहुरतद्वणम् । चिरंरागिणि मचित्ते निहितोऽपि न रञ्जसि ॥१४३॥

यथावा--

गण्डाभोगे विहरति मदैः पिच्छिले दिग्गजानां वैरिस्त्रीणां नयनकमलेष्वञ्जनानि प्रमार्ष्टि । यद्यप्येषा हिमकरकराद्वैतसौवस्तिकी ते कीर्तिर्दिक्ष स्फुरति तद्पि श्रीनृसिंहक्षितीन्द्र ॥

ननु चान्यगुणेनान्यत्र गुणोदयानुद्यरूपाभ्यामुह्यासावज्ञालंकाराभ्यां तद्व-णातद्वणयोः को भेदः । उच्यते । उद्यासावज्ञालक्षणयोर्गुणशब्दो दोपप्रतिष-क्षवाची । अन्यगुणेनान्यत्र गुणोदयतदनुद्यो च न तस्यैव गुणस्य संक्रमणा-संक्रमणे किंतु सद्वरूपदेशेन सदसच्छिष्ययोर्ज्ञानोत्पत्त्यनुत्पत्तिवत्तद्वुणजन्यत्वेन संभावितयोर्गुणान्तरयोरुत्पत्त्यनुत्पत्ती । तद्वणातद्वुणयोः पुनर्गुणशब्दो रूपर-सगन्धादिगुणवाची । तत्रान्यदीयगुणश्रहणाश्रहणे च रक्तस्फटिकवस्रमालि-न्यादिन्यायेनान्यदीयगुणेनेवानुरञ्जनाननुरञ्जने विवक्षिते । तथेव चोदाहर-णानि द्शितानि । यद्यप्यवज्ञालंकृतिरतद्वुणश्र विशेषोक्तिविशेषावेव । 'कार्या

वस्थाया अनुवृत्तिरिष पूर्वरूपमलंकारः। महः प्रकाशः॥ द्वारिमिति॥ हे राजन्, तव तद्विषां मन्दिरे शून्येऽपि चिरंतनः प्रणयो यस्याः सैव राज्यस्य स्थितिर्मर्यादा। अस्तीति शेषः। यतो द्वारं सङ्गिभिर्गण्डकाख्यपश्चिभिरेव खङ्गधारिभिरावृतं बहिरिष भूमयो मदप्रस्वित्रगण्डेर्गजैरध्यासिताः । अन्तःपुरभूमयो विलसन्मणिधारिभिः कञ्जुकिभिः सपैरेव सौविद्ह्नेरध्यासिताः । शयनं तल्पं महिषीभिर्वनिताभिरेव महिषस्त्रीभिराकान्तमिस्यन्वयः॥ १४२॥ इति पूर्वरूपालंकारः॥ ७६॥

संगति ॥ संगतः खसंबद्धो योऽन्यः पदार्थस्तद्धणानङ्गीकारमतद्धणालंका-रमाहुः ॥ चिरमिति ॥ रागिण्यनुरागिणि मिल्रिष्टादिरज्ञनद्रव्ययुक्ते च । निहि-तोऽपि त्वं न रक्षसि रक्तोऽनुरागयुक्तश्च न भवसीति श्विष्टम् ॥ गण्डेति ॥ हे श्रीमन्नृसिंहाख्यभूपते, एषा तव कीर्तिर्मदैः पिच्छिले पिक्किले दिग्गजानां गण्ड-प्रदेशे यद्यपि विहरति तथा वैरिस्त्रीणां नयनकमलेषु स्थितान्यज्ञनानि प्रमार्षि

१ 'राश्रितं'. २ 'तानुगणा'. ३ 'निहितापि न रज्यसि'.

### मीलितालंकारः ७९] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

242

न निर्विशेषोक्तिः सति पुष्कलकारणे' इति तत्सामान्यलक्षणाक्रान्तःवात् । तथाप्युल्लासतद्वणप्रतिद्वनिद्वना विशेषाकारेणालंकारान्तरतया परिगणितावि-ति ध्येयम् ॥ १४३ ॥

अनुगुणालंकारः ७८

प्राक्तिसर्द्धंत्वगुणोत्कर्षोऽनुगुणः परसंनिधेः। नीलोत्पलानि दधते कटाक्षेरतिनीलताम्।। १४४॥

यथा-

कपिरिप च कापिशायनमदमत्तो वृश्चिकेन संदृष्टः । अपि च पिशाचयस्तः किं वृमो वैकृतं तस्य ॥ अत्र कपित्वजात्या स्वतःसिद्धस्य वैकृतस्य मद्यादिभिरुत्कर्षः ॥ १४४ ॥

मीलितालंकारः ७९

मीलितं यदि साद्याद्भेद एव न लक्ष्यते । रसो नालक्षि लाक्षायाश्वरणे सहजारुणे ॥ १४५ ॥

यथावा---

मिल्लकामोल्यभारिण्यः सर्वोङ्गीणाईचन्दनाः । क्षौमवत्यो न लक्ष्यन्ते ज्योत्कायामभिसारिकाः॥

अत्राद्ये चरणालक्तकरसयोररुणिमगुणसाम्याद्वेदानध्यवसायः । द्वितीयो-दाहरणे चन्द्रिकाभिसारिकाणां धवलिमगुणसाम्याद्वेदानध्यवसायः॥ १४५॥

प्रोञ्छति तदिष तथापि दिक्ष हिमकरस्य चन्द्रस्य यिकरणाद्वैतं तस्य सौबिक्तकी स्वस्तीत्याहेत्यर्थे 'तदाहेति माशब्दादिभ्यप्टग्वाच्यः' इत्यनेन ठक् प्रत्ययः । तत्स-दशीति यावत् । स्फुरित प्रकाशत इत्यर्थः ॥ विशेषाकारेणेति ॥ प्राग्लक्षि-तविशेषक्षेणेत्यर्थः ॥ १४३ ॥ इत्यतद्वणालंकारः ॥ ७७ ॥

प्रागिति ॥ परसंनिधिवशात्पूर्वसिद्धस्य स्वगुणस्योत्कर्षोऽनुगुणो नामालंकारः । नीलोत्पलानि कर्णावतंसीकृतानि ॥ किपिरिति ॥ कापिशायनं मद्यम् ॥१४४॥ इस्रानुगुणालंकारः ॥ ७८ ॥

मीलितमिति लक्ष्यनिर्देशः ॥ रस इति ॥ खभावलोहिते चरणे लाक्षाया रसो नालक्षि न ज्ञातः ॥ मिल्लिकेति ॥ क्षौमं दुकूलं तद्धारिण्यः ॥ १४५॥ इति मीलितालंकारः ॥ ७९ ॥

१ 'सिद्धस्वगुणो', 'सिद्धेः स्वगुणो'. २ 'दृ इयते'. ३ 'मालभारिण्यः'.

[सामान्यालंकारः ४०

#### सामान्यालंकारः ८०

सामान्यं यदि साद्यादिशेषो नोपैलक्ष्यते । पद्माकरप्रविष्टानां मुखं नालक्षि सुभुवाम् ॥ १४६॥

यथावा--

रतसम्भेषु संकान्तैः प्रतिविम्वशतैर्वृतः । लक्केश्वरः सभामध्ये न ज्ञातो वालिसूनुना ॥

मीलितालंकारे एकेनापरस्य भिन्नस्वरूपानवभासरूपं मीलनं कियते।
सामान्यालंकारे तु भिन्नस्वरूपावभासेऽपि व्यावर्तकविशेषो नोपलक्ष्यत इति
भेदः। मीलितोदाहरणे हि चरणादेर्वस्त्वन्तरत्वेनागन्तुकं यावकादि न भासते। सामान्योदाहरणे तु पद्मानां मुखानां च व्यक्तयन्तरत्या भानमस्त्येव।
यथा रावणदेहस्य तत्प्रतिविम्बानां च, किंत्विदं पद्मिदं मुखमयं विम्बोऽयं
प्रतिविम्ब इति विशेषः परं नोपलक्ष्यते। अतप्व भेदतिरोधानान्मीलितं
तद्तिरोधानेऽपि साम्येन व्यावर्तकानवभासे सामान्यमित्युभयोरप्यन्वर्थता।
केचित्तु वस्तुद्वयस्य लक्षणसाम्यात्तयोः केनचिद्वलीयसा तदन्यस्य स्वरूपतिरोधाने मीलितं स्वरूपप्रतीताविष गुणसाम्याद्वेदतिरोधाने सामान्यम्।
एवंच—

अपाङ्गतरले दशौ तरलवक्षवर्णा गिरो विकासभरमन्थरा गतिरतीव कान्तं मुखम् । इति स्फुरितमङ्गके मृगदशां स्वतो लीलया तदत्र न मदोदयः कृतपदोऽपि संलक्ष्यते ॥

इत्यत्र मीलितालंकारः । अत्रिह दक्तारल्यादीनां नारीवपुषः सहजधर्म-त्वान्मदोदयकार्यत्वाच तदुभयसाधारण्यादुत्कृष्टतारल्यादियोगिना वपुषा म-दोदयस स्वरूपमेव तिरोधीयते । लिङ्गसाधारण्येन तज्ज्ञानोपायाभावात् ।

सामान्यमिति ॥ सामान्यमिति लक्ष्यनिर्देशः । विशेषो व्यावर्तकथर्मः । पद्मानामाकरः ॥ रत्नस्तम्भेष्यिति ॥ वालिस्तुनाङ्गदेन एकेन चरणज्योत्स्रादिना । अपरस्य लाक्षारसाभिसारिकादेः ॥ भिन्नस्वरूपेति ॥ मुखपद्मादेभिन्नस्य खरूपस्यावभासेऽपीत्यर्थः । उक्तमेवार्थमुदाहरणारुढतया विशदयति—मीलितोदाहरणे हीत्यादिना ॥ वस्त्वन्तरत्वेन न भासत इत्यन्वयः । तत्प्रतिविम्यानां च व्यक्तयन्तरत्या भानमस्त्येवेत्यनुषङ्गः । केचिदित्यस्याहरित्य-प्रिमेणान्वयः । केचित्प्रकाशकारादयः । तदुक्तम्—'समेन लक्ष्मणा वस्तु वस्तुना यन्निगृत्यते । निजेनागन्तुना वापि तन्मीलितमिति स्मृतम् ॥' इति । तयोर्मध्ये एवं चेत्रस्त्रत्वम् मीलितालंकार इत्यम्नेतनेनान्वयः ॥ अपाङ्गिति ॥ अपाङ्गस्तरलो ययोस्ते । तरलाः सत्वरोचारणात् वका वक्नोक्तिगर्मा वर्णा यासु ताः गिरो

१ 'नैवलक्ष्यते'. २ 'संक्रान्तः'.

## उन्मीलित-विशेषालंकारौ] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

143

मिल्रिकामालभारिण्य इत्यादिषु तु सामान्यालंकार इत्याहुः । तन्मते पद्माकर-प्रविष्टानामित्यादौ भेदाध्यवसायेऽपि व्यावर्तकास्फुरणेनालंकारान्तरेण भाव्यम् । सामान्यालंकारान्तरभेदेन वा पूर्वस्मिन्मते स्वरूपितरोधानेऽलंकारा-न्तरेण भाव्यं मीलितावान्तरभेदेन वा ॥ १४६॥

> उन्मीलित-विशेषालंकारौ ८१।८२ भेदवैशिष्ट्ययोः स्फूर्तावुन्मीलितविशेषकौ । हिमाद्रिं त्वद्यशोमग्रं सुराः शीतेन जानते ॥ लक्षितान्युदिते चन्द्रे पद्मानि च सुखानि च ॥१४७॥

मीलितन्यायेन भेदानध्यवसाये प्राप्ते कुतोऽपि हेतोभेदस्फूर्तीं मीलितप्र-तिद्वन्द्युन्मीलितम् । तथा सामान्यरीत्या विशेषास्फुरणे प्राप्ते कुतश्चिरकार-णाद्विशेषस्फूर्तीं तत्प्रतिद्वनद्वी विशेषकः । क्रमेणोदाहरणद्वयम् । तद्वणरीत्यापि भेदानध्यवसायप्राप्तावुन्मीलितं दश्यते । यथा—

वाक्यरूपाः । इति प्रकारेण मृगदशामङ्गके छीलया खतः खभावात्फुरितं प्रकटीभूतं तत्तस्मादत्राङ्गके कृतपदः कृतस्थितिः ॥ भेदाध्ययसायेऽपीति ॥ मुखपद्मयोर्भेदावभासेऽपील्यर्थः । व्यावर्तकास्फुरणेन हेतुना ॥ अलंकारान्तरेणेति ॥ खरूपातिरोधानेन मीलितासंभवाद्भेदातिरोधानेन च सामान्यस्याप्यसंभवादिति भावः ॥ सामान्येति ॥ तथाच गुणसाम्याद्विशेषाप्रह इति सामान्यालंकारसामान्यलक्षणम् । विशेषाप्रहश्च कविद्भेदे गृह्ममाणे कविचागृह्ममाण
इत्याद्यप्रकारान्तरगतिरत्र तन्मते स्यादिति भावः । अवान्तरभेदेन वेलनन्तरं
भावमिल्यनुषज्यते ॥ पूर्वस्मिन्निति ॥ मीलितं यदि सादश्यादिलादिपृवीकचन्द्रालोककुन्मत इल्पर्थः । खरूपतिरोधानेऽपाङ्गतरल इत्यादिलरूपतिरोधानस्थले ॥ अलंकारान्तरेणत्यादि ॥ खरूपतो ज्ञायमाने सादश्याद्भेदाप्रहणं
मीलितमिल्यङ्गीकारे प्रथमः पक्षः । सादश्याद्भेदाप्रहणमिल्येतावन्मात्रमीलितलक्षणाङ्गीकारेण द्वितीय इति भावः ॥ १४६ ॥ इति सामान्यालंकारः ॥ ८० ॥

भेदेति ॥ वैशिष्ट्यं वैजालम् । उन्मीलितं विशेषकथ क्रमेणालंकारौ । मप्तं भेदाप्रहात्तदन्तर्गतम् ॥ लिद्धातानीति ॥ संकुचितत्वादिति भावः । सामान्यरीला सामान्यालंकारन्यायेन । एवंच 'वेत्रत्वचा तुल्यहचां वधूनां कर्णाप्रतो गण्डतलागतानि । सङ्गाः सहेलं यदि नापतिष्यन्कोऽवेदियिष्यत्रवचम्पकानि ॥' इत्यपि विशेषकोदाहरणं बोध्यम् । यत्त्वनुमानालंकारेणेव गतार्थत्वात्रानयोरलंकारान्तरत्वमिति । तद्युक्तम् । उदाहृतस्थले भेदविशेषस्फूलोविशेषदर्शनहेतुक-प्रत्यक्षरूपत्वात् । अथापि स्वकपोलकिल्पतपरिभाषयानुमानालंकारतां त्रृषे तथापि साहश्यमहिन्ना प्रागनवगतयोर्भेदवैजालयोः स्फुरणात्मना विशेषाकारेण मीलित-सामान्यप्रतिद्वन्द्विना युक्तमेवालंकारान्तरत्वम् । अतद्वुणावज्ञयोरिव विशेषोक्त्य

कुवलयानन्दः।

[ उत्तरालंकारः ८३

नृत्यद्गर्गादृहासप्रसरसहचरैस्तावकीनैर्यशोभिधावत्यं नीयमाने त्रिजगित परितः श्रीनृसिंहक्षितीन्द्र ।
नेदृग्ययेप नाभीकमलपरिमलभौदिमासाद्यिप्यदेवानां नाभविष्यत्कथमपि कमलाकामुकस्यावबोधः ॥
काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः ।
वसन्तसमये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ॥
इदं विशेषकस्योदाहरणम् । अत्र द्वितीयकाकपिकशब्दौ काकत्वेन ज्ञातः
पिकत्वेन ज्ञात इत्यर्थान्तरसंक्रमितवाच्यौ ॥ यथावा—
वाराणसीवासवतां जनानां साधारणे शंकरलाञ्छनेऽपि ।
पार्थप्रहार्यणमुत्तमाङ्गं प्राचीनमीशं प्रकटीकरोति ॥ १४७ ॥

## उत्तरालंकारः ८३ किंचिदाक्तसिंहतं स्याङ्ग्ढोत्तरम्रुत्तरम् । यत्रासौ वेतसी पान्थ तत्रेयं सुतरा सरित् ॥ १४८॥

सरित्तरणमार्गे पृच्छन्तं प्रति तं कामयमानाया उत्तरमिदम् । वेतसीकुञ्जे स्वाच्छन्द्यमित्याकृतगर्भम् । यथावा—

> प्रामेऽस्मिन्प्रस्तरप्राये न किंचित्पान्थ विद्यते । पयोधरोन्नतिं दृष्ट्वा वस्तुमिच्छसि चेद्रस ॥

आस्तरणादिकमर्थयमानं पान्थं प्रत्युक्तिरियम् । स्तनोन्नतिं दृष्ट्वा रन्तुमि-च्छिस चेद्रस । अविद्ग्धजनप्रायेऽस्मिन्प्रामे कश्चिद्वगमिष्यतीत्येतादशं प्र-

लंकारादिखलं विक्तरेण ॥ मृत्यदिति ॥ नृत्यं कुर्वतो भगस्य हरस्य योऽइहास-स्तत्प्रसरस्य समूहस्य विस्तारस्य वा सहचरेः सदशैरिखर्थः । ईदक्कीर्तिवच्छुक्र एष कमलाकामुको नाभिकमलपरिमलस्य प्रौढिं समृद्धिं यदि नासादियध्यन्नाधा-रियध्यदिखन्वयः । यत्त तद्भुणस्यात्र निर्वाधकत्वात्कथं तत्प्रतिद्वन्द्वित्वमुन्मीलि-तस्येति तदनुक्तोपालम्भरूपत्वादुपेक्ष्यम् । तद्भुणेन भेदानध्यवसायमात्रस्योक्त-त्वात् ॥ वाराणसीति ॥ तृतीयलोचनादिचिह्ने साधारणेऽपि सतील्यन्वयः । पार्थोऽर्जुनस्तेन कृतो यः प्रहारस्तेन त्रणो यत्र तादशमुक्तमाङ्गं शिरः । पूर्वत्र स्वाभाविकगुणसाम्यमिह त्वागन्तुकगुणसाम्यमिति भेदः ॥ १४७ ॥ इत्युन्मी-लित-विशेषकालंकारौ ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

किचिदिति ॥ किंचिदिभिप्रायसिंहतं गूढमुत्तरमुत्तरं नामालंकारः । वेतसी वेतसलता । सुखेन तिरतुं योग्या सुतरा ॥ याम इति ॥ प्रस्तरप्राये पाषाण-बहुले पाषाणतुल्ये च 'प्रायो बाहुल्यतुल्ययोः' इति कोशात् । किंचिदास्त-रणादिकं समागमप्रतिबन्धकं च । पयोधरो मेघः स्तनश्च । कश्चिदवगिम-ध्यति ज्ञास्यतील्येतादशमिलादिरूपम् । उन्नेयः कल्प्यः प्रश्नो येन । सक्ष्मालंकारः ८४ ] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१५५

तिवन्धकं किंचिदपि नास्तीति हृदयम् । इद्मुन्नेयप्रश्लोदाहरणम् । निवद्धप्र-श्रोत्तरं यथा-

> कुशलं तस्या जीवति कुशलं पृच्छामि जीवतीत्यक्तम् । पुनरिप तदेव कथयसि मृतां नु कथयामि या श्वसिति ॥

ईर्प्यामानानन्तरमनुतसाया नायिकायाः सखीमागतां प्रति तस्याः कशल-मिति नायकस्य प्रश्नः । जीवतीति सख्या उत्तरम् । जीवत्याः कृतः कुश्चल-मिति तद्भिप्रायः । अन्यत्पृष्टमन्यदुत्तरमिति नायकस्य पुनः कुशलं पृच्छा-मीति प्रश्नः । पृष्टस्योत्तरमुक्तमित्रामिप्रायेण जीवतीत्युक्तमिति सख्या वच-नम् । सखीवचनस्याभिप्रायोद्घाटनार्थे पुनरपि तदेव कथयसीति नायक-स्याक्षेपः । मृतां न कथयामि या श्वसितीति स्वाभिप्रायोद्घाटनार्थम् । सति मरणे खल तस्याः कुशलं भवति मदागमनसमयेऽपि श्वासेषु संचरत्म कथं सतां कथयेयमित्यभिप्रायः ॥ १४८ ॥

> प्रश्नोत्तराभिन्नमुत्तरं चित्रमुच्यते । के दारपोपणरताः के खेटाः किं चलं वयः ॥ १४९ ॥

अत्र केदारपोपणस्ता इति प्रश्नाभित्रमुत्तरं के खेटाः किं चलमिति प्रश्नद्व-यस्य वय इत्येकसुत्तरम्। उदाहरणान्तराणि विद्रधसुखमण्डने दृष्टव्यानि १४९

स्क्ष्मालंकारः ८४ सूक्ष्मं पराशयाभिज्ञे तरसाक्तचेष्टितम् । मयि पश्यति सा केशैः सीमन्तमणिमावृणीत् ॥१५०॥

कामुकस्यावलोकनेन संकेतकालप्रश्नभावं ज्ञातवत्याश्रेष्टेयम् । असंगते सूर्ये संकेतकाल इत्याकृतम् । यथावा---

संकेतकालमनसं विटं ज्ञात्वा विद्ग्धया। आसीन्नेत्रापिताकृतं लीलापद्मं निमीलितम् ॥ १५०॥

तादशस्योत्तरस्य ॥ ईर्ष्यामानेति ॥ ईर्ष्याहेतुकमानेखर्थः । अनुतप्तायाः पश्चात्तापयुतायाः ॥ १४८ ॥ प्रश्नोत्तरेति ॥ प्रश्नश्च उत्तरान्तरं च प्रश्नोत्तरा-न्तरे ताभ्यामभित्रमुत्तरं चित्रमित्युच्यत इत्यर्थः ॥ कें दारेति ॥ दाराणां पो-पणे रताः के इति प्रश्नः, केदारस्य क्षेत्रस्य पोषणे रता इति तदेवोत्तरम् । के खेटा: खे आकाशे अटन्तीति प्रश्नस्य यदुत्तरं वयः पक्षिण इति तत्कि चलमिति प्रश्नस्य यदत्तरान्तरं वयस्तारुण्यादीति तेनाभिन्नम्॥ १४९ ॥ इत्युत्तरालंकारः८३

सूक्ष्मिति ॥ पराशयाभिज्ञस्येतरिसन्परविषये साभिप्रायं चेष्टितं सुक्ष्माछं-कारः । पराज्ञयाभिज्ञश्वासावितरश्च तस्य साकृतचेष्टितमर्थात्परविषय इति चार्थः॥ संकेतिति ॥ संकेतकाले मनो यस तिज्ञासुमिति यावतः । विदं जारं नेत्रा- कुवलयानन्दः । [ व्याजोत्त्यलंकारः ८६

१५६

#### पिहितालंकारः ८५

पिहितं परवृत्तान्ताज्ञातुः साक्तत्तेष्टितम् ।
प्रिये गृहागते प्रातः कान्ता तल्पमकल्पयत् ॥ १५१ ॥
रात्रौ सपत्नीगृहे जागरणेन श्रान्तोऽसीति तल्पकल्पनाकृतम् । यथावा—
वक्रस्यन्दिस्वेदविन्दुप्रवन्धैर्देष्टा भिन्नं कुङ्कमं कापि कण्ठे ।
पुस्तवं तन्त्र्या व्यक्षयन्ती वयस्या स्मित्वा पाणौ खङ्गलेखां लिलेख ॥
अत्र स्वेदान्तमितं प्ररुपायितं प्ररुपोचितसङ्गलेखनेन प्रकाशितम् ॥१५१॥

व्याजोत्त्यलंकारः ८६ व्याजोत्तिरन्यहेतूत्त्वा यदाकारस्य गोपनम् । सखि पश्य गृहारामपरागैरसि धृसरा ॥ १५२ ॥

अत्र चौर्यरतकृतसंकेतभूपृष्टलुण्डनलग्नधृलिजालस्य गोपनम् । यथावा— कस्य वा न भवेद्रोपः प्रियायाः सव्रणेऽधरे । सभुङ्गं पद्ममाघासीर्वारितापि मयाधुना ॥

उपपतिना खण्डिताधराया नायिकायाः सकाशमागच्छन्तं प्रियमपश्यन्त्येव सख्या नायिकां प्रति हितोपदेशच्याजेन तं प्रति नायिकापराधगोपनम् । छेकापह्नतेरस्याश्चायं विशेषः । तस्यां वचनस्यान्यथानयनेनापह्नवः । अस्यामा-कारस्य हेत्वन्तरवर्णनेन गोपनिमिति । लक्षणे लक्ष्यनाम्नि चोक्तिप्रहणमाका-रस्य गोपनार्थं हेत्वन्तरप्रत्यायकच्यापारमात्रोपलक्षणम् ।

ततश्च

भायान्तमालोक्य हरिं प्रतोल्यामाल्याः पुरस्तादनुरागमेका । रोमाञ्चकम्पादिभिरुच्यमानं भामा जुगृह प्रणमन्त्यथैनम् ॥ इत्यत्रापि व्याजोक्तिरेव । तत्र ह्यनुरागकृतस्य रोमाञ्चयाकारस्य भक्तिरू-

भ्यामर्पितमाकूतं यस्मिन् तादशं लीलासंवन्धि पद्मम् । नेत्रेत्यादि क्रियाविशेषणं वा ॥ १५० ॥ इति सुक्सालंकारः ॥ ८४ ॥

पिहितमिति लक्ष्यनिर्देशः । तल्पं शयनम् ॥ चक्रेति ॥ वक्रे प्रस्नवणशी-लानां स्वेदिबन्दूनां प्रवन्धेर्धाराभिः कण्ठे भिन्नं लग्नं कुङ्कुमं दृष्ट्वा कापि वयस्या सखी स्मित्वा स्मितं कृत्वा पुंस्तवं व्यञ्जयन्ती सती तन्व्याः पाणौ खङ्गलेखां लिले-खेल्यन्वयः । सूक्ष्मालंकारे पराभिप्रायमवगल्यं साकृतचेष्टितेनोत्तरसमर्पणम् । पिहितालंकारे तु गूढं परवृत्तान्तं ज्ञात्वा साकृतचेष्टया तत्प्रकाशनमिति भेदो बोध्यः ॥ १५१ ॥ इति पिहितालंकारः ॥ ८५ ॥

व्याजोक्तिरिति लक्ष्यनिर्देशः । चौर्यरते कृतं यत्संकेतभूतभूमिपृष्ठछण्ठनिम-त्यन्वयः । उपपतिना जारेण । तस्यां छेकापह्नतौ ॥ आयान्तिमिति ॥ प्रतोल्यां रथ्यायाम् । एका काचिद्रामा वनिता सख्याः पुरस्ताद्रोमाश्वकम्पादिभिरनुभावैर्यः-

## गूढोत्तयलंकारः ८७ ] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

240

पहेत्वन्तरप्रसायकेन प्रणामेन गोपनं कृतम् । सूक्ष्मिपिहितालंकारयोरिप चे-ष्टितप्रहणसुक्तिसाधारणव्यापारमात्रोपलक्षणम् । ततश्च ।

निलनीदले वलाका मरकतपात्र इव दृश्यते शुक्तिः। इति मम संकेतभुवि ज्ञात्वा भावं तदाववीदालीम्॥

इत्यादिष्विप सूक्ष्मालंकारः प्रसरित । अत्र श्लोके ताविकमावयोः संकेत-स्थानं भविष्यतीति प्रश्नात्रायं सूचयित कामुके तद्भिज्ञ्या विद्ग्ध्या तदा सर्खी प्रति साकृत्युक्तमिति स्क्ष्मालंकारो भवित । यतोऽत्र बलाकाया मरक्ततपात्रप्रतिष्ठितशुक्तयुपमया तत्या निश्चलत्वेनाश्वस्तत्वं तेन तस्य प्रदेशस्य निर्जनत्वं तेन तदेवावयोः संकेतस्थानमिति कामुकं प्रति सूचनं लक्ष्यते । नचात्र ध्वनिराशङ्कनीयः । दूरे व्यज्यमानस्यापि संकेतस्थानप्रश्लोत्तरस्य स्वोक्तयेवाविष्कृतत्वात् । एवं पिहितालंकारेऽप्युदाहार्यम् । इदं चान्यदत्रावधेयम् । यत्रासौ वेतसी पान्थत्यादिषु गृहोत्तरस्यस्मपिहितव्याजोत्तयुदाहरणेषु भावो न स्वोक्तयाविष्कृतः किंतु वस्तुसौन्दर्यवलाहकृत्रबोद्धव्यविशेपिताद्भयः । तत्रव वस्तुतो नालंकारत्वं, ध्वनिभावास्पद्रवात् । प्राचीनैः स्वोक्त्याविष्करणे सत्यलंकारास्पद्तास्तीत्युदाहतत्वादस्माभिरप्युदाहतानि । शक्यं हि 'यत्रासौ वेतसी पान्य तत्रयं सुतरा सरित् । इति वृच्छन्तमध्वानं कानिन्याह सस्चनम् ॥' इत्याद्यर्थान्तरकल्पनया भावाविष्करणमित्यतः प्राक् लिखितोदाहरणेषु संकेतकालमनसं पुंस्त्वं तन्त्या व्यक्षयन्ती भामा जुग्-हेति भावाविष्करणमस्ति तेष्वेव तत्त्तद्रलंकार इति ॥ १५२ ॥

# गूढोक्यलंकारः ८७ गूढोक्तिरन्योदेश्यं चेद्यदन्यं प्रति कथ्यते । वृषापेहि परक्षेत्रादायाति क्षेत्ररक्षकः ॥ १५३ ॥

यं प्रति किंचिद्धक्तव्यं तत्तरस्थैमीज्ञायीति तदेव तदन्यं कंचित्प्रति श्लेपे-णोच्यते चेत्सा गृहोक्तिः । वृषेत्याद्यदाहरणम् । परकलत्रं भुक्षानं कामुकं

ज्यमानमनुरागमेनं हिर्रे प्रणमन्ती सती जुगृह गोपितवतीत्यन्वयः । लक्ष्यते व्य-ज्यते ॥ एविमिति ॥ सूक्ष्मालंकारवदुक्तिरूपव्यापारवर्णनिमत्यर्थः । उदाहर्त-ट्यमिति ॥ यथा वक्षस्पन्दीति पद्य एव 'आर्टी बालां सस्मितं प्राह मन्दं मु-ग्रधाक्षि त्वामद्य पद्यामि नाथम्' इत्युक्तरार्धनिर्माणे नाथमित्युक्तया प्रकाशनमिति वोध्यम् ॥ वस्तुसौन्दर्येति ॥ वेतसी निकुञ्जरूपवस्तुसौन्दर्येत्यर्थः । ध्वनिमा-वास्पदत्वाद्वनित्वाश्रयत्वात् ॥ उपसंहरति—अत इति ॥ येष्वित्यस्य भावादि-क्तरणमस्तीत्यनेनान्वयः ॥ १५२ ॥ इति व्याजोक्तयलंकारः ॥ ८६ ॥

गूढोक्तिरिति ॥ यदन्योद्देश्यकं वाक्यं तत्तदन्यं प्रति कथ्यते चेद्रूढोक्तिरलं-

१ 'न्योद्देश्याशीर्यदन्यं'.

कुवलयानन्दः। [विवृतोत्तयलंकारः ८८

प्रति वक्तव्यं परक्षेत्रे सस्यानि भक्षयन्तं कंचिदुक्षाणं समीपे चरन्तं निर्दिश्य कथ्यते । नेयमप्रस्तुतप्रशंसा । कार्यकारणादिव्यङ्गयत्वाभावात् । नापि श्लेप-मात्रम् । अप्रकृतार्थस्य प्रकृतार्थान्वयित्वेनाविवक्षितत्वात् । तस्य केवलमि-तरवञ्चनार्थं निर्दिष्टतया विच्छित्तिविशेषसङ्गावात् । यथावा—

नाथों में विपिण गतों न गणयत्येषा सपत्नी च मां त्यक्त्वा मामिह पुष्पिणीति गुरवः प्राप्ता गृहाभ्यन्तरम् । शय्यामात्रसहायिनीं परिजनः श्रान्तो न मां सेवते स्वामिन्नागमलालनीय रजनीं लक्ष्मीपते रक्ष माम् ॥ अत्र लक्ष्मीपतिनान्नो जारस्यागमनं प्रार्थयमानायास्त्रटस्थवज्ञनाय भगवन्तं प्रत्याकोशस्य प्रत्यायनम् ॥ १५३ ॥

विवृतोत्तयलंकारः ८८ विवृतोक्तिः क्षिष्टगुप्तं कविनाविष्कृतं यदि । वृपापेहि परक्षेत्रादिति वक्ति ससूचनम् ॥ १५४ ॥

श्चिष्टगुप्तं वस्तु यथाकथंचित्कविनाविष्कृतं चेद्विवृतोक्तिः । वृपापेही-त्युदाहरणे पूर्ववद्वप्तं वस्तु ससूचनमिति कविनाविष्कृतम् । यथावा— वत्से मा गा विषादं श्वसनमुरुजवं संत्यजोध्वप्रवृत्तं कम्पः को वा गुरुस्ते किमिह वलिभदा जुम्भितेनात्र याहि ।

कारः । क्षेत्रं सस्यादेः कलत्रं च । अपेहि दूरीभव ॥ अविविक्षितत्वादिति ॥ अयं भावः । प्रकृताप्रकृताश्रेषे 'असावुद्यमाह्नढः' इत्यादावप्रकृतार्थस्य प्रकृतार्थोपमानतयान्वयः स्वीकियते । सर्वथैव प्रकृतासंवद्धस्याप्रकृतार्थस्य कथनेऽसंवन्धार्थाभिधायकत्वापत्तः । अतः प्रकृतेऽपि श्लेषवादिनाप्रकृतस्य प्रकृतसंवन्धो वाच्यः । स च न संभवति विवक्षाविरहादिति ॥ कुतस्तर्हि प्रकृतार्थकथनं तत्राह—तस्येति ॥ अप्रकृतार्थस्थेत्यर्थः । ननु तादशविवक्षाविरहेऽपि नानार्थविन्यासमात्रेणास्तु श्लेष एवेत्याशङ्कयाह—विच्छित्तिविशेषेति ॥ तथाच श्लेषसत्त्वेऽपि विच्छित्तिविशेषाद्भृद्धोक्तरवश्यमङ्गीकार्थेत्याश्यः । अतएव श्लेषमात्रमिति तन्मात्रिनराकरणमेवोपकान्तं नतु श्लेषिनराकरणमिति ॥ नाथ इति ॥ विपणिः पण्यवीथिका । पुष्पिणी रजस्त्वा । आगमेन वेदेन लालनीयः स्तुत्यः, आगमनेन लालनीयः । रजनीं व्याप्येति अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ॥ १५३ ॥ इति गृहोत्त्यलंकारः ॥ ८०॥

श्चिष्टगुप्तमिति ॥ श्विष्टेत्युपलक्षणम् । अर्थशक्तिमूलगुप्तस्यापि गच्छाम्यच्यु-तेखादौ संप्राह्यत्वात् ॥ वत्से इति ॥ वत्से लक्ष्मि, विषादं खेदं हरं च उरुजवं महावेगमूर्ध्वे प्रवृत्तं श्वसनं श्वासं पवनं च संखज, कं जलं पातीति तथा वरुणः कम्पश्च गुरुर्महान् बृहस्पतिश्च वलं प्रसिद्धं तद्भिदा नाशकेन वलाख्यदैखनाशके-नेन्द्रेण च । अत्र श्रीकृष्णसंनिधौ याहि इति प्रकारेण भयनिवारणव्याजेन सुराणां

## विवृतोत्त्यलंकारः८८] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

240

प्रत्याख्यानं सुराणामिति भयशमनच्छद्मना कारियत्वा यसौ लक्ष्मीमदाद्वः स दहतु दुरितं मन्थमुग्धः पयोधिः ॥ इदं परवञ्चनाय गुप्ताविष्करणम् । त्रपागुप्ताविष्करणं यथा— दृष्ट्या केशव गोपरागहतया किंचिन्न दृष्टं मया तेनेह स्वलितास्मि नाथ पतितां किंनाम नालम्बसे । एकस्त्वं विपमेपुखिन्नमनसां सर्वावलानां गति-गोंप्येवं गदितः सलेशमवताद्वोष्टे हरिवंश्विरम् ॥

अत्र कृष्णस्य पुरतो विषमे परिस्वलनमभिहितवत्यासं कामयमानाया गोपिकाया वचने विषमपिथस्वलनपतनत्राणसंप्रार्थनरूपेण झिटिति प्रतीय-मानेनार्थेन गुप्तं विवक्षितमर्थान्तरं सलेशं सस्चनिमत्यनेनाविष्कृतम्। एवं नैषधादिषु 'चेतो नलं कामयते मदीयम्' इति दमयन्तीवाक्यादिकमप्युदाहर-णम्। इदं शब्दशक्तिकोडीकृतगुप्ताविष्करणम्। अर्थशक्तिमूलगुप्तार्थाविष्करणं यथा—

गच्छाम्यच्युत दर्शनेन भवतः किं तृप्तिरूपद्यते

किं चैवं विजनस्थयोईतजनः संभावयत्यस्यथा ।
इत्यामञ्रणभिद्गस्चितवृथावस्थानखेदालसामाश्चिष्यन्युलकोत्कराञ्चिततनुगोपीं हरिः पातु वः ॥
अत्र गच्छाम्यच्युतेत्यामञ्जणेन त्वया रन्तुं कामेच्छया स्थितं तन्न लव्धिमत्यर्थशक्तिलभ्यं वस्तु तृतीयपादेनाविष्कृतम् । सर्वमेतत्कविनिबद्धवक्तृगुप्ताविष्करणोदाहरणम् ।

प्रसाख्यानं वर्जनं कारियत्वा मन्थो मन्थनं तेन मुग्धः पयोधिः यस्मै लक्ष्मीमदात्स वो दुरितं दहित्वस्वयः ॥ परेति ॥ परवज्ञनाय गुप्तस्य आविष्करणमिस्थिः ॥ त्रपेति ॥ लज्जया ग्रप्तस्येस्थिः ॥ दृष्ट्येति ॥ गोपे त्विय यो राग आसिक्तसद्धत्यापहृतया गवां परागैधृलिभिर्व्याप्तया च। गोपेति संबोधनं वा। किंचित्समिविषमं युक्तायुक्तं च इह त्विय भूमौ च पत्युर्भावः पतिता तां पतनं प्राप्तां च। विषमेषुः पज्ञरारस्तेन खित्रमनसां विषमेषु संकटेषु खित्रमनसां च। अवलानां स्त्रीणां वलरिहतानां च सलेशं ससूचनं गोष्ठं गोस्थानम् ॥ चेतो नलिमिति ॥ लङ्कां न अयते न गच्छतीस्थें नलं कामयते इच्छतीस्थें। गुप्तस्तदाविष्करणं च हीणा हृष्टा चेस्यनेनेति वोध्यम् ॥ शाब्दशक्तिति ॥ शाब्दश्लेषवशेनेसर्थः । कोडीकृतः संगृहीतः ॥ गच्छामीति ॥ अच्युत मद्विषये अस्खिलिति
गुप्तोऽर्थः । चिरकालं त्वदर्शनेनापि न तृप्तिरिस्थर्थेन दर्शनेन न तृप्तिरिपि तु संभोगेनेस्थर्थे गुप्तः । विजनस्थयोरेकान्तगतयोः । हतश्वासौ जनश्च अन्यथा रसर्थे स्थिताविति संभावयित । तेन द्वयोरकीर्तिर्जातेव वृथवात्मानं वश्चयाव इति
गुप्तार्थः । आमन्त्रणस्याच्युतेस्यादेर्भक्त्या रचनया सूचितो यो वृथावस्थानखेदस्तेनालसाम् ॥ किविनिवद्विति ॥ किविनिवद्वेत वक्ता गुप्तस्येस्थेः ॥ सुभु त्व-

यत्त्रयलंकारः ८९

कविगुप्ताविष्करणं यथा-

सुभ्र त्वं कुपितेत्यपास्तमशनं त्यक्ताः कथा योषितां द्रादेव विवर्जिताः सुरभयः स्रग्गन्धधूपादयः । कोपं रागिणि मुख मय्यवनते दृष्टे प्रसीदाधुना सत्यं तद्विरहाद्भवन्ति द्यिते सर्वा ममान्धा दिशः॥

अत्र तावदीर्ष्यामानकलुपितद्यिताप्रसादनन्यापारविधिः प्रतीयते । दृष्टि-रोगार्तस्य दृष्टिं प्रत्याक्रोशो विवक्षितार्थः सच दृष्टे इत्यस्य पदस्य लुप्तोचारणेन संबुद्धिरूपतामवगमय्याविष्कृतः । कविनिबद्धवक्तुगुप्तं परवञ्चनार्थं कविगुप्तं खप्रौढिकथनार्थमिति भेदः ॥ १५४ ॥

युक्तयलंकारः ८९ युक्तिः परांभिसन्धानं क्रियया मर्मगुप्तये । त्वामालिखन्ती दृष्ट्वान्यं धनुः पौष्पं करेऽलिखत्।।१५५॥ अत्र पुष्पचापलेखनिकयया मन्मयो मया लिखित इति आन्त्युत्पादनेन

स्वानुरागरूपमर्मगोपनाय परवञ्चनं विवक्षितम् । यथावा-

दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकणितं यद्वच-स्तत्प्रातर्गुरुसंनिधौ निगदतस्तस्यातिमात्रं वधूः। कर्णालम्बतपद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्चपुटे बीडार्ता विद्धाति दाडिमफलब्याजेन वाग्वन्धनम् ॥

भत्र ग्रुकवाख्रुद्रणया तन्मुखेन स्वकीयरहस्यवचनग्रुश्रूपुजनवञ्चनं कृतम् । व्याजोक्तावाकारगोपनं युक्तौ तद्दन्यगोपनिमति भेदः । यद्वा व्याजोक्तावुक्त्या गोपनमिह तु कियया गोपनमिति भेदः । एवंच 'आयान्तमालोक्य हरिं प्रतोल्याम्' इति श्लोकेऽपि युक्तिरेव ॥ १५५ ॥

मिति ॥ शोभनभूर्दयिता दृष्टिश्व तयोः संबोधनम् । कोपो रोषो विकारश्व । रागिण्यनुरागिणीति । अवनते नम्ने इति च मयीत्यस्य विशेषणम् । पक्षे रागिणि रिक्तमशीले नम्रे इति दक्संबोधनम् । एवं दृष्टे इत्यपि ॥ उच्चारणेनेति ॥ खरविशेषसहकृतोचारणेनेत्यर्थः ॥ १५४ ॥ इति विवृतोक्तयलंकारः ॥ ८८ ॥

यक्तिरिति ॥ खस्य मर्मगोपनाय कियया यत्परस्यातिसंधानं वज्ञनं सा युक्तिरलंकारः ॥ त्वामिति ॥ नायकं प्रति दूतीवचनम् । पुष्पस्येदं पौष्पम् ॥ दम्पत्योरिति ॥ तस्य ग्रुकस्य अतिमात्रमत्यर्थे निगदत इति संवन्यः । फल-शब्दो बीजपरः। गोपनीयविषयभेदस्य विच्छित्तिभेदाप्रयोजकत्वादाह—यद्वेति॥ नन्वेवं सत्यायान्तमालोक्येत्यादौ व्याजोक्तिरेवेति प्रागुक्तं विरुध्येतेत्याशङ्क्याह-एवंचेति ॥ यद्वेति पक्षाङ्गीकारे चेल्यर्थः। एवंच पूर्वप्रन्थ आद्यपक्षाभिप्रायेणेति भावः ॥१५५॥ इत्यलंकारचन्द्रिकायां कुवलयानन्दरीकायां युत्तयलंकारः॥८९॥

१ 'परातिसंधानं'.

## छेकोत्तयलंकारः ९१] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१६१

लोकोचयलंकरः ९० लोकप्रवादानुकृतिलींकोक्तिरिति भंण्यते । सहस्व कतिचिन्मासान्मीलयित्वा विलोचने ॥१५६॥

अत्र लोचने मीलियत्वेति लोकवादानुकृतिः। यथावा---मदीये वरदराजस्तवे---

> नामैव ते वरद वािन्छितदातृभावं व्याख्यात्यतो न वहसे वरदानसुद्राम्। विश्वप्रसिद्धतरविप्रकुळप्रसृते-यंज्ञोपवीतवहनं हि न खल्वपेक्ष्यम्॥

अत्रोत्तरार्धे लोकवादानुकारः ॥ १५६ ॥

# छेकोत्त्यलंकारः ९१ छेकोक्तिर्यदि लोकोक्तेः स्यादर्थान्तरगॅमिता । अजङ्ग एव जानीते भुजङ्गचरणं सखे ॥ १५७॥

केनचित्कस्यचिद्वत्तान्तं पृष्टस्य समीपस्थमन्यं निर्दिश्यायमेव तस्य वृ-त्तान्तं जानातीत्युक्तवतोऽयमहेः पादानहिरेव जानातीति लोकवादानुकारः। अत्र स चायं च लोकविदिते धनार्जनादिव्यापारे सहचारिणाविति विदित-विषयत्या लोकोक्तयनुवादस्य प्रयोजने स्थिते रहस्येऽप्यनङ्गव्यापारे तस्यायं सहचर इति मर्मोद्धाटनमपि तेन गर्भोकृतम्। यथावा—

> मलयमरुतां बाता याता विकासितमिल्लका-परिमलभरो भन्नो ब्रीष्मस्त्वमुल्सहसे यदि। घन घटय तं त्वं निःस्नेहं य एव निवर्तने प्रभवति गवां किं निहल्हां स एव धनंजयः॥

अत्र धनिकष्सया प्रोषिताङ्गनासखीवचने य एव गवां निवर्तने प्रभवित स एव धनंजय इत्यान्ध्रजातिप्रसिद्धलोकवादानुकारः । अत्रातिसीन्द्यंशा-

लोकेति ॥ अनुकृतिरनुकरणम् ॥ सहस्वेति ॥ अर्थाद्विरहं मासानभिव्याप्ये-त्यर्थः ॥ नामैवेति ॥ हे वरद, तव नामैव वाञ्छितदातृत्वमाख्याति कथयति । अतस्त्वं वरदानमुद्रां इतरदैवतवत्र धारयसि । यतो विश्वप्रसिद्धतरे विप्रकुले प्रसू-तिक्त्पत्तिर्थस्य तादशस्येत्यर्थः ॥ १५६ ॥ इति लोकोक्त्यलंकारः ॥ ९० ॥

छेकोक्तिरिति लक्ष्यनिर्देशः । अर्थान्तरव्यञ्जकता । समीपस्थं यद्दृतान्तः पृष्ट-स्तत्समीपस्थम् ॥ स चायं चेति ॥ पृच्छयमानवृत्तान्तस्तत्समीपस्थश्रेलर्थः । तेन लोकोक्तयनुवादेन ॥ मलयेति ॥ वाताः समूहाः । याता गताः । विका-सिनां मिल्लकाकुसुमानां परिमलस्य भरो यस्मिन् तादशो प्रीष्मो भन्नो नष्टः । हे

१ 'कथ्यते'. २ 'यत्र लोकोक्तेः'. ३ 'गर्भता'.

लिनीमिमामपहाय धनलिप्सया प्रस्थितो रसानभिज्ञत्वाद्गोप्राय एव । तस्य निवर्तकस्तु धनस्य जेता धनेनाकृष्टस्य तद्विमुखीकरणेन प्रत्याक्षेपकत्वादित्य-र्थान्तरमपि गर्भितम् ॥ १५७ ॥

## वक्रोत्त्यलंकारः ९२

वकोक्तिः श्लेषकाकुभ्यामपरार्थप्रकल्पनम् । मुख्य मानं दिनं प्राप्तं नेह नन्दी हरान्तिके ॥ १५८ ॥

अत्र मानं मुख प्रयाता रात्रिरित्याशयेनोक्तायां वाचि नन्दिनं प्राप्तं मा मुख्रेत्यर्थान्तरं श्हेषेण परिकल्पितम् । यथावा—

अहो केनेदशी बुद्धिर्दारुणा तव निर्मिता।
त्रिगुणा श्र्यते बुद्धिर्न तु दारुमयी क्रचित्॥
इदमविकृतश्रेषोक्तेरुदाहरणम्। विकृतश्रेषवक्रोक्तेर्यथा—
भवित्री रम्भोरु त्रिदशवदनग्लानिरधुना
स ते रामः स्थाता न युधि पुरतो लक्ष्मणसखः।
इयं यास्यत्युचैर्विपदमधुना वानरचमूर्लिष्ठिदं षष्टाक्षरपरविलोपात्पठ पुनः॥

सर्वमिदं शब्दश्लेपमूलाया वक्रोक्तेरुदाहरणम् । अर्थश्लेपमूलाया वक्रो-

भिक्षार्थी स क यात: सुतनु वित्मखे ताण्डवं काद्य भदे मन्ये वृन्दावनान्ते क नु स मृगशिशुनैव जाने वराहम्।

घन, त्वं यद्युत्सहसे उत्साहवान्भवित तदा तं निःस्नेहं नायकं घटयाऽनया संयो-जय । गवां निवर्तने परापहतानां व्यावर्तने य एव प्रभवित स एव धनंजयोऽर्जुन इत्यन्वयः । लिप्सया प्रोषितस्य याज्ञना तत्सखीवचन इति संवन्धः। आन्ध्रास्तै-लङ्गाः । इमां मत्सखीम् । गोप्रायो गोतुल्यः ॥१५७॥ इति छेकोत्त्यलंकारः ९१

वक्रोक्तिरिति ॥ काकुर्ध्वनेविंकारः। अपरार्थस्याभिष्ठेतादर्थादर्थान्तरस्य। नन्दी हरस्य गणविशेषः॥ अहो इति ॥ दारुणा कूरेत्यभिष्ठेतं काष्ठेनेति कल्पनं विकृतत्वं च कस्यचिद्वर्णस्यावापोद्वापाभ्याम् ॥ भवित्रीति ॥ सीतां प्रति रावणोक्तिः पादन्त्रयं। चतुर्थस्तं प्रति सीतायाः। ते तव पितः स रामो युधि संप्रामे पुरतोऽप्रतो न स्थाता स्थास्यतीत्यर्थः। अतिशयेन लघुर्लिघष्ठस्तत्संबोधनम्। इदं पादत्रयं पष्ठाक्षरात्पराणां सप्तमानां त्रि-न-वीति वर्णानां विलोपो यत्र तादशं पुनः पठेत्यर्थः॥ शब्दस्य परिवृत्त्यसहत्वादिति भावः॥ भिक्षेति ॥ जलिधिश्व हिमवांश्व तत्कन्ययोर्लक्मीपार्वत्योः कमेण इत्थं लीलया संलापो मिथोभाषणं नो-ऽस्मान् त्रायतामित्यन्वयः। इत्थं कीदक् तदाह—भिक्षार्थाति ॥ हरमिप्रेत्य

१ 'मपूर्वार्थप्र'.

# स्वभावोत्त्यलंकारः ९३] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१६३

वाले कचिन्न दृष्टो जरठवृषपितर्गोप एवास्य वेत्ता लीलासँलाप इत्थं जलनिधिहिमवत्कन्ययोस्त्रायतां नः॥

काका यथा---

असमालोच्य कोपस्ते नोचितोऽयमितीरिता । नेवोचितोऽयमिति तं ताडयामास मालया ॥ अत्र नेवोचित इति काकुस्वरविकारेणोचित एवेत्यर्थान्तरकल्पनम् ॥१५८॥

स्वभावोत्त्यलंकारः ९३ स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णनम् । कुरङ्गेरुत्तरङ्गाक्षैः स्तब्धकर्णेर्रुदीक्ष्यते ॥ १५९ ॥

यथावा---

तौ संमुखप्रचिहतौ सिविधे गुरूणां मार्गप्रदानरभसस्बिहितावधानौ । पार्श्वोपसर्पणमुभाविप भिन्नदिक्कं कृत्वा मुहुर्मुहुरुपासरतां सरुज्ञम् ॥ १५९ ॥

लक्ष्मया वाक्यम् । वल्दें सस्य मखे यज्ञे इति वामनाभिप्रायं पार्वत्याः । भद्रे शोभने, ताण्डवं मृत्यमय क्ष वर्तत इति लक्ष्मीप्रश्रस्योत्तरं यृन्दावनस्यान्ते मध्ये इति श्रीकृष्णाभिप्रायम्। मृगशिशुर्महादेवेन करे धृतः 'परशुम्गवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्' इति ध्यानश्रवणात् । इदं लक्ष्मया वाक्यं नैवेति पार्वत्याः । 'मृगः पशौ कुरक्ते च' इति विश्वः । किचिदिति प्रश्ने । जरठो जीर्णः यृपपतिर्यूपश्रेष्ठ इति हरग्रभाभि-प्रायं लक्ष्मीवाक्यम् । गोपो गवां पालक इति कृष्णाभिप्रायमुत्तरमिति । अत्र भिक्षादिपदानां परिवृत्तिसहत्वादर्थक्षेपमूलत्वम् ॥ असमालोच्येति ॥ अविचार्येत्यधः । मालया पुष्पमालया । 'भिक्षः क्षास्ति वल्पेमेखे पशुपतिः क्षास्ते परं गोकुले कास्ते पन्नगभूषणः सिव सदा शेते च शेषोपरि । मुग्धे मुख्च विपादमेनमधुना नाहं प्रकृत्या चलास्मीत्येवं गिरिजासमुद्रतनयाहास्योद्रमः पातु वः ॥' अस्मित्रपि पद्येऽयमेवालंकारः ॥ १५८ ॥ इति वक्रोत्त्यलंकारः ॥ ९२ ॥

स्वभावोक्तिरित लक्ष्यिनिर्देशः । जात्यादिस्थस्य जात्यादिसंबिन्धनः । आदिप-देन क्रियादिपरिग्रहः । उत्तरङ्गाणि तरङ्गायमाणान्यक्षीणि येषां तैः ॥ ताविति॥ तौ प्रकान्तौ वधूवरौ गुरूणां सिवधे अन्योन्याभिमुखं प्रचलितौ परस्परस्य मार्ग-प्रदाने यो रभसो वेगस्तेन स्खलितं भ्रष्टमवधानं सावधानत्वं ययोस्तादृशावुभाविष भिन्नदिकं वामदक्षिणरूपदिक्संबिन्ध परस्परपार्श्वभागोपसर्पणं मुहुर्मुहुः कृत्वा सल्ज्ञं यथा स्यात्तथोपसरतां उपसर्पणं चक्रतुरित्थर्थः । पूर्वोदाहरणे कुरङ्गजाति-

१ 'तीरितम्'. २ 'रुदीक्षितम्'.

838

कुवलयानन्दः।

[ अत्युक्तयलंकारः ९६

भाविकालंकारः ९४

भाविकं भूतभाव्यर्थसाक्षात्कारस्य वर्णनम् । अहं विलोकयेऽद्यापि युध्यन्तेऽत्र सुरासुराः ॥१६०॥

स्थानभीषणोद्भावनपरिमद्म् । यथावा— अद्यापि तिष्ठति दशोरिद्मुत्तरीयं धर्तुं पुरः स्तनतटात्पतितं प्रवृत्ते । वाचं निशम्य नयनं नयनं ममेति किंचित्तदा यदकरोत्सितमायताक्षी ॥ १६० ॥

उदात्तालंकारः ९५

उदात्तमृद्धेश्वरितं श्लाघ्यं चान्योपलक्षणम् । सानौ यस्याभवद्यद्धं तद्ध्विटिकिरीटिनोः ॥ १६१ ॥

इदं श्लाध्यचिरतस्थान्याङ्गरवे उदाहरणम् । ऋद्वयुदाहरणं यथा— रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तैः प्रतिबिम्बशतैर्वृतः । ज्ञातो लंकेश्वरः कृच्छादाक्षनेयेन तत्त्वतः ॥ १६१ ॥

> अत्युक्तयलंकारः ९६ अत्युक्तिरद्भुतार्तेथ्यशौयौँदार्यादिवर्णनम् । त्विय दातरि राजेन्द्र याचकाः कल्पशाखिनः ॥१६२॥

स्वभाववर्णनमत्र सलजिक्रयास्वभाववर्णनमिति भेदः ॥ १६९ ॥ इति स्वभावो-त्तयलंकारः ॥ ९३ ॥

भाविकिमिति लक्ष्यिनिर्देशः ॥ अद्यापीति ॥ मम नयनं नयनमिति तस्या वाचं निशम्य स्तनतटात्पितिमुत्तरीयं धर्तुं पुरः प्रवृत्ते मिय सित तदा आय-ताक्षी यित्किचित्सितमकरोत् । इदमद्यापि मम दशोः पुरस्तिष्ठतीत्यन्वयः । अत्र नयनपदेन स्ववाचकत्वरूपशक्यसंबन्धेन नेत्रपदं लक्ष्यते तस्माच वस्त्रप्रतितिः । किंवा स्ववाचकवाच्यत्वरूपशक्यसंबन्धेन वस्त्रमेव लक्षयतीति वचोवाणैरित्या-दिवद्यक्षितलक्षणा वा बोध्या । 'नेत्रं पिथ गुणे वस्त्रे' इति विश्वः ॥ १६० ॥ इति भाविकालंकारः ॥ ९४ ॥

उदात्तमिति ॥ ऋदेः समृदेश्वरितमुदात्तमलंकारः । तथा श्वाध्यं चरित-म् । अन्यस्योपलक्षणमङ्गं चेत्तद्वि तथा । सानौ शिखरे यस्यपर्वतस्य । किरीटी अर्जुनः कृच्छ्रात्कष्टात् । आङ्गनेयेन हनूमता ॥ १६१ ॥ इत्युदात्तालंकारः॥९५॥ अत्युक्तिरिति लक्ष्यनिर्देशः । अद्भुतं च तदतथ्यं मिथ्यारूपम् । अकूपाराः

१ 'समृद्धि च'. २ 'यत्राभवत्'. ३ 'संक्रान्तः'. ४ 'तथ्यं'. ५ 'याजकाः'.

निरुत्तयलंकारः ९७ ] अलंकारचिन्द्रकासहितः ।

१६५

इयमोदार्यात्युक्तिः । शौर्यात्युक्तिर्यथा-

राजन्ससाप्यकृपारास्वत्व्रतापामिशोषिताः । पुनस्त्वद्वैरिवनितावाष्पपूरेण पुरिताः ॥

संपद्त्युक्तावुदात्तालंकारः । शौर्यात्युक्तावत्युक्त्यलंकार इति भेदमाहुः ।

अनयोरनवद्याङ्गि स्तनयोर्जृम्भमाणयोः। अवकाशो न पर्याप्तस्तव बाहुलतान्तरे॥ अल्पं निर्मितमाकाशमनालोच्येव वेधसा। इदमेवंविधं भावि भवत्याः स्तनमण्डलम्॥

इति सद्सदुक्तितारतम्येनातिशयात्युक्तयोर्भेदः ॥ १६२ ॥

### निरुत्तयलंकारः ९७

निरुक्तियोंगतो नाम्नामन्यार्थत्वप्रकल्पनम् । ईदृशैश्वरितैर्जाने सत्यं दोषाकरो भवान् ॥ १६३ ॥

यथावा--

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे किनष्टिकाधिष्टितकालिदासा । अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती वभूव ॥ १६३॥

समुद्राः ॥ आहुरिति ॥ खमते तु तथ्यत्वातथ्यत्वाभ्यां भेद इति भावः । अन्तथ्ये अद्भुतत्वविशेषणस्य कृत्यं दर्शयति—अनयोरित्यादि ॥ एतत्पयं योगेऽप्ययोगोऽसंवन्धातिशयोक्तिरित्यत्र प्रागुदाहृतम् ॥ असदुक्तितारतम्येनेति ॥ अनयोरित्यत्रासदुक्तिमात्रम् । अल्पमिति पये त्वत्यन्तासदुक्तिरिति तारतम्येनेत्यर्थः । तथा चाद्भुतेति विशेषणादत्यन्तातथ्यरूपत्वलाभान्नातिशयोक्तान्वतित्याप्तिरिति भावः । अतएवानयोरिति पद्यानन्तरं दण्डिनोक्तम्—'इति संभाव्यमेवैतद्विशेषाख्यानसंस्कृतम्' इति । एवम् 'लोकातीत इवात्यर्थमध्यारोप्य विवक्षितः । योऽर्थस्तेनातितुष्यन्ति विदग्धा नेतरे यथा ॥' इत्युक्ता अल्पं निर्भितमित्याद्यदाहृत्य इदमत्युक्तिरित्युक्तमिति च॥१६२॥इत्युक्तयलंकारः ॥९६॥

निरुक्तिरिति लक्ष्यम् । योगवशात्राम्नामर्थविशेषाभिधायिनामर्थान्तरोपवर्णनमिति लक्षणम् ॥ ईटशैरिति ॥ चन्द्रं प्रति विरिहण्या उक्तिः । ईटशैर्जनसंता-पनरूपेः । दोषाया रात्रेः कर्ता दोषाणामाकरश्च ॥ पुरेति ॥ किनिष्टिकाङ्गलिविशेषः । अधिष्ठितः कालिदासो यस्यां सा अङ्गलिविशेषरूपा । अर्थवती न विद्यते किवनाम यस्यां सेल्यन्वर्थनामवती ॥ १६३ ॥ इति निरुक्त्यलंकारः ॥ ९७ ॥

१ 'त्वद्वेरिराजवनिता'.

[ विध्यलंकारः ९९

# प्रतिषेधालंकारः ९८ प्रतिषेधः प्रसिद्धस्य निषेधस्यानुकीर्तनम् । न द्यूतमेतिकतव क्रीडनं निशितैः शरैः ॥ १६४ ॥

निज्ञांतो निषेधः स्वतोऽनुपयुक्तत्वादर्थान्तरं गर्भीकरोति । तेन चारुता-निवतोऽयं प्रतिषेधनामालंकारः । उदाहरणं युद्धरङ्गे प्रस्वविष्ठमानं शाकुनिकं प्रति विदग्धवचनम् । तत्र युद्धस्याक्षणूत्रत्वाभावो निर्ज्ञात एव कीर्त्यमानस्त-त्रेव तव प्रागल्भ्यं न युद्धे व्युत्पत्तिप्रहोऽस्तीत्युपहासं गर्भीकरोति तच कि-तवेनाविष्कृतम् । यथावा—

> न विषेण न शखेण नाग्निना न च मृत्युना । अप्रतीकारपारुष्याः स्वीभिरेव स्त्रियः कृताः ॥

अत्र स्त्रीणां विपादिनिमित्तत्वाभावः प्रसिद्ध एव कीर्ल्यमानस्तासां विपा-द्यतिशायि कौर्यमिति । अमुमर्थं व्यक्तीकरोतीति स चाप्रतीकारपारूप्या इति प्रतीकारवन्त्रो विपादिभ्यस्तासां विशेषं दर्शयता विशेषणेनाविष्कृतः ॥१६४॥

### विध्यलंकारः ९९ सिद्धस्यैव विधानं यत्तदाहुर्विध्यलंकृतिस् ।

पश्चमोदश्चने काले कोकिलः कोकिलो भवेत ॥१६५॥

निर्ज्ञातिविधानमनुपयुक्तिवाधितं सदर्थान्तरगर्भीकरणेन चारुतरमिति तं विधिनामानमलंकारमाहुः । उदाहरणे कोकिल्स्य कोकिल्स्वविधानमनुपयुक्तं सदितमधुरपञ्चमध्वनिशालितया सक्लजनहव्यत्वं गर्भीकरोति । तच पञ्चमीरदञ्जने इति कालविशेषणेनाविष्कृतम् । यथावा—

हे इस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य जीवातवे विस्त श्रूद्रमुनौ कृपाणम् । रामस्य गात्रमसि निर्भरगर्भेखिन्न-सीताप्रवासनपटोः करुणा कुतस्ते ॥

कितवो यूतकृत् । 'धूर्तोऽक्षदेवी कितवः' इत्यमरः । ननु प्रसिद्धानुवादस्या-चमत्कारित्वात्कथमलंकारत्वमत आह— निर्ज्ञात इति ॥ शकुनैः पाशकैर्दाव्य-तीति शाकुनिकः । आविष्कृतमिति ध्वनित्वशङ्कानिवारणम् । एवमग्रेऽपि ॥ १६४॥ इति प्रतिषेधालंकारः ॥ ९८ ॥

पञ्चमस्य खरिबशेपस्पोदञ्चनमाविष्करणं यत्र ताद्दशं काले कोकिलः कोकिलो मधुरष्विनरभवदिल्यः। द्वितीयकोकिलपदस्यानुपयुक्तार्थत्वेनार्थान्तरे संक्रमित-त्वात्। सकलजनहृद्यत्वप्रतीतिश्च प्रयोजनम्। एवंच शालितयेल्यनन्तरं लक्षितये-ति शेषो बोध्यः। पूर्ववद्भनित्वाशङ्कानिवारणाय तचेलायुक्तम्॥ हे हस्तेति॥

१ 'ऽभवत्'. २ 'निवास'; 'विवास'.

हेत्वलंकारः १००] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१६७

अत्र रामस्य स्वह्सं प्रति रामस्य गात्रमसीति वचनमनुपयुक्तं सद्गामसेत्यनेन स्वस्यात्यन्तिन्करुणत्वं गर्भीकरोति । तच निर्भरेत्यादिविशेषणेनाविरकृतम् । यद्यप्यनयोविधिनिषेधयोरुदाहरणेषु व्यङ्ग्यान्यथान्तरसंक्रमितवाच्यरूपाणि तथापि न ध्वनिभावास्पदानि । स्वोत्तयेव व्यङ्ग्यविशेषाविष्करणात् । व्यङ्ग्याविष्करणे चालंकारत्वमेवेति प्राक्ष्यत्ताङ्करप्रकरणे व्यवस्थितत्वात् । पूर्वं वाधितौ प्रतिषेधौ आक्षेपभेदत्वेनोक्तौ । इह तु प्रसिद्धौ विधिप्रतिषेधौ तत्प्रतिद्वन्द्वनावलंकारत्वेन विणिताविति भेदः ॥ १६५ ॥

हेत्वछंकारः १०० हेतोहेंतुमता सार्थ वर्णनं हेतुरुच्यते । असाबुदेति शीतांशुर्मानच्छेदाय सुभुवाम् ॥ १६६ ॥

यथावा---

एप ते विद्वमच्छायो मरुमार्ग इवाधरः। कस्य नो तनुते तन्वि पिपासाकुलितं मनः॥ माने नेच्छिति वारयत्युपशमे क्ष्मामालिखन्त्यां हियां स्वातह्रये परिवृत्य तिष्टति करौ व्याध्य धेर्ये गते। तृष्णे त्वामनुबद्धता फलमियत्यासं जनेनामुना यत्स्पृष्टो न पदा स एव चरणौ स्प्रष्टुं न संमन्यते॥

इत्युदाहरणम् ॥ १६६ ॥

श्रूद्रतपस्याजनिताधमंवशादपूर्णायुषि द्विजवालके मृते तद्वधोद्यतस्य रामस्य खहत्तं प्रतीयमुक्तिः । जीवातवे जीवनाय । श्र्द्र एव तपश्चरणान्मुनिरिव मुनिस्तस्मिन्कृपाणं खङ्गं विस्ज निक्षिप । यतो रामस्याकरुणस्य गात्रंशरीरमित । निर्भरमित्शयेन गर्भखित्रायाः सीतायाः प्रवासनं निर्वासनं तत्र पटोईढस्थेखर्थः । अत्र रामपदमकरुणत्वरूपार्थान्तरसंकमितम् । तद्तिशयो व्यङ्ग्यः। स चात्यन्तमित्यनेनोक्तः । ध्वनिभावास्पदानि ध्वनित्वप्रयोजकानि ॥ द्यवस्थितत्वादिति ॥ शब्दार्थशक्तयाक्षिप्तोऽपि व्यङ्ग्योऽर्थः कविना पुनः । यत्राविष्क्रियते स्वोक्तया सान्यवालकृतिध्वनेः ॥ इति ध्वनिकारवचनेन निर्णातत्वादित्यर्थः॥ उक्ताविति॥ 'निषेधाभासमाक्षेपं वुधाः केचन मन्वते । आक्षेपोऽन्यो विधौ व्यक्ते निषेधे च तिरोहिते ॥' इत्येताभ्यां नाहं दूती, गच्छ गच्छसीत्युदाहरणयोः प्रतिपादिताविस्थर्थः । प्रसिद्धत्वाद्वाधितप्रतिद्वन्द्वित्वम् ॥ १६५ ॥ इति विध्यलंकारः ॥ ९९ ॥

हेतोरिति ॥ हेतुमता कार्येण । मानच्छेदः कार्यम् ॥ एप इति ॥ विड-मच्छायः प्रवालकान्तिर्विगततरुच्छायश्च सर्हार्नर्जलदेशः ॥ माने इति ॥ माने नेच्छति अनिच्छति सित । एवसुपशमे वारयित सित । हियां छज्ञायां १ मां भू-मिमालिखन्लाम् । भूम्युक्षेखनस्य तद्नुभावत्वात् । स्वातन्त्र्ये च परिवृत्व परा-खुखीभूय तिष्ठति सित धैर्ये करौ व्याधूय मम नानुमतिमिति सूचनाय हस्तधून- कुवलयानन्दः। [ रसवदलंकारः १०१

हेतुहेतुमतोरेक्यं हेतुं केचित्प्रचक्षते । लक्ष्मीविलासा विदुपां कटाक्षा वेङ्कटप्रभोः ॥ १६७॥ अत्र च कार्यावदयंभावतच्छेऽयादिप्रस्वायनार्थः कार्यकारणभेद्व्यपदेशः॥ यथावा—

आयुर्वानमहोत्सवस्य विनतक्षोणीशृतां मूर्तिमानिवश्वासो नयनोत्सवो मृगद्दशां कीर्तेः प्रकाशः परः ।
आनन्दः कलिताकृतिः सुमनसां वीरिश्रयो जीवितं
धर्मस्यैप निकेतनं विजयते वीरः कलिङ्गेश्वरः ॥
अत्र दानमहोत्सवायुष्करत्वादिनाध्यवसिते राज्ञि तदायुष्ट्वादिव्यपदेशः १६७
इत्थं शतमलंकारा लक्षयित्वा निद्शिताः ।
प्राचामाधुनिकानां च मतान्यालोच्य सर्वतः ॥१६८॥

रसवद्छंकारः १०१ रसभावतदाभासभावशान्तिनिबन्धनाः । चत्वारो रसवत्प्रेय ऊर्जस्विच समाहितम् ॥ १६९ ॥ भावस्य चोद्यः संधिः शब्छत्वमिति त्रयः । अष्टौ प्रमाणालंकाराः प्रत्यक्षप्रमुखाः क्रमात् ॥

नं कृत्वा गतें सित हे तृष्णे, त्वामनुसरतामुना जनेनैतावत्फलं प्राप्तम्। यत्पादेनापि यो न स्पृष्टः स एव चरणो स्वीयो स्प्रष्टुं न सम्यक् मन्यते अनुजानाती-व्यन्वयः। अत्र तृष्णारूपहेतुतत्कार्ययोः स्पष्टमभिधानम् ॥१६६॥ भेदान्तरमाह हेतुहेतुमतोरिति ॥ केचिद्धश्चेद्धरुप्तयः। तदुक्तम्—'हेतुमता सह हेतो-रिभधानमभेदता हेतुः' इति ॥ लक्ष्मीति ॥ कटक्षा विदुषां लक्ष्मीविलासा इत्यन्वयः। अत्र विलासहेतोर्विलासाभित्रत्वेनाभिधानम् । एवंविधलक्षणायाः प्रयोजनमाह—अत्रेति ॥ कार्यावर्यंभावश्च तच्छिप्रयं चेति विष्रहः । आदिना अपथ्याशनं रोग इत्यादौ कार्यगतोपादेयत्वानुपादेयत्वादिसंप्रहः ॥ आयुरिति ॥ वीरः कलिङ्गेश्वरः कलिङ्गदेशाधिपो विजयत इत्यन्वयः। कीदशः । दानक्ष्प्य महोत्सवस्य आयुरिति कार्याभित्रत्वेनाभिधानमेवमप्रेऽपि । विशेषेण नतानां क्षोणीस्तां राज्ञां कलिताकृतिर्धृताकारः । वीरिश्रयो वीरलक्ष्म्याः निकेतनं स्थानम् ॥ १६७ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणाभिज्ञतत्सदुपाख्यभद्दविदृलसूरिवरात्मजश्रीरामच-न्द्रसूरिसूजुना वैद्यनाथेन कृतायामलंकारचन्द्रिकाख्यायां कुवलयानन्द-टीकायां हेत्वलंकारप्रकरणं संपूर्णम् ॥ १००॥ भावस्येति ॥ निर्वेदादेर्व्यभिचारिभावस्येत्यर्थः। प्रसक्षप्रमुखाः प्रसक्षाद्याः।

१ 'कंचित्'.

रसबद्लंकारः १०१] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१६९

# एवं पश्चदशान्यानप्यलंकारान्विदुर्वधाः ॥ १७० ॥

तत्र विभावानुभावन्यभिचारिभिन्यं क्षितो रितहासशोकादिभिश्चित्तवृत्तिविशेषो रसः । स यत्र परस्याङ्गं भवित तत्र रसवद्छंकारः । विभावानुभावाभ्यामभिन्यक्षितो निर्वेदादिखयिखंशद्भेदो देवतागुरुशिष्यद्विजपुत्रादावभिन्यज्यमाना रितश्च भावः । स यत्रापरस्याङ्गं स भेयोऽछंकारः ॥ अनौचित्येन प्रवृत्तो रसो भावश्च रसाभासो भावाभासश्चेत्युच्यते स यत्रापरस्याङ्गं
तदूर्जस्वित् । भावस्य प्रशाम्यद्वस्था भावशान्तिः । तस्याः पराङ्गत्वे समाहितन् । भावस्योद्गमावस्था भावोद्यः । द्वयोविरुद्धयोभीवयोः परस्परस्पर्धा
भावसंधिः । बहूनां भावानां पूर्वपूर्वोपमर्देनोत्पत्तिभीवशवछता । एतेपामितराङ्गत्वे भावोद्याद्यखयोऽछंकाराः । तत्र रसवदुदाहरणम्—

ते च प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दार्थापत्त्यनुपलव्धिसंभवैतिह्याख्याः ॥ विभावे-स्यादि ॥ रत्यादेरालम्बनोद्दीपनरूपाणि नायिकाचन्द्रोदयादीनि कारणानि काव्ये वर्ण्यमानानि विभावयन्तीति व्युत्पत्त्या विभावपदेनाभिधीयन्ते । कार्याणि च कटाक्षरोमाञ्चादीनि । तथाविधान्येवानु पश्चाद्भवन्तीति व्युत्पत्त्यानुभावपदेन । एषामेव कार्याणां रत्यादिनोत्पादने कर्तव्ये सहकारिभृतान्युत्कण्ठादीनि च व्यभि-चारिपदेन विशेषाद्भितः समन्ततो ये स्थायिनं चारयन्तीति व्युत्पत्तेः। एवं रतिरासक्तयन्तरागादिपर्यायवोध्यान्तःकरणवृत्तिः विकृतविद्षिकादिचेष्टादर्शनज-न्या । चित्तस्य विकासरूपा वृत्तिर्हासः । इष्टनाशानिष्टलाभादिजन्या चित्तवृत्तिः शोकः प्रसिद्धः । आदिपदेन कोधोत्साहभयजुगुप्साविस्मयनिर्वेदाख्यानां पण्णां परिग्रहः । विशेषपदेन च रत्यादेः स्थायित्वप्रयोजकं परिपुष्टत्वं कान्ताविषयत्व-मितरानङ्गत्वं च विवक्षितम् । तदुक्तम्—'रलादिश्वेनिरङ्गः स्यादेवादिविषयोऽथ वा । अन्याङ्गभावभाग्वा स्यान्न तदा स्थायिशब्दभाक् ॥' इति स्थायिन एव चा-भिव्यक्तरसत्वम् । यदाहु:-'कारणान्यथ कार्याण सहकारीणि यानि च । रत्यादै: स्थायिना लोके तानि चेनाव्यकाव्ययोः ॥ विभावा अनुभावास्तत्कथ्यन्ते व्यभि-चारिणः । व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः ॥' इति । अभिव्य-क्तानां च रत्यादीनां रसरूपाणां क्रमाच्छुङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकवीभत्सा-द्धृतशान्तरूपविशेषसंज्ञा वोध्याः ॥ निर्वेदादिरिति ॥ 'निर्वेदग्लानिशङ्काख्या-स्तथास्यामदश्रमाः । आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्ता मोहः स्मृतिर्धृतिः ॥ बीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा। गर्वो विषाद औत्स्वयं निद्रा विस्मृतिरेव च ॥ खप्तो विवोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोप्रता । मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ॥ त्रासश्चेव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः । त्रयस्त्रिशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः ॥' इति भरतेनोक्ताः । लजादिना विकारगोपनमवहि-त्थाख्यो भावः । देवतेत्याद्यपरिपुष्टत्वादेरुपलक्षणम् । रतिरिति चापुष्टहासादेः ॥ अनौचित्येनेति ॥ एतचोदाहरणे दर्शयिष्यामः ॥ मुनिरिति ॥ कुम्भसंभ- क्रवलयानन्दः। जिजस्वदलंकारः १०३

मुनिर्जयति योगीन्द्रो महात्मा कुम्भसंभवः। येनेकचुलके दृष्टी दिव्यो तो मत्स्यकच्छपी॥ अत्र मुनिविषयरतिरूपस्य भावस्याद्भतरसोऽङ्गम् । यथावा-अयं स रसनोत्कर्षा पीनस्तनविमर्दनः। नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः॥ अत्र करुणस्य शङ्कारोऽङ्गम् ॥

प्रेयोलंकारस्य भावालंकारत्वम् १०२ प्रेयोऽलंकार एव भावालंकार उच्यते । स यथा-कदा वाराणस्थाममरतिटनीरोधिस वस-न्वसानः कौपीनं शिरसि निद्धानोऽञ्जलिपुटम् । अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन प्रसीदेलाकोशिक्षिमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ अत्र शान्तिरसस्य कदेतिपद्सुचितचिन्ताख्यो व्यभिचारिभावोऽङ्गम् । यथावा--

अत्युचाः परितः स्फुरन्ति गिरयः स्फारास्तथामभोधय-स्तानेतानिप बिभ्रती किमपि न श्रान्तासि तुभ्यं नमः। आश्चर्येण मुहुर्मुहुः स्तुतिमिति प्रस्तौमि यावद्भव-स्तावद्विअदिमां स्मृतस्तव भुजो वाचस्ततो सुद्धिताः॥ अत्र प्रभुविषयरतिभावस्य वसुमतीविषयरतिभावोऽङ्गम् ॥

ऊर्जस्वदलंकारः १०३

ऊर्जिस्व यथा-त्वत्प्रत्यिवसुन्धरेशतरुणीः संत्रासतः सत्वरं यान्तीवींर विलुण्ठितुं सरभसं याताः किराता वने ।

वोऽगस्यः । एकचुलकेन समुद्रे पीयमाने तदन्तर्गतयोरवताररूपयोर्मत्स्यकूर्म-योर्द्शनेन गम्योऽद्भतरसो मुनिप्रभावातिशयपर्यवसन्नतया तद्विषयरतिपोषक-त्वात्तदङ्गमिति भावः ॥ अयमिति ॥ भूरिश्रवसिरुछत्रं हस्तमालोक्य तद्वधूना-मुक्तिः । स पूर्वानुभूतोऽयं करः यः काञ्चीसमाकर्पणशीलः । नीवी वसनप्रन्थि-स्तस्या विस्नंसनो मोचक इति स्मर्यमाणया शृङ्गारावस्थया करुणरसपरिपोषः ।

कदेति ॥ निमिषमिव दिवसान्कदा नेष्यामीत्यन्वयः । कीदशः । कादयां ग-क्रातीरे वसन् । अये इलादेरिति कोशन्निल्यनेनान्वयः ॥ अत्युचा इति ॥ स्फा-रा विस्तीर्णाः । प्रस्तौमि प्रसंजयामि । भुवः पृथिव्याः । इमां भुवं विश्रद्धारय-माणः ॥ त्वत्प्रत्यर्थाति ॥ हे वीर, संत्रासतो भयाद्वने सत्वरं गच्छतीस्तव

१ 'प्रेमभावातिशय'.

### भाषोलंकारः १०५] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१७१

तिष्ठन्ति स्तिमिताः प्ररूढपुलकास्ते विस्मृतोपक्रमास्तासामुत्तरलेः स्तैनरिततरां लोलेरपाङ्गेरिष ॥
अत्र प्रभुविषयरितभावस्य श्रङ्गाररसाभासोऽङ्गम् । यथावा—
त्विष लोचनगोचरं गते सफलं जन्म नृसिंह भूपते ।
अजनिष्ट ममेति सादरं युधि विज्ञापयित द्विषां गणः ॥
अत्र कवेः प्रभुविषयस्य रितभावस्य तद्विषयद्विषद्गणरितरूपो भावाभासोऽङ्गम् ।

### समाहितालंकारः १०४

समाहितं यथा-

पश्यामः किमियं प्रपद्यत इति स्थैयं मयालम्बतं किं मां नालपतीत्ययं खलु शटः कोपस्तयाच्याश्रितः । इत्यन्योन्यविलक्ष्यदृष्टिचतुरे तस्मिन्नवस्थान्तरे सन्याजं हसितं मया धतिहरो मुक्तस्तु बाष्पस्तया॥ अत्र शृङ्गारस्य कोपशान्तिरङ्गम्॥

### भावोलंकारः १०५

भावोदयो यथा-

तद्द्य विश्रम्य द्यालुरेधि मे दिनं निनीपामि भवद्विलोकिनी । अदर्शि पादेन विलिख्य पत्रिणा तवैव रूपेण समः स मध्प्रियः॥ अत्र नलं प्रति दुमयन्त्या औत्सुक्यरूपभावस्योदयः शुङ्गाररसस्याङ्गम्।

प्रसिर्धनः शत्रवो वसुन्धरेशा भूपास्तेषां तरुणीविंछिण्ठितुं याताः किराता भिल्लाः तासां तरुणीनामुत्तरलैरतिचपलैः स्तनैरतितरामितशयेन लोलैश्ब छैरपाङ्गेनित्रप्रान्तेश्व तैः स्तिमिताः स्तव्धाः प्रोद्गतरोमान्ना विस्मृत उपक्रमो छण्डनरूपो यैस्तान्दशास्त्रिष्टनतीत्यन्वयः । अत्र शृङ्गारस्याननुरक्तराजविताविषयत्वादनौचित्येन प्रमृतिस्यामासरूपत्वम् ॥ त्वयीति ॥ अजिनष्ट अभूत् । युधि संग्रामे ॥ तिद्विषयेति ॥ प्रभुविषया द्विषद्गणस्य या रतिस्तद्रूप इत्यर्थः । अत्र शत्रुविषय-कत्वरूपानौचित्येन प्रवर्तितत्वाद्भावस्याभासत्वम् ॥ पर्याम इति ॥ नायकस्य स्वमित्रं प्रति नायिकावृत्तान्तोक्तिः । मिय तूर्ष्णीभूते किमियं प्रपद्यते कुरुते तत्प-श्याम इत्यिभप्रायेण मया स्थैर्यं मोनरूपमालिम्बतमङ्गीकृतम् । पर्याम इति बहुवचनं सस्वीसमानाभिप्रायम् । एवं तयाप्ययं स्त श्राते किमिति नालपित स्वीसमानाभिप्रायम् । एवं तयाप्ययं स्त श्राते स्थिस्या लक्ष्यरिता या दिष्टस्तत्र चतुरे । सन्याजं निमित्तान्तरन्याजसिहतम् ॥

तदिति ॥ एधि भव । निनीपामि नेतुमिच्छामि । यतस्तवेव रूपेण समः स

१७२

कुवलयानन्दः। [ प्रत्यक्षालंकारः १०८

#### भावसंध्यलंकारः १०६

भावसंधिर्यथा-

एकाभूत्कुसुमायुघेषुधिरिव प्रव्यक्तपुङ्खावली जेतुर्मङ्गलपालिकेव पुलकेरन्या कपोलस्थली । लोलाक्षी क्षणमात्रभाविविरहक्केशासहां पश्यतो द्वागाकर्णयतश्च वीर भवतः प्रौढाहवाडम्बरम् ॥ अत्र रमणीप्रेमरणौत्सुक्ययोः संधिः प्रभुविषयभावस्याङ्गम् ।

#### भावशबळाळंकारः १०७

भावशबलं यथा-

क्वाकार्यं शशलक्ष्मणः क च कुलं भूयोऽपि दृश्येत सा दोपाणां प्रश्नमाय नः श्रुतमहो कोपेऽपि कान्तं मुखम् । किं वक्ष्यन्त्यपकल्मषाः कृतिधयः स्वप्नेऽपि सा दुर्लभा चेतः स्वास्थ्यमुपेहि कः खलु युवा धन्योऽधरं धास्यति ॥ अत्र वितकौरंसुक्यमतिस्मरणशङ्कादैन्यधितिचिन्तानां शबलता विप्रलम्भ-शृङ्कारस्याङ्गम् ॥

### प्रत्यक्षालंकारः १०८

प्रमाणालंकारे प्रत्यक्षं यथा-

क्रान्तकान्तवदनप्रतिबिम्बे भग्नवालसहकारसुगन्धौ । स्वादुनि प्रणदितालिनि शीते निर्विवार मधुनीन्द्रियवर्गः॥

मित्रयो नलः पित्रणा हंसेन पादेन विलिख्य अद्शिं द्शितः ॥ एकेति ॥ हे वीर, क्षणमात्रेण युद्धप्रस्थानाद्धावी यो विरह्ने शस्तदसहिष्णुं लोलाक्षीं द्यितां प्रयतस्था प्रौढसंप्रामाडम्बरमाकण्यतश्च भवतः एका कपोलस्थली द्राक् शीघ्रं पुलकेः कुसुमायुधस्य मदनस्येषुधिस्तरणीव प्रव्यक्ता पुङ्खावली शरपुङ्खपङ्किर्यत्र तथाभूताभूत् । अन्या द्वितीया जेतुर्जयशीलस्य मङ्गलपालिका मङ्गलस्पा पालिका या कुशकाशादिनिर्मिता उभयपार्थस्तम्भगृक्षादिषु बद्धा मार्गपालीति प्रसिद्धा तद्वदभूदिस्यथः । अत्र प्रेमपदोक्ताया रतेरपरिपुष्टत्वाद्धावरूपत्वं वोध्यम् ॥ का-कार्यमिति ॥ शुककन्यां देवयानीं दृष्टवतो राशो ययातेरियमुक्तिः । अकार्यं वाह्मणकन्यासक्तिः । शशलाञ्छनस्य चन्द्रस्य कुलं सोमवंशः । अयं वितर्कः । तदुपमर्देन भूयोऽपीसौत्सुक्यम् । एवमभ्रेऽपि । श्रुतं शास्त्रश्रवणमिति मृतिः । अहो कोपेऽपीति स्मरणम् । अपगतकल्मषाः कृते सुकृते धीर्येषां ते किं विद्ययन्तीति शङ्का । स्वप्रेऽपीति दैन्यम् । हे चेतः, स्वास्थ्यमुपहीति धैर्यम् । कः खङ् धन्यो युवा तरुणोऽधर्र धास्यति पास्यतीति चिन्ता । विप्रलम्भो वियोग इति पर्यायौ ॥

क्रान्तेति ॥ इन्द्रियाणां वर्गः समूहः । मधुनि मधे निर्ववार निर्वृतिं प्राप ।

### अनुमानालंकारः १०९] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

१७३

यथावा---

किं तावत्सरित सरोजमेतदारादाहोस्विन्मुखमवभासते युवत्याः । संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चिद्धिच्योकैर्वकसहवासिनां परोक्षेः॥ पूर्वत्र प्रत्यक्षमात्रमत्र तु विशेषदर्शनजन्यसंशयोत्तरप्रत्यक्षमिति भेदः॥

### अनुमानालंकारः १०९

अनुमानं यथा-

यथा रन्ध्रच्योम्नश्चलजलद्धृमः स्थायति स्फुलिङ्गानां रूपं द्धति च यथा कीटमणयः। यथा विद्युज्जवालोह्यसितपरिपिङ्गाश्च ककुभ-स्तथा मन्ये लग्नः पथिकतरुखण्डे स्मरदवः॥

यथावा-

यत्रैता छहरीचलाचलहरोा व्यापारयन्ति भुवौ यत्तत्रैव पतन्ति संततममी मर्मस्पृशो मार्गणाः । तचक्रीकृतचापपुङ्खितशरप्रेङ्खत्करः क्रोधनो धावत्ययत एव शासनधरः सत्यं तदासां स्मरः ॥ पूर्वं रूपकसंकीर्णमिदमितशयोक्तिसंकीर्णमिति भेदः ।

शुद्धानुमानं यथा-

कथंभूते । संकान्तिप्रयमुखप्रतिविम्वे । भग्नकोमलामपह्नववत्सुगन्धौ स्वादुनि आस्वाये प्रकृष्टनाद्युक्तभ्रमरयुते शीतस्पर्शे चेति । अत्रेन्द्रियतृह्या तज्जन्यप्रस्यस्मलंकारः ॥ किमिति ॥ आराह्रे । इति क्षणं संदिह्य कश्चिद्वकसहवासिनां कमलानां परोक्षेरदृश्यैविंव्योकैः मानात्प्रियकथालापे 'विव्योकोऽनाद्रित्रया' इन्त्युक्तलक्षणहांवविशेषम्अमिति निश्चिकाय निर्णातवान् । इति प्रत्यक्षम् ॥

यथेति ॥ यथाशब्दा अनुमानार्थाः । 'यथाशब्दस्तु निर्दिष्टस्तुल्ययोगानुमानयोः' इति विश्वकोशात् । तथाच चपळजळदरूपो धूमो व्योग्न आकाशस्य रन्ध्रमवकाशं यसात्स्थगयित तस्माच कीटमणयः खद्योताः स्फुलिङ्गानां रूपं द्रधित धारयन्ति । यस्माच विद्युदूपाभिज्वांलाभिरुष्ठसिताः प्रकाशीभूताः परितः पिङ्गवर्णाश्च ककुभो दिशस्तस्मात्पथिकरूपाणां तरूणां खण्डे समूहे स्मरलक्षणो दवाप्तिर्लम इति मन्ये इत्यन्वयः । प्रयोगस्तु पथिकतरुखण्डं स्मरदावानलवत् व्योमव्यापिजलद्धूमवत्त्वादित्यादिवोध्यः ॥ यत्रेता इति ॥ लहरीवचलाचलान्ध्यञ्चला दशो यासां ता एताः कामिन्यो यत्र जने भूलतां व्यापारयन्ति प्रेरयन्ति तत्रेव भूसंज्ञाविषय एव यद्यस्मादमी मर्मस्पर्शिनो वाणाः संततं पतन्ति तत्तस्मान्मण्डलीकृते चापे पुङ्किता योजितमुखा ये शरास्तेषु प्रेङ्कंश्वपलः करो यस्य ता-दशः कोधनः स्मरः शासनमाज्ञा तद्धारक आसामप्रतो धावतीति सत्यमित्यन्वयः ॥ अतिशयोक्तीति ॥ मार्गणत्वेन दशामध्यवसानादिति भावः । प्रयोगस्तु

कुवलयानन्दः । [ शब्दप्रमाणालंकारः १११

808

विलीयमानैर्विहरौनिमीलद्भिश्च पङ्कजैः । विकसन्त्या च मालला गतोऽस्तं ज्ञायते रविः ॥

यथावा-

सौमित्रे नतु सेव्यतां तरुतलं चण्डांशुरुज्ज्ञम्भते चण्डांशोनिंशि का कथा रघुपते चन्द्रोऽयमुन्मीलित । वत्सेतद्विदितं कथं तु भवता धत्ते कुरङ्गं यतः कासि प्रेयसि हा कुरङ्गनयने चन्द्रानने जानकि ॥

#### उपमानालंकारः ११०

उपमानं यथा-

तां रोहिणीं विजानीहि ज्योतिपामत्र मण्डले । यस्तिन्व तारकान्यासः शकटाकारमाश्रितः ॥ अत्र मन्मथमिवातिसुन्दरं दानवारिमिव दिव्यतेजसम् । शेलराजमिव धैर्यशालिनं वेग्नि वेञ्कटपतिं महीपतिम् ॥

पूर्वोदाहरणे उपमानभूतमितदेशवाक्यं द्शितम् । अत्रातिदेशवाक्यार्थ-सादृश्यप्रत्यक्षरूपमुपमानं फलेन सह द्शितमिति विशेषः॥

#### शब्दप्रमाणालंकारः १११

शब्दप्रमाणं यथा-

विवृण्वता दोषमि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम् । यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ॥

एताश्वकीकृतचापं सदा पुरोधावदाज्ञाकरमदनकाः मर्मभेदिवाणपाताश्रयंश्रू संज्ञा-स्थानकत्वादिति बोध्यः । एवं निलीयमानैरित्यत्रापि । अयं कालः सूर्यास्तमय-वान् पक्षिनिलीयमानताद्याश्रयत्वादिति । रविरस्तगमनवान् तादशकालसंबन्धि-त्वादिति वा प्रयोगो ह्रेयः ॥ सौमित्रे इति ॥ विरहातुरस्य रामस्य लक्ष्मणं प्रत्युक्तिः । अत्राप्ययं चन्द्रः कुरङ्गधारित्वादिति प्रयोगः । इत्यनुमानम् ॥

तामिति ॥ तारकाणां न्यासः संनिवेशः शकटस्याकारं संस्थानमाश्रितस्तां रोहिणीं विजानीहीत्यतिदेशवाक्यार्थंज्ञानिमहोपमानम् । इयं शकटाकारनक्षत्रव्यकिः रोहिणीपदवाच्येत्युपमिति प्रति करणत्वात् ॥ अत्रेति ॥ अत्र एषु राजसु
मध्ये मन्मथमिवातिसुन्दरं महीपितं वेद्वटपितसंज्ञं वेद्यीत्याद्यन्वयः । दानवारिविष्णुः शैलराजं हरं धेर्यशालिनं मदनशासकत्वात् ॥ प्रत्यक्षरूपमिति ॥ साहदयविशिष्टपिण्डप्रत्यक्षस्यापि फलायोगव्यवच्छित्रत्वेन कारणत्वादिति भावः ।
फलेन उपमितिरूपेण । इत्युपमानम् ॥

विवृण्वेति ॥ कुमारसंभवे बढुवेषं हरं प्रति पार्वत्या इयमुक्तिः । वरदोषं प्रकाशयतापि स्वलितान्तः करणेन त्वया ईशं महादेवं प्रति एकमलक्ष्यजन्मत्वं

# आत्मतुष्टिप्रमाणालंकारः] अलंकारचन्द्रिकासहितः। १७५

अत्र शिवः परमेष्टिनोऽपि कारणमित्यत्र श्वतिरूपं शब्दप्रमाणमुपन्यस्तम्। एवं श्रुतिपुराणागमलोकिकवाक्यरूपाण्यपि शब्दप्रमाणान्युदाहरणीयानि ।

### तत्र स्मृत्यलंकारः ११२

तत्र स्मृतिर्यथा--

बलात्कुरत पापानि सन्तु तान्यकृतानि वः । सर्वान्यलकृतानर्थानकृतान्मनुरववीत् ॥

्र पूर्व श्चितिरभिमतार्थे प्रमाणत्वेनोपन्यस्ता । इह तु स्मृतिरनभिमतार्थे तहूपणपरेण प्रमाणत्या नीतेति भेदः । आचारात्मतुष्टयोरपि मीमांसकोक्त-धर्मप्रमाणयोर्वेदशब्दानुमापकतया शब्दप्रमाण एवान्तर्भावः । तत्राचारप्र- भाणं यथा—

सहाजनाचारपरम्परेदशी स्वनाम नामाददते न साधवः । अतोऽभिधातुं न तदुःसहे पुनर्जनः किलाचारमुचं विगायति ॥

## आत्मतुष्टिप्रमाणालंकारः ११३

आत्मतुष्टिप्रमाणं यथा-

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलापि मे मनः । सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणस्य वृत्तयः ॥ अत्र दुष्यन्तेनात्मतुष्ट्या शक्तन्तलापरिग्रहस्य धर्म्यत्वं श्रत्यनुमतमनुमी-यते । एवं श्रुतिलिङ्गादिकमपि भीमांसोक्तं प्रमाणं संभवदिहोदाहर्तव्यम् ।

साधूक्तम् । यतो यमीशमात्मभुवो ब्रह्मणोऽपि कारणमामनन्ति वेदाः । स कथं लक्ष्यः प्रभव उत्पत्तिस्थानं यस्य ताद्यभविष्यतीत्यन्वयः । विवक्षतेति क्रचित्पा-ठः वक्तुमिच्छतेति तदर्थः ॥

वलादिति ॥ नास्तिकोक्तिरियम् । हे जनाः, पापानि वलाकुरुत । तानिच पापानि वो युष्माकमकृतान्येव भवन्तु । यतो वलाकारेण कृतान्स-र्वानर्थान्मनुरकृतानव्रवीदिखन्वयः । तद्दूपणपरेण सर्वाभिमतार्थदूपणपरेण । आत्मनस्तुष्टिः प्रीतिवैकल्पिके विषये 'गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्' इखादौ प्रमाणमित्युक्तम् ॥ महाजनेति ॥ दमयन्तीं प्रति नलस्योक्तिः । नाम वितर्के । नाददते न गृह्णन्ति । आचारमुचमाचारखागिनं विगायति निन्दति ॥

असंशयमिति ॥ क्षत्रेण क्षत्रियेण परित्रहे क्षमा योग्या । यत आर्थे श्रेष्ठं मम मनो यस्यां शकुन्तलायामभिलाषशीलम् । पदेषु विषयेषु ॥ 308

कुवलयानन्दः।

[श्रत्यलंकारः ११४

श्रुत्यलंकारः ११४

तत्र श्रुतिर्यथा-

चमत्कारो यथा-

त्वं हि नाम्नेव वरदो नाधत्से वरमुद्रिकाम् । नहि श्रुतिप्रसिद्धार्थे लिङ्गमाद्रियते बुधैः ॥

अत्र करिगिरीश्वरस्य वरद इत्यभिधानश्चत्या सर्वाभिलिपतदातृत्वं सम-र्थितम् । लिङ्गं यथा—

विदितं वो यथा स्वार्था न मे काश्चित्रवृत्तयः। ननु मूर्तिभिरष्टाभिरित्थंभूतोऽस्मि सूचितः॥

अत्र शिवस्य श्रुतिप्रसिद्धसर्वोपकारकपृथिव्याद्यष्टमूर्तिपरिग्रहलिङ्गेन तत्प्र-वृत्तीनां लोकानुग्रहेकप्रयोजनत्वं समर्थितम् । लिङ्गस्य मूलभूतवेदानुमापक-तया वैदिकशब्दप्रमाण एवान्तर्भावः । एवं लोकिकलिङ्गानामपि लोकिक-शब्दोन्नायकतया लोकिकशब्दप्रमाण इवान्तर्भावः । अतः ।

लोलङ्कलतया विपक्षदिगुपन्यासे विधूतं शिर-स्तव्वान्तपरीक्षणे कृतनमस्कारो विलक्ष्यस्थितः । ईपत्ताम्रकपोलकान्तिनि मुखे दृष्ट्या नतः पादयो-रुत्सृष्टो गुरुसंनिधावपि विधिद्वीभ्यां न कालोचितः ॥ इत्यादि चेष्टारूपं प्रमाणान्तरं नाशङ्कनीयम् । कविच्छब्दप्रमाणकल्पनया

किमसुभिग्र्छिपितैर्जंड मन्यसे मिय निमज्जतु भीमसुतामनः।

मम किल श्रुतिमाह तर्दार्थकां नलमुखेन्दुपरां विबुधस्मरः॥

अत्र म्रियमाणानां मनश्चन्द्रं प्रविश्वतीत्येतदर्थिकायाः श्रुतेर्नलमुखचन्द्रविषयत्वे कल्पिते तथा न्याख्यातृस्मरवाक्यं प्रमाणतयोपन्यस्तम्।

त्वं हीति ॥ वरमुद्रिकां वरमुद्रां नाधत्से न धास्यसि । श्रुतिर्वरदसंज्ञारूपा लिङ्गं गमकम् । पक्षे श्रुत्या तृतीयादिरूपया प्रकर्षेण शीघं सिद्धेऽर्थे अङ्गाङ्गीभावे सित लिङ्गमर्थप्रकाशनसामर्थ्यरूपमाद्रियते । यथा 'ऐन्द्र्या गाईपत्यमुपतिष्ठते' इति श्रुत्या गाईपत्योपस्थाने विनियुक्तस्य मन्त्रस्थेन्द्रप्रकाशनसामर्थ्यरूपेण लिङ्गेनेन्द्रोपस्थाने विनियोगो नाद्रियत इत्यर्थः । किरिगिरीश्वरः कालहस्तीश्वरः ॥ विदितमिति ॥ इत्थंभूतः परार्थेकप्रवृत्तिकः । अत इत्यस्य चेष्टारूपं प्रमाणान्तरं नाशङ्कनीयमित्यप्रेतनेनान्वयः ॥ लोलिदिति ॥ गुरूणां संनिधाविष द्वाभ्यां नायकाभ्यां समयोचितो विधिनौत्यष्टः । यथा लोलङ्कूलतया नायकाया विपक्षस्य सपद्भयदिद्रिश उपन्यासे तत्सकाशादागतोऽसीति सूचने कृते नायकेन नेति सूचनाय शिरो विधूतं संचालितम् । ततस्तद्भत्तान्तपरीक्षणे नायिकया कृते सत्यकृतनमस्कारो विलक्ष्य एव स्थितः । तत ईषत्तामा कपोलकान्तिर्यस्य तादशे नायिकाया मुखे कोपातिशयाज्ञाते सित तत्पादयोईष्टिपातेनैवानतः प्रणत इति ॥ किमसुभिरिति ॥ व्याख्यातं प्राक् ॥ तथिति ॥ नलमुखचन्द-

संभवालंकारः ११७ ] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

200

### अर्थापत्तिरलंकारः ११५

अर्थापत्तिर्यथा-

निर्णेतुं शक्यमस्तीति मध्यं तव नितम्बिनि । अन्यथा नोपपद्येत पयोधरभरस्थितिः ॥

यथावा---

व्यक्तं बलीयान्यदि हेतुरागमादपूरयत्सा जलिं न जाह्नवी । गङ्गोघनिर्भिरिसतशम्भुकन्धरासुवर्णमर्णः कथमन्यथा स्यात्॥

### अनुपलब्ध्यलंकारः ११६

🕶 अनुपलब्धिर्यथा—

स्फुटमसद्वलमं तन्वि निश्चिन्वते ते तद्नुपलभमानास्तर्कयन्तोऽपि लोकाः । कुचिगिरिवरयुग्मं यद्विनाधारमास्ते तदिह मकरकेतोरिन्द्रजालं प्रतीमः ॥

#### संभवालंकारः ११७

संभवो यथा-

अभूतपूर्व मम भावि किं वा सर्व सहे मे सहजं हि दुःखम्। किं तु त्वद्ग्रे शरणागतानां पराभवो नाथ न तेऽनुरूपः॥

विषयत्वव्याख्यातुः स्मरस्येत्यर्थः । तचासिद्धत्वात्किल्पितमिति भावः । इति शब्दः॥

निर्णेतुमिति ॥ अस्तीति निर्णेतुं शक्यमित्यन्वयः ॥ व्यक्तमिति ॥ हेतुस्तर्भः । यदि व्यक्तं प्रकटं बलीयान् तदा सा जाह्ववी जलिं नापूरयत् । अन्यथा पूरणे सित अर्णः समुद्रस्य जलं गङ्गोधैनिर्भित्सितं तिरस्कृतं सच्छम्भु-कण्ठसमानवर्णं नीलं कथं स्यादित्यन्वयः । इत्यर्थापत्तिः ॥

स्फ्रटमिति ॥ हे तन्वि, तर्कयन्तस्तर्कशीला अपि लोकास्तदवलप्रमनुपल-भमाना अपश्यन्तस्तवावलग्नं मध्यमसदिति स्फुटमेव निश्चिन्वते । कुलपर्वतश्रे-ष्रयुग्मत्वेनाध्यवसितं स्तनद्वन्द्वमाधारं विना यदास्ते तत्त्विह मकरध्वजस्रेन्द्रजालं मायाचरितं प्रतीम इत्यन्वयः । इत्यनुपलव्धिः ॥

अभूतेति ॥ ईश्वरं प्रति भक्तस्योक्तिः । पूर्वमभूतमभूतपूर्वे तादशं मम किं वा भावि । न किंचित् । सर्वे शीतातपादि द्वन्द्वं सहे । हि यतो मम सहजमेव दुःखमस्ति । किंतु हे नाथ, ते तव शरणगतानां भक्तानां त्वद्ये पराभवो नानु-रूपो नोचित इत्यन्वयः । अथवा तव नानुरूप इत्यन्वयः । अत्र दुःखादेः संभ-

कुवलयानन्दः । [ ऐतिह्यालंकारः १-१८

यथावा—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नेप यतः। उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा कालो द्ययं निरुवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

यथावा---

भ्रातः पान्थ कुतो भवान्नगरतो वार्ता नवा वर्तते
बाढं बूहि युवा पयोदसमये त्यक्त्वा प्रियां जीवति ।
सत्यं जीवति जीवतीति कथिता वार्ता मयापि श्रुता
विस्तीर्णा पृथिवी जनोऽपि विविधः किं किं न संभाव्यते ॥
अन्नाद्योदाहरणे अभूतपूर्व सम भावि किं वेति संभवप्रमाणसिद्धार्थो दृश्चितः । द्वितीयोदाहरणे संभवोपपादकं कालानन्त्यादिकमपि दृश्चितम् । नृतीयोदाहरणे तु संभवोऽपि कण्ठोक्त इति भेदः ।

### पेतिह्यालंकारः ११८

कल्याणी बत गाथेयं लोकिकी प्रतिभाति मे ।

यथा--

एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशताद्वि ॥
अत्र लौकिकी गाथेयमिल्यनिर्दिष्टप्रवक्तृकप्रवाद्पारंपर्थरूपता दृशिता ॥
अथैतेपामलंकाराणां यथासंभवं कचिनमेलने लौकिकालंकाराणां मेलन

इव चारुत्वातिशयोपलम्भान्नरसिंहन्यायेन पृथगलंकारावस्थितौ तन्निर्णयः क्रियते । तत्र तिलतण्डुलन्यायेन स्फुटावगम्यभेदालंकारमेलने संसृष्टिः।

वाख्यप्रमाणसिद्धस्य कथनम् ॥ ये नामेति ॥ भवभूतेरुक्तिः । नामेति कुत्सने । 'नाम प्राकाद्यसंभाव्यकोधोपगमकुत्सने' इत्यमरः । किमपीति काकुः । न कि-मपीत्यर्थः । एषः काव्यनिर्माणरूपः । मम कोऽपि समानधर्मा सहक्रो य उत्प-त्स्यते अस्ति वा तं प्रति यत्नः । हि यस्मान्निरविधरयं कालः पृथ्वी च विपुलेति क्रमेण योज्यम् । अत्र कालो ह्ययमित्यादिना सोपपत्तिकं संभवाख्यप्रमाणमुपद-शितम् ॥ भातरिति ॥ पथिकं प्रति प्रामस्थस्य प्रश्नः । कृत इत्यनन्तरमागत इति शेषः । नगरादित्युत्तरम् । वार्तेति पुनः पूर्वस्य प्रश्नः । वाढमित्युत्तरमङ्गी-कारे । अस्तीत्यर्थः । त्रूहीति पूर्वस्योक्तिः । युवेत्यादि पान्थवचनम् । सत्यं जीव-तीति पुनः पूर्वस्य प्रश्नः । जीवतीत्यादि सर्वे पान्थवचनम् । इति संभवः ॥

अनिर्दिष्टप्रवक्तृकेति ॥ अनिर्दिष्टो विशेषतोऽनुक्तः प्रवक्ता यस्येत्यर्थः । एवं चैतदेवैतिहालक्षणमिति दर्शितम् ॥ इति प्रमाणालकारप्रकरणम् ॥

यथासंभवमिति ॥ संस्रिसंकराभ्यां द्वयोस्तद्धिकानां वेति यथासंभव-मित्यर्थः ॥ स्फुटेति ॥ स्फुटमवगम्यमानो भेदो येषामिति विग्रहः । एकस्मि-न्वाचकेऽनुप्रवेशोऽवस्थितिः । एतत्सर्वमुदाहरणे व्यक्तीभविष्यति ॥

# अङ्गाङ्गिभावसंकरः १२०] अलंकारचन्द्रिकासहितः । १७९

नीरक्षीरन्यायेनास्फुटभेदालंकारमेलने संकरः । स चाङ्गाङ्गीभावेन समप्रा-धान्येन संदेहेन एकवाचकानुप्रवेशेन चतुर्विधः । एवं नृसिंहाकाराः पञ्चालंकारः ।

#### अलंकारसंसृष्टिः ११९

तत्रालंकारसंसृष्टिर्यथा-

कुसुमसौरभलोभपरिश्रमद्धमरसंश्रमसंभृतशोभया । चित्रतया विद्धे कलमेखलाकलकलोलकलोलदशान्यया ॥ अत्र शब्दालंकारानुप्रासयमकयोः संसृष्टिः ।

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः। असत्पुरुपसेवेव दृष्टिनिष्फलतां गता॥ अत्रोत्प्रेक्षयोरुपमायाश्चेत्यर्थालंकाराणां संसृष्टिः। आनन्दमन्थरपुरन्दरसुक्तमाल्यं

मौलौ हठेन निहितं महिपासुरस्य।
पादाम्बुजं अवतु मे विजयाय मञ्जुमञ्जीरसिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः॥
अत्र शब्दार्थालंकारयोरनुप्रासोपमयोः संसृष्टिः।

अङ्गाङ्गिभावसंकराळंकारः १२० अङ्गाङ्गिभावसंकरो यथा— तळेष्ववेपन्त महीरुहाणां छायास्तदा मारुतकम्पितानाम् । शशाङ्गसिंहेन तमोगजानां ऌनाकृतीनामिव गात्रखण्डाः ॥

कुसुमेति ॥ माघे ऋतुवर्णने पद्यमिदम् । अन्यया कयापि वनितया चिल्तया कळ्खरो मेखलायाः काङ्याः कळकळः कोलाहलो विद्धे । किंमूत्या । कुसुमसौरमलोभेन परिश्रमतां श्रमराणां संश्रमेण त्वराविशेषेण संभृता समृद्धा श्रोभा यस्यास्तथा अलका लोला यस्यां तादशी दृग्यस्यास्तथाभृतयेति ॥ आन-न्देति ॥ आनन्देन मन्थरं यथा स्यात्तथा । पुरन्दरेणेन्द्रेण मुक्तमिपतं माल्यं यत्र तादशं महिषासुरस्य मोलो मस्तके हठेन निहितं मञ्ज मनोइं मजीरस्य नृपुरस्य सिजितं रणितं यत्र तादशमनोरममिवकायाः पादाम्बुजमम्बुजसदशं चरणं नोऽस्माकं विजयाय भवत्वत्यन्वयः । अत्र पादाम्बुजमित्युपमितसमास एव नतु मयूरव्यंसकादिवत्पाद एवाम्बुजमिति । तथा सत्यम्बुजप्राधान्ये मजीरसिजितान्वयायोगादित्युपमैव न रूपकमिति ज्ञेयम् । इति संसृष्टिः ॥

तळेष्विति ॥ तदा मारुतकम्पितानां महीरुहाणां तळेषु छाया अवेपन्त क-म्पमाना आसन् । तत्रोत्प्रेक्षते । शशाङ्करूपेण सिंहेन छिन्नाकृतीनां तमोळक्षण-गजानां शरीरखण्डा इवेति । गुणानां चेति तार्तीयाधिकरणसूत्रम् । अस्यार्थः । अत्र शशाङ्कासिंहेनेति तमोगजानामिति च रूपकम् । यद्यप्यत्र शशाङ्क एव सिंहस्तमांस्येव गजा इति मयूरव्यंसकादिसमासाश्रयणेन रूपकवच्छ-शाङ्कः सिंह इव तमांसि गजा इवेत्युपमितसमासाश्रयणेनोपमापि वक्तुं श-क्या तथापि ऌ्नाकृतीनामिति विशेषणानुगुण्याद्रूपकसिद्धिः । तस्य हि विशे-पणस्य प्रधानेन सहान्वयेन भाव्यं नतु गुणेन 'गुणानां च परार्थत्वादसंबन्धः समत्वात्स्यात्' इति न्यायादुपमितसमासाश्रयणे तस्य पूर्वपदार्थप्रधानत्वा-च्छशाङ्कस्य तमसां च प्राधान्यं भवेत् । तत्र न विशेषेण मुख्यार्थान्वयस्वार-स्वमस्ति । स्वरूपनाशरूपोपचरिताकृतिलवनकर्तृत्वकर्मत्वान्वयसंभवेऽपि मु-ख्यार्थान्वयस्वारस्यमेवादरणीयम् ।

स्वरूपनाशकोडीकरणप्रवृत्तया लक्षणामूलातिशयोत्तया रूपकसिद्धिः। तच रूपकमुरप्रेक्षाया अङ्गं तदुत्थापकत्वात् । रूपकाभावे हि छायालूनगात्रखण्डा इवावेपन्तेस्येतावदुक्तावुपमेव सिद्ध्येत् । वेपनादिसाधम्यान्न छायानां सद्यः कृत्तगात्रखण्डतादात्म्यसंभावनारूपोत्प्रेक्षा । ननु शशाङ्केन लूनाकृतीनां तम-सां गात्रखण्डा इवावेपन्तेस्येतावदुक्तावि सिध्यत्युत्प्रेक्षा । तादात्म्यसंभाव-नोपयुक्तलूनाकृतित्वरूपाधिकविशेषणोपादानात् । सत्यम् । तथोक्तावाकृति-खवनादिधमरूपकार्यसमारोपनिर्मिता शशाङ्कतमसोई-न्तृहन्तव्यचेतनवृत्तान्त-समारोपरूपा समासोक्तरपेक्षणीया । एवमुक्तौ रूपकमिति विशेषः । एवम-त्रातिशयोक्तरूपकोत्प्रेक्षाणामङ्गाङ्गभावेन संकरः ।

गुणानां गुणभूतानां पदार्थानां परार्थत्वान्मुख्यप्रधानार्थत्वात्परस्परमसंबन्धः । कुतः । समत्वादप्रधानत्वसाम्यादिति । यथा भाष्यकारमते पावमानेष्टीनामाधानस्य चाह्वनीयाद्यर्थत्वात्परस्परं नाङ्गाङ्गीभावसंबन्धः । यथा वार्तिककारमतेऽप्रि-सिमन्धनार्थानां मन्त्रविशेषरूपाणां निविदां सामिधेनीनां चेति संक्षेपः । एतद-धिकरणपूर्वपक्षसिद्धान्तौ प्रकृतानुपयोगात्र दर्शितौ ॥ स्वरूपनाशेति ॥ खरूपनाशरूपमुपचरितं गौणं यदाकृतिलवनमित्यर्थः ॥

नन्वेवमि तमोंशेऽस्य विशेषणस्यान्वयात्कथंरूपकसिद्धिरित्याशङ्कयाह — स्वरूपेति ॥ कोडीकारेण निगरणेन ॥ लक्षणामुलेति ॥ साध्यवसानलक्षणामूलेत्यर्थः । तथाच तमोंशे उपचारेणान्वय इति भावः । नचैवं सत्युपमाङ्गीकारेऽपि
किं वाधकमिति वाच्यम् । तदङ्गीकारे प्रधानान्वयेऽप्युपचाराश्रयणापत्तेः । तदपेक्षयाऽप्रधाने तमोंशे तदङ्गीकारेण रूपकस्यैवौचित्यादिति ॥ न छायानामिति ॥ सिद्धोदित्यनुवर्तते । उत्प्रेक्षा न सिद्धोदित्यन्वयः । इवशब्दस्य सादश्ये प्रसिद्धतरत्वेनासित तात्पर्यप्राहके संभावनावोधकत्वासंभवादिति भावः । रूपकं
विनाप्युत्प्रेक्षायां तात्पर्यप्राहकमस्तीति शङ्कते— निव्यति ॥ एवमुक्तौ तमोगजानामित्युक्तौ । तथाच साधकान्तरस्य साधकान्तरादूषकत्वाद्रूपकस्योत्प्रेक्षाङ्गत्वमिवकृतमिति भावः ॥

# समप्राधान्यसंकरः १२१] अलंकारचन्द्रिकासहितः ।

868

#### समप्राधान्यसंकरालंकारः १२१ समप्रधान्यसंकरो यथा—

अवतु नः सवितुस्तुरगावली समतिलङ्गिततुङ्गपयोधरा । स्फुरितमध्यगतारुणनायका मरकतैकलतेव नभःश्रियः॥

अत्र पयोधरादिशब्दश्लेषमूलातिशयोक्त्याङ्गभूतयोत्थाप्यमानैव सवितृतु-रगावल्यां मरकतैकावलीतादात्म्योत्प्रेक्षा । नभोलक्ष्म्यां नायिकाव्यवहारसमा-रोपरूपसमासोक्तिगर्भवोत्थाप्यते । पयोधरश्लेपस्योभयोपकारकत्वात् । तत उत्प्रेक्षासमासोक्त्योरेकः कालः परस्परापेक्षया चारुत्वसमुन्मेपश्लोभयोस्तुल्य इति विनिगमनाविरहात्समप्राधान्यम् । यथावा—

अङ्गुलीभिरिव केशसंचयं संनिकृष्य तिमिरं मरीचिभिः। कुञ्जलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी॥

अत्राङ्गुलीभिरिति वाक्योक्तोपमया तत्त्रायपाठान्मुख्यकुद्धालीकरणिङ्कानुगुण्याचोपिमतसमासाश्रयणेन लव्धया सरोजलोचनिमिति समासोक्तोपमयाङ्गभूतयोत्थाप्यमानेव शशिकर्तृकिनिशामुखचुम्बनोत्प्रेक्षा निशाशिशानीर्दाम्पल्यव्यवहारसमारोपरूपसमासोक्तिगर्भेवां विना चुम्बनोत्प्रेक्षाया निरालम्बनत्वाच । ततश्चात्राप्युत्प्रेक्षासमासोक्तगर्भेतां विना चुम्बनोत्प्रेक्षाया निरालम्बनत्वाच । ततश्चात्राप्युत्प्रेक्षासमासोक्तगर्भेतां विना चुम्बनोत्प्रेक्षाया निरालम्बनत्वाच । ततश्चात्राप्युत्प्रेक्षासमासोक्तगरेककालयोः समप्राधान्यम् ॥ यद्यप्यत्रोपमाभ्यां
शक्तिनिशागतावेव धर्मौ समर्थ्येते न तु शिशानायकयोः निशानायकयोश्च साधारणधर्मौ । साधारणधर्मसमर्पणं चोत्प्रेक्षासमासोक्त्योरपेक्षितम् । उत्प्रेक्षायाः
प्रकृताप्रकृतसाधारणगुणिकियानिमित्तसापेक्षत्वात्समासोक्तेविशेषणसाम्यमूल-

अविति ॥ सिवतुः सूर्यस्य तुरगावली अश्वपिक्किनींऽस्मानवतु । केव । नभःश्रियो गगनलक्ष्म्याः मरकतमणीनामेकलता एकावलीवेत्युत्प्रेक्षा । सूर्यतुरज्ञाणां हरितवर्णत्वात् । कथंभूता । सम्यगितलिङ्घितासुङ्घा उच्चाः पयोधरा मेघा
यया । एकावलीपक्षे पयोधरौ स्तनौ । तथा स्फुरितो दीप्तिमान् मध्यगतोऽहणरूपो नायको नेता सार्थिर्यस्याः । पक्षे अरुण आरक्तो नायको हारमध्यमणिः ।
'नायको नेतिर श्रेष्ठे हारमध्यमणाविपे' इति विश्वः । अतिशयोक्त्या मेघानां
स्तनत्वेनाध्यवसानरूपया । गर्भेवेत्यनेन तिलतण्डलन्यायेन स्फुटावगम्यमानभेदायाः संस्रष्टेः सकाशाद्वेलक्षण्यं दिशतम् ॥ एवमत्रेति ॥ एकस्य चमत्कृतिजनने परापेक्षत्वादङ्गाङ्गिभावमाशङ्क्याह—परस्परेति ॥ अङ्गलीभिरित ॥
शशी अङ्गलीभिरिव मरीचिभिः केशसंचयमिव तिमिरं संनिगृह्य कुष्मलीकृतसरोजलोचनं लोचनिमव सरोजं यत्र तादशं रजनीमुखं चुम्वतीवेत्यन्वयः ॥ तत्यायेति ॥ उपमावहुले संदर्भे पाठादिल्यर्थः ॥ मुख्येति ॥ मुख्यार्थरूपं यंत्कुद्मलीकरणरूपं लिङ्गं पुष्पासाधारणधर्मस्तस्यानुकूल्यादिल्यर्थः । उत्थापकत्वाविशेपत्वादङ्गत्वाविशेषात् ॥ चन्द्रस्य चुम्बनोत्प्रेक्षायां दाम्पल्यव्यवहारसमारोपात्मकसमासोक्रौ चापेक्षितस्य नायकसाधमर्यस्थोकोपमाभ्यामसमर्पणात्कथं तयोस्वदङ्गत्वमिति

कत्वाच । तथापि वाक्योक्तोपमायामिवकारस्य मरीचिभिरिवेत्यन्वयान्तरमभ्युपगम्यान्वयभेदलब्धप्रकृताप्रकृतयोरेकैकविषयसार्थद्वयस्य समासोक्तोपमायां सरोजसदृशं लोचनमिति समासान्तरमभ्युपगम्य समासभेदलब्धार्थद्वयस्य चाभेदाध्यवसायेन साधारण्यं संपाद्य तयोरुत्प्रेक्षासमासोक्त्योरङ्गता निर्वाद्या ॥ यद्वा इद्द प्रकृतकोटिगतानां मरीचितिमिरसरोजानामप्रकृतकोटिगतानां
चाङ्गलीकेशसंचयलोचनानां च तनुदीर्घावरणत्वनीलनीरन्ध्रत्वकान्तिमत्त्वादिना सदृशानां प्रातिस्विकरूपेण भेदवद्गुगतसादृश्यप्रयोजकरूपेणाभेदोऽप्यस्ति
स चात्र विवक्षित एव भेदाभेदोभयप्रधानोपमेत्यालंकारिकसिद्धान्तात् । तत्रच प्रयोजकांशनिष्कर्षन्यायेनाभेदगर्भतांशोपजीवनेन साधारण्यं संपाद्य प्रधानभूतोत्प्रेक्षा समासोक्तयङ्गतानिर्वाद्धा । निर्व प्रकाशशीतापनयनशक्तिमतः
सौरतेजसः शीतापनयनशक्तिमात्रेण शीताल्द्रपयोगिता न दृष्टा ॥

एवमनभ्युपगमे च

'पाण्ड्योऽयमंसापितलम्बहारः क्रुप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन । आभाति बालातपरक्तसानुः सिनर्झरोद्गार इवाद्गिराजः ॥' इत्याद्यपमापि न निर्वहेत् । न ह्यत्राद्गिराजपाण्ड्ययोरुपमानोपमेययोरनु-गतः साधारणधर्मो निर्दिष्टः । एकत्र बालातपनिर्झरावन्यत्र हरिचन्दनहारा-विति धर्मभेदात् । तस्मात्तत्रातपहरिचन्दनयोर्निर्झरहारयोश्च सदशयोरभेदां-शोपजीवनमेव गतिः ।

शङ्कते — यद्यपीति ॥ मरीचिमिरिवेति ॥ मरीचिमिरिवाङ्गलीभिस्तिमिरमि-व केशसंचयमित्येवंरूपमित्यर्थः। एकैकविषयस्यार्थद्वयस्याभेदाध्यवसानेनेत्यन्वयः। तयोर्वाक्यसमासोक्तोपमयोः ॥ आवर्यकाभेदाध्यवसायेनोपपत्तौ कृतमन्वयान्त-रसमासान्तरकल्पनागौरवेणेखाशयेनाह—यद्वेति ॥ तनुदीर्घेखादौ पूर्वनिपात-नियमानुरोधेन यथासंख्यकमपरित्यागः । तथा चाङ्ग्रिलमरीच्योस्तनुत्वनीरन्ध्रत्वा-भ्यां तिमिरकेशसंचययोरावरणरूपत्वनीलत्वाभ्यां सरोजलोचनयोदीं घत्वकान्तिम-त्त्वाभ्यां च सादृद्यं वोध्यम् । प्रातिखिकरूपेण अङ्गुलित्वमरीचित्वादिना ॥ अनु-गतेति ॥ अनुगतं यत्सादश्यप्रयोजकं रूपं तनुत्वादिकं तेनेत्यर्थः । एतच साद-र्यमतिरिक्तमित्यभिप्रायेण ॥ सिद्धान्तादिति ॥ तदुक्तं साधर्म्यं त्रिविधं भेदप्रधानमभेदप्रधानं भेदाभेदप्रधानं चेत्युपकम्य विद्यानाथेन उपमानन्वयोप-मेयोपमास्मरणानां भेदाभेदसाधारणसाधर्म्यमूलत्वमिति । ननु भेदाभेदरूपांश-द्वयोपेतायां उपमाया भेदांशस्यानुपयोगात्कथं तस्या उत्प्रेक्षाग्रुपयोगित्वमित्याश-क्रय परिहरति-नहीति ॥ प्रकाशश्च शीतापनयनं चेति द्वन्द्वः । शीतालुः शी-तार्तः 'शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने' इति वा छः । उक्तसिद्धान्तस्य निर्युक्तिकत्वे-नाश्रदेयत्वमाशङ्कमानं प्रलाह—एवमिति ॥ पाण्ड्योऽयमिति ॥ पाण्ड्य-नामायं नृपः अदिराज इवाभाति । कथंभूतः । अंसयोर्रितो लम्बो हारो येन सः । तथा हरिचन्दनेन रक्तचन्दनेन क्रप्तः कृतोऽक्ररागोऽनुलेपनं येन तथा-

### संदेहसंकरालंकारः १२२] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

363

'पिनष्टीव तरङ्गाग्रैः समुद्रः फेनचन्द्रनम् । तदादाय करैरिन्दुर्छिम्पतीव दिगङ्गनाः ॥'

इत्यत्रोत्प्रेक्षयोः कालभेदेऽपि समप्राधान्यम् । अन्योन्यनिरपेक्षवाक्यद्वयो-पात्तत्वात् । तदादायेति फेनचन्दनरूपकमात्रोपजीवनेन पूर्वोत्प्रेक्षानपेक्ष-णात् । नचैवं लिम्पतीव तमोऽङ्गानीतिवदुत्प्रेक्षाद्वयस्य संसृष्टिरेवेयमिति वा-च्यम् । लेकिकसिद्धपेपणलेपनपौर्वापर्यच्छायानुकारिणोत्प्रेक्षाद्वयपौर्वापर्येण चारुतातिक्षयसमुन्मेपतः संसृष्टिवैपम्यात् । तस्माइर्कादिवदेकफलसाधनतया समप्रधानमिदमुत्प्रेक्षाद्वयम् । एवं समप्रधानसंकरोऽपि व्याख्यातः ॥

### संदेहसंकरालंकारः १२२

संद्रहसंकरो यथा— शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेवमुक्तं जलनिधिमनुरूपं जहुकन्यावतीर्णा । इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्र पौराः श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्यं विवत्रुः॥

अत्र इयमिति सर्वनाम्ना यद्यजं वृतवतीन्दुमती विशिष्टरूपेण निर्दिश्यते तदा विम्वप्रतिविम्बभावापन्नधर्मविशिष्टयोः सदशयोरैक्यारोपरूपा निदर्शना यदि तेन सा स्वरूपेणेव निर्दिश्यते विम्बभूतो धर्मस्तु पूर्वप्रस्तावात्समगुणयोग्यतिय इति पौरविशेषणाचावगम्यते तत्र प्रस्तुते धर्मिणि तद्वृत्तान्तप्रतिविम्बभूताप्रस्तुतवृत्तान्तारोपरूपं छितमित्यनध्यवसायात्संदेहः ॥

> विलीयेन्दुः साक्षादमृतरसवापी यदि भवे-त्कलङ्कसात्रत्यो यदि च विकचेन्दीवरवनम् । ततः स्नानकीडाजनितजडभावेरवयवैः कदाचिन्मुञ्जेयं मदनशिखिपीडापरिभवम् ॥

भूतः । अदिराजः कीटक् । वालातपेन रक्तानि सानूनि प्रस्थानि यस्य सः । तथा निर्झरस्योद्गारेणोद्गमेन सहितः ॥ पिनष्टीति ॥ व्याख्यातं प्राक् ॥ पौर्वापर्ये- णेति ॥ तथाच चमत्कारप्रयोजकपौर्वापर्यघटकत्वेन भेदानवभासात्संसृष्टिवेलक्ष-ण्यमिति भावः । दर्शादिवद्रर्शपौर्णमासादिवत् । अयंच भिन्नकालीनयोरि सम-प्राधान्ये दृष्टान्तः । फलं तत्र स्वगः । प्रकृते तु चमत्कृतिविशेषः ।

शित्रिंगित ॥ अत्र अजस्येन्दुमला खयंवरे समगुणयोरजेन्दुमलोयोंगेन प्रीतिर्थेषां ते पौरा नागरिका नृपाणामन्येषां अवणयोः कटु पीडाकरमिति पूर्वार्थ-रूपमेकमेव वाक्यं विवत्रुरुचारयामासुरिल्यन्वयः । तेन सर्वनाम्ना सा इन्दुमती विम्बभूतो धर्मः अजकर्मकं वरणम् । तत्र तिस्मिन्पक्षे ॥ विलीयेति ॥ अ-प्रिसंयोगेन घृतादिवत्केनापि हेतुना विलीनतां प्राप्येल्ययः । विकचं विकसितम् । अत्र यद्येतावत्साधनं संपद्येत तदा तापः शाम्यतीत्यर्थे कविसंरम्भश्चेत्तदै-तदुपात्तसिद्धार्थमूह इति संभावनालंकारः । एतावत्साधनं कदापि न संभ-वत्येवातस्तापशान्तिरपि गगनकुसुमकल्पेत्यर्थे कविसंरम्भश्चेदुपात्तमिथ्यात्व-सिद्धार्थं मिथ्यार्थान्तरकल्पनारूपा मिथ्याध्यवसितिरित्युभयतासंभवात्संदेहः। एवम्—

'सिक्तं स्फटिककुम्भान्तःस्थितिश्वेतीकृतेर्जलैः । मौक्तिकं चेछतां सूते तत्पुष्पेस्ते समं यशः ॥' इत्यादिष्वपि संभावनामिथ्याध्यवसितिसंदेहसंकरो दृष्टव्यः ॥

> एकवचनानुप्रवेशसंकरः १२३ मुखेन गरलं मुझन्मूले वसति चेत्फणी। फलसंदोहगुरुणा तरुणा किं प्रयोजनम्॥

अत्र महोरगवृत्तान्ते वर्ण्यमाने राजद्वाररूढखळवृत्तान्तोऽपि प्रतीयते। तत्र किं वस्तुतस्त्रथाभूतोरगवृत्तान्त एव प्रस्तुतेऽप्रस्तुतः खळवृत्तान्तस्ततः प्रतीयत इति समासोक्तिः। यद्वा प्रस्तुतखळवृत्तान्तप्रत्यायनायाप्रस्तुतमहोर-गवृत्तान्तकीर्तनमप्रस्तुतप्रशंसा। यद्वा वर्ण्यमानमहोरगवृत्तान्तकीर्तनेन स-मीपस्थितखळममोद्धाटनं क्रियत इति उभयस्थापि प्रस्तुतत्वात्प्रस्तुताङ्कर इति संदेहः। एकवाचकानुप्रवेशसंकरस्तु शब्दार्थालंकारयोरेवेति लक्षयित्वा का-व्यप्रकाशकार उदाजहार॥

स्पष्टोच्छ्रसिकरणकेसरसूर्यविम्ब-विस्तीर्णकर्णिकमथो दिवसारविन्दम् । श्लिष्टाष्टदिग्दलकलापमुखावतार-बद्धान्धकारमधुपाविल् संजुकोच ॥

अत्रैकपदानुप्रविष्टी रूपकानुपासी यत्रैकस्मिन् श्लोके पदभेदेन शब्दार्थालं-कारयोः स्थितिसत्र तयोः संसृष्टिरिह् तु संकर इति । अलंकारसर्वस्वकारस्तु

जडभावः शैलम् । मदन एव शिखी विहः । संरम्भस्तात्पर्यम् ॥ सिक्तमिति ॥ स्फटिककुम्भान्तःस्थिला श्वेतीकृतैर्जेलैः सिक्तं मौक्तिकमिलन्वयः ॥

मुखेनित ॥ संदोहः समूहः ॥ लक्षयित्वेति ॥ स्फुटमेकत्र विषये शब्दार्थालंकृतिद्वयमिति सूत्रेणेल्यर्थः ॥ स्पष्टेति ॥ अथो अनन्तरं दिवसरूपमरविन्दं
कमलं संचुकोच संकोचमगमत् । कीदक् । स्पष्टमुच्छुसन्त उल्लसन्तः किरणा एव
केसराणि यस्यास्तथाभूता सूर्यविम्बरूपा विस्तीणी कर्णिका वराटो यस्य तत् ।
श्रिष्टाः प्रकाशाभावेन परस्परं मिलिता अष्ट दिश एव दलानां कलापस्तन्मुखेन नावतारो यस्यास्तादशी बद्धा अन्धकाररूपा मधुपावलिर्येन तथाभूतमिल्यर्थः ।
पद्भेदेनेति ॥ 'सो णित्य एत्य गामे जो एअं महमहंतलाअण्णम् । तरुणाणंहिअअछाडें परिसप्पन्ति णिवारेड' 'स नास्त्यत्र प्रामे य एतां स्फुरह्रावण्यां तरुन

## एकवचनानुप्रवेशसंकरः] अलंकारचन्द्रिकासहितः।

264

एकस्मिन्वाचकेऽनुप्रवेशो वाच्ययोरेवालंकारयोः स्वारसिको वाच्यप्रतियोगि-कत्वाद्वाचकस्येति मत्वार्थालंकारयोरप्येकवाचकानुप्रवेशसंकरसुदाजहार ।

सत्पुष्करचोतितरङ्गशोभिन्यमन्दमारव्धमृदङ्गवाद्ये। उद्यानवापीपयसीव यस्यामेणीदशो नाट्यगृहे रमन्ते।

अत्र नाट्यगृहवापीपयसोः सत्पुष्करेत्यादिविशेषणं शब्दसाम्यं श्रेषः, अ-मन्दमार्ब्धेत्यादिविशेषणेऽर्थसाम्यमुपमा, तदुभयमेकस्मिन्निवशब्देऽनुप्रवि-ष्टमिति तद्गि न मन्यामहे । सत्पुष्करेत्यादिविशेषणेऽपि श्रेषभित्तिकाभेदा-ध्यवसायरूपातिशयोक्तिल्ध्यस्य धर्मसाम्यस्यैव तत्रेवशब्दप्रतिपाद्यतया शब्द-साम्यस्य तद्प्रतिपाद्यत्वात् । श्रेपभित्तिकाभेदाध्यवसायेन धर्मसाम्यमतानङ्गी-कारे 'अहो रागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम्' इत्यादिश्विष्टविशेषणस-मासोत्त्युदाहरणे विशेषणसाम्याभावेन समासोत्त्यभावप्रसङ्गात् । शब्दसा-म्यस्येवशब्दप्रतिपाद्यत्वेऽपि तस्योपमावाचकत्वस्यव प्राह्या श्रेषवाचकत्वाभा-वाच । शब्दतोऽर्थतो वा कविसंमतसाम्यप्रतिपादने सर्वविधेऽप्युपमालंकार-स्वीकारात् । अन्यथा—

> 'यथा प्रह्णाद्नाचन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा । तथैव सोऽभूद्नवर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥'

इत्यत्राप्युपमा न स्यात् । नद्यत्रान्वर्धनामरूपशब्दसाम्यं विना किंचिद्र्यं-साम्यं कविविवक्षितमस्ति । तस्माद्यत्रैकसिन्नर्थे प्रतिपाद्यमाने अलंकारद्वयप्र-तीतिस्तत्र तयोरलंकारयोरेकवाचकानुप्रवेशः ॥

णानां हृदयञ्जण्ठनं परिसर्पन्तीं निवारयति' इति संस्कृतम् । अत्र पूर्वार्धेऽनुप्रास-स्तृतीयपादे रूपकमिति तयोः संस्रष्टिः ॥ वाच्यप्रतियोगिकत्वादिति ॥ वाच्यं प्रतियोगि प्रतिसंबन्धि यस्य तद्वाच्यप्रतियोगिकं तत्त्वादिस्पर्थः । एवंच काव्यावाच्यस्यानुप्रासादेः शब्दालंकारस्य तदनुप्रवेशो न वाचकानुप्रवेश इति वक्तं युक्तमिति भावः ॥

सत्पुष्करेति ॥ यस्या नगर्यामेणीदश उद्यानसंविध्यापीपयसीव नाट्यगृहे रमन्ते कीडिन्त । कीदशैः । समीचीनैः पुष्करैः कमलैः द्योतिनो ये तरक्षास्तच्छो-भावति । गृहपक्षे समीचीनैः पुष्करैर्वाद्यभाण्डमुखेद्योतितो यो रक्षो नृत्यभूमिस्तच्छोभिनीत्यर्थः । 'पुष्करं किरहस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखे जले । व्योग्नि खङ्गफले पद्मे' इत्यमरः ॥ श्लेपभित्तिकेति ॥ श्लेपो भित्तिरिव भित्तिर्मूलं यस्येत्यर्थः ॥ रागवतीति ॥ रागोऽनुरागो रक्तिमा च । अम्बरमाकाशं वस्त्रं च । नन्वत्र विशेषणसाम्यायाभेदाध्यवसायापेक्षणेऽिष सत्पुष्करेत्यादौ शब्दसाम्यमात्रेणाप्युप्योपपत्तेन तदपेक्षेत्यत आह—शब्देति ॥ शब्दतोऽर्थतो वेति । शब्दशयुक्तमर्थप्रयुक्तं वा यत्कविसंमतं साम्यं तत्प्रतिपादन इत्यर्थः । सर्वविधे सर्वप्रकारे । यथेति ॥ 'चिद् आहादने' इति धात्वनुसाराचन्द्रपदमन्वर्थम् । अन्वर्थोऽन्वर्थनामा । तस्मान्मतद्वयस्याप्ययुक्तत्वात् ॥

कुवलयानन्दः । [ संकरसंकरालंकारः १२४

विश्वकरपरिरम्भादात्तनिष्पन्दपूर्णेः शशिदपदुपक्रृक्षैरालवालेखरूणाम् । विफलितजलसेकप्रक्रियागौरवेण व्यरचि स हृतचित्तस्तत्र भैमीवनेन ॥

अत्र हि प्रतिपाद्यमानोऽर्थः समृद्धिमद्वस्तुवर्णनसुदात्तमिति लक्षणानुसारादुदात्तालंकाररूपः असंवन्ध संवन्धकथनमितशयोक्तिरिति लक्षणादितशयोक्तिश्च । नच सर्वत्रोदात्तस्यासंबन्धे संबन्धवाचनरूपत्वं निर्णीतमिति न
विविक्तालंकारद्वयलक्षणसमावेशोऽस्तीति वाच्यम् । दिव्यलोकगतसंपत्समृद्विवर्णनादिष्वतिशयास्पृष्टस्योदात्तस्य शौर्योदार्यदारिद्यादिविषयवर्णनेपूदात्तास्पृष्टाया अतिशयोक्तेश्च परस्परविविक्ततया विश्रान्तेः । तयोश्चेहार्थवशसंपश्वसमावेशयोनीङ्गाङ्गिभावः । एकेनापरस्यानुत्थापनात्स्वात्वव्यपारतव्यविशेपादशनाच । नापि समप्राधान्यम् । यैः शब्दैरिह संबन्धि वस्तु प्रतिपाद्यते
तेरेव तस्यैव वस्तुनोऽसंबन्धे संबन्धरूपस्य प्रतिपाद्यमानतया भिन्नप्रतिपादकशब्दव्यवस्थितार्थभेदाभावात् । नापि संदेहसंकरः । एकालंकारकोट्यां तदन्यालंकारकोटिप्रतिक्षेपाभावात् । तस्मादिहोदात्तातिश्चयोक्त्योरेकवाचकानुप्रवेशलक्षणः संकरः ।

संकरसंकरालंकारः १२४
किवित्संकराणामि संकरो दृश्यते । यथा—

मुक्ताः केलिविसूत्रहारगिलताः संमार्जनीभिर्हताः

प्रातः प्राङ्गणसीग्नि मन्थरचलद्वालाङ्गिलाक्षारुणाः ।

दूराद्दाहिमबीजशङ्कितिथाः कर्षन्ति केलीशुकास्विद्वद्भवनेषु भोजनुपतेस्तत्त्यागलीलायितम् ॥

अत्र तावद्विदुषां संपत्समृद्धिवर्णनमुदात्तालंकारस्तन्मूलको बालाङ्किलाक्षारुणा इत्यत्र तद्वणालंकारस्तत्रैव वक्ष्यमाणभ्रान्त्युपपादकः । पदार्थहेतुककाव्य-

विधुकरेति ॥ स हंसस्तत्र भैमीवनेन दमयन्त्या उद्यानेन हतिचत्तो व्यरचि कृतः । कथंभूतेन । चन्द्रिकरणाश्चेषोदात्तरङ्गीकृतैर्निष्यन्दैः पूर्णेश्वन्द्रकान्तघटितै-स्तरूणामालवालैर्विफलीकृतजलसेकप्रकाररूपगौरवेणेत्यर्थः ॥ शब्द्व्यवस्थिनतेति ॥ शब्द्प्रयुक्तेत्यर्थः । तथाच समप्राधान्यमर्थभेदविषयमिति भावः । प्रति-क्षिप्यते निवार्यते कोव्यन्तरमनेनेति प्रतिक्षेपो विरोधः ॥

मुक्ता इति ॥ विदुषां भवनेषु मन्दिरेषु केलौ सुरतकीडायां विच्छिन्नसूत्रा-द्धाराद्गलिताः संमार्जनीभिरपसारिताः प्रातःकालेऽङ्गणसीमान्ते मन्दं चलतां बा-लानां चरणलाक्षारसेनारुणा मुक्ताः दूराद्दाडिमबीजशङ्कितिधयः कीडाशुका यत्क-पंन्लाकपेन्ति तद्भोजनृपतेस्लागस्य दानस्य लीलायितमित्यन्वयः । तत्रैव बाला-द्विलाक्षारुणा इत्येत्रव ॥ वक्ष्यमाणेति ॥ शङ्कितिधय इति वक्ष्यमाणेत्यर्थः । लिङ्गालंकारश्चेति तयोरेकवाचकानुप्रवेशसंकरसान्मूलः शङ्कितधिय इत्यत्र आन्तिमद्छंकारस्ताभ्यां चोदात्ताछंकारचास्तां नीत इति तयोश्च तस्य चा-ङ्गाङ्गिभावसंकरः । एवं विद्वद्वेहवैभवस्य हेतुमतो राज्ञो वितरणविळासस्य हेतोश्राभेदकथनं हेख्वलंकारः । स च राज्ञो वितरणविलासस्य निरतिशयो-त्कर्पाभिव्यक्तिपर्यवसायी । एतावन्मात्रे कविसंरम्भश्चेदुक्तरूपोदात्तालंकारप-रिष्कृते हेत्वलंकारे विश्रान्तिः । कीदशी संपदिति प्रश्लोत्तरतया निरतिशयै-श्वर्यवितरणरूपा प्रस्तुतकार्यमुखेन तदीयसंपदुत्कर्पप्रशंसने कविसंरम्भश्रेत्का-र्यनियन्धनाप्रस्तुतप्रशंसालंकारे विश्रान्तिः । कार्यस्यापि वर्णनीयत्वेन प्रस्तु-तःवाभित्राये तु प्रस्तुताङ्करे विश्रान्तिः । अत्र विशेषानध्यवसायाःसंदेहसंक-रः । किंच विद्वद्वहवैभववर्णनस्यासंबन्धे संबन्धकथनरूपतयातिशयोक्तेरुदा-त्तालंकारेण संहेकवाचकानुप्रवेशसंकरः । निरतिशयवितरणोत्कर्षपर्यवसायिनो हेत्वलंकारस्यात्यद्भतातथ्यौदार्यवर्णनात्मिकयात्युक्तया सहैकवाचकानुप्रवेशसं-करः । तन्मूलकस्याप्रस्तुतप्रशंसालंकारस्य प्रस्तुताङ्करस्य वा राजसंपत्समृ-द्विवर्णनात्मकोदात्तालंकारेण सहैकवाचकानुप्रवेशसंकरः । वाचकशब्दस्य प्रतिपादकमात्रपरतया व्यञ्जकसाधारण्यादेषां च त्रयाणामेकवाचकानुप्रवेश-संकराणां समप्राधान्यसंकरः । न ह्येतेषां परस्परमन्यत्राङ्गस्वमस्ति ॥

उदात्तादिमात्रस्यैव हेत्वलंकारादिचारुतापादकरवेनातिशयोक्तिसंकरस्याङ्ग-तयानपेक्षणात् । एवमत्र श्लोके चतुर्णामिष संकराणां यथायोग्यं संकरः । एवमन्यत्राप्युदाहरणान्तराण्युद्धानि ॥

तयोस्तद्भणकाव्यिलङ्गयोः । तन्मूलः संकरमूलः । ताभ्यां संकरभ्रान्तिमन्न्याम् । तयोः संकरभ्रान्तिमतोः । तस्य उदात्तस्य हेतुमतः कार्थस्य अभेदकथनं तत्त्या-गलीलायितस्य कार्थमिति वक्तव्ये तदेव त्यागलीलायितमित्यभेदकथनम् ॥ त-द्यिति ॥ राजकीयेत्यर्थः ॥ अतथ्यौदार्येति ॥ असत्यौदार्येत्यर्थः ॥ तन्मू-लक्तस्येति ॥ वितरणोत्कर्षप्यवसायिहेत्वलंकारमूलकस्येत्यर्थः । ननु राजसं-पत्समृद्धेवर्यज्ञनागम्यत्वेनावाच्यत्वात्कथं तद्वर्णनात्मकोदात्तालंकारेण सहैकवाच-कानुप्रवेशकथनमित्याशङ्कायामाह—वाचकशव्दस्येति ॥ त्रयाणामिति ॥ एक उदात्तातिशयोक्तयोरपरो हेत्वत्युक्तयोरन्यो व्यक्षयोदात्ताप्रस्तुतप्रशंसाप्रस्तुता-ङ्करान्यतरयोरित्यवं त्रयाणां परस्परमित्यर्थः ॥

उदात्तालंकारस्य हेत्वलंकाराङ्गतायाः पूर्वमुक्तत्वादुदात्तातिशयोक्तिसंकरस्यापि तदङ्गत्वमिति शङ्कां निरस्यति—उदात्तादिमात्रस्येवेति ॥ उदात्तादीत्यादि-पदेन हेत्वलंकारपरियहः । हेत्वलंकारादीत्यादिपदेन चाप्रसुतप्रशंसापरियहः । तत्रापि निरतिशयेश्वर्यवितरणोत्कर्षपर्यवसायिनो हेत्वलंकारस्येव तादशवितरणरूपकार्यपरिष्कारद्वारा तद्गम्यप्रसुतराजसंपदुत्कर्षप्रशंसारूपायामप्रसुतप्रशंसायामइत्वं न त्वद्भुतातथ्यवर्णनारूपात्युक्तिसंकरस्यापेक्षेति भावः ॥ यथायोग्यमि-

कुवलयानन्दः।

[ उपसंहारः

उपसंहारः ।
अमुं कुवलयानन्दमकरोदण्पदीक्षितः ।
नियोगाद्वेङ्कटपतेर्निरुपाधिकृपानिधेः ॥ १७१ ॥
चन्द्रालोको विजयतां शरदागमसंभवः ।
हद्यः कुवलयानन्दो यस्प्रसादादभूदयम् ॥ १७२ ॥

इति श्रीमदद्वेतविद्याचार्यश्रीमद्विजकुलजलधिकौस्तुभश्रीरङ्गराजाध्व-रीन्द्रवरदसूनोरप्पदीक्षितस्य कृतिः कुवलयानन्दः समाप्तः॥

ति ॥ तथाहि उदात्ततद्भणयोरङ्गाङ्गिभावसंकरस्य आन्तिमदुदात्तयोरङ्गाङ्गिभाव-संकरस्य चाङ्गाङ्गिभावे च संकरः । तथा आन्तिमदुदात्तयोरङ्गाङ्गिभावसंकरस्यो-दात्ताङ्गकहेत्वलंकारादिसंदेहसंकरस्य चाङ्गाङ्गिभावेन संकर इति सूक्ष्ममितिभिक्ष-हनीयम् ॥

सकीर्थनुवृत्तये प्रन्थनाम स्वनाम चोपनिवधन् प्रन्थपूर्तिमनुवद्ति—अमु-भिति ॥ सप्रन्थस्य प्रामाणिकत्वं सूचियतुमाह—चन्द्रालोक इति ॥ शरदा-गमसंज्ञकश्चन्द्रालोकमूलभूतो प्रन्थः। शरत्कालागमनेन चन्द्रस्यालोक इति श्लेषः। तस्माच कुवलयानन्दः स्वप्रन्थोऽभूत्। कुवलयस्य कुमुद्स्यानन्द इति च श्लेप इति शिवमास्ताम्।

> विद्वद्वन्दमहामान्यरामचन्द्रात्मजन्मना । विदुषा वैद्यनाथेन कृतालंकारचन्द्रिका ॥ १ ॥ एनां कुवलयानन्दप्रकाशनविशारदाम् । विदांकुर्वेन्तु विद्वांसः काव्यतत्त्वविदां वराः ॥ २ ॥ असौ कुवलयानन्दश्चन्द्रालोकोत्थितोऽपि सन् । प्रतिष्ठां लभते नैव विनालंकारचन्द्रिकाम् ॥ ३ ॥

इति श्रीमत्पद्वाक्यप्रमाणज्ञतत्सद्रामभट्टात्मजैवद्यनाथकृतालंकार-चन्द्रिकाख्या कुवलयानन्दटीका संपूर्णा ॥

# कुवलयानन्दपद्यानामकारादिकोशः।

-48:00 H

श्होकः. अलं. पृष्ठं. ५०० अकारणास्कार्यजन्म विभा. २३ अकृशं कुचयोः कृशं उल्ले. ४३ अक्रमातिशयोक्तिः स्या. अति. २६ अङ्कं केऽपि शशङ्किरे अप. ८० अङ्गाधिरोपितमृगः अप्रस्तु. ८६ अङ्गासङ्गिमृणालकाण्ड. प्रस्तु. १८१ अङ्गलीभिरिव केशसंचयं सम. ५९ अङ्गिदण्डो हरेहर्ध्व निद. १८ अचतुर्वदनो ब्रह्मा रूप. १०२ अजलमारोहित दूरदीघी असंग-७३ अतियजेत निजां यदि परि. अति. ४४ अत्यन्तातिशयोक्तिस्तु १६४ अत्युक्तिरद्भुतातथ्य. अत्यु. १७० अत्युचाः परितः स्फर. प्रयो. १७४ अत्र मन्मथमिवा. उप. १३२ अथोपगूढे शरदा अर्थान्त. १६४ अद्यापि तिष्ठति दशो. भावि. ,१२६ अधरोऽयमधीराक्ष्या अर्था. ु ११३ अधिकं पृथुलाधारा अधि. विक. १३४ अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य ४३ अनयोरनवद्याङ्गि अति. १६५ अनयोरनवद्याङ्गि अत्यु. १३९ अनायि देशः कतमस्त्वः लिल. १०५ अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्च विष. १०१ अनुरागवती संध्या विशे. ११९ अन्तर्विष्णोस्त्रिलोकी नि. सारा. ७९ अन्तिइछद्राणि भूयांसि अप्र. ११३ अन्यत्र करणीयस्य असंग. २७ अन्यत्र तस्यारोपार्थः अप. ८५ अन्यासु तावदुपमर्दसहाः प्रस्तुः ४२ अन्येयं रूपसंपत्तिः अति.

श्लोकः. पृष्टं. अलं. ११४ अन्योन्यं नाम यत्र अन्यो. १२ अन्योपमेयलाभेन प्रती. ६० अपरां बोधनं प्राहु: निद्. १५२ अपाङ्गतरले दशौ तरल. सामा-११३ अपारिजातां वसुधां असंग. ९९ अपीतक्षीवकाद्म्ब. विभा. ७८ अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् अप्र. ९३ अप्रस्तुतप्रशंसा स्याद्. व्याज. ७४ अज्ञेन त्वन्मुखं तुत्यं श्रेपा. १०५ अभिलपसि यदीन्दो विष. १७७ अभूतपूर्व मम भावि संभवा. १ अमरीकवरीभारः उपो. १८८ अमुं कुवलयानन्दं उपसं. स्मृति. २३ अयं प्रमत्तमधुपः श्वेपा. ७६ अयमतिजरठाः प्रकाम. १०२ अयं वारामेको निलय. असं. १७० अयं स रसनोत्कर्षा. रस. १५ अयं हि धूर्जिटिः साक्षात्. रूप. ५६ अरण्यरुदितं कृतं निद. ९३ अर्थेरयलसुलभैर्जगः व्याज. ९१ अर्धे दानविरिणा गिरि. व्याज. उपो. २ अलंकारेषु वालानां परि. ७१ अलंकारः परिकरः ११४ अल्पं तु सूक्ष्मादाधेया. अल्पा. १६५ अल्पं निर्मितमाकाशः अत्यु. १८१ अवतु नः सवितुस्तुरगाः सम. १०१ अविवेकि कुचद्रन्द्रं विभा. १६३ असमालोच्य कोपस्ते वको. श्हेषा-७५ असावुदयमारूढः १२८ असोढा तत्कालोह्रस. काव्य. १०२ असंभवोऽर्थनिष्पत्तेः असं.

| षृष्ठं. | श्लोकः.  | अलं.     |
|---------|--|----------|
| 904     | असंशयं क्षत्रपरिग्रह.  | आत्म.    |
| 935     | अस्य क्षोणिपतेः परार्ध.  | मिथ्या.  |
| 69      | अस्याश्चेद्रतिसौकुमार्यः   | अप्र.    |
| 93      | अहमेव गुरुः सुदारुणा.  | प्रती.   |
| 952     | अहो केनेदशी बुद्धि.  | वक्रो.   |
| 902     | अहो खलभुजङ्गस्य  | असंग.    |
| 993     | अहो विशालं भूपाल   | अधि.     |
|         | अहंप्राथिमकाभाजा.  | समु.     |
| 93      | आकर्णय सरोजाक्षि   | प्रती.   |
| 90      | आक्षेपोऽन्यो विधौ  | आक्षे.   |
| ९६      | आक्षेपः स्वयमुक्तस्य   | आक्षे.   |
| 985     | आघ्रातं परिचुम्बितं परि  |          |
|         | आदातुं सकृदीक्षितेऽपि  | अति.     |
| 990     | आदौ हालाहलहुतभुजा  | 1        |
|         | आनन्दमन्थरपुरन्दर.   | असं-     |
|         | . आवद्धकृत्रिमसटाजिट.  | अप्र.    |
|         | अभासत्वे विरोधस्य  | विरो.    |
|         | The state of the s | व्याजो.  |
|         | आयुर्दानमहोत्सवस्य   | हेत्व.   |
|         | त आविभूते शशिनि तम   |          |
|         | ॰ आश्रित्य नूनममृतद्युतर   |          |
|         | ८ इत्थं शतमलंकारा  | हेत्व.   |
|         | ६ इन्दोर्लक्ष्म त्रिपुरजयिन  |          |
|         | व इप्यमाणविरुद्धार्थ.  |          |
|         | उक्तिरथीन्तरन्यासः   |          |
|         | व उक्तिव्याजस्तुतिर्निन्दा   |          |
|         | े उचित्य प्रथममधः स्थि   |          |
|         | व उचैर्गजैरटनम्थ्यमान.   |          |
|         | उत्कण्ठयति मेघानां   | आवृ.     |
|         | ः उत्कण्ठितार्थसंसिद्धिः   | प्रहर्ष. |
|         | . उत्तरोत्तरमुत्कर्षः  | सारा.    |
|         | उदयन्नेव सविता   | निद.     |
|         | उदात्तमृद्धेश्वरितं.   | उदा.     |
| 900     | उदिते कुमारसूर्ये  | विभा.    |
|         |  |          |

पृष्ठं. श्होक:. अलं. २ उद्घाट्य योगकलया उपो. ९९ उद्यानमारुतोद्धता विभा. ६१ उन्नतं पदमवाप्य यो. निद. ५१ उन्मीलन्ति कद्मबानि आवृ. ९ उपमानोपमेयत्वं अन. ३ उपमा यत्र सादृश्य. उपमा. १२१ एकस्मिन्यद्यनेकं वा पर्या. १४१ एकस्य गुणदोपाभ्यां उल्ला. १७२ एकाभूत्कुसुमायुधेषुधि. भावसं-२२ एकेन बहुधोल्लेखे उल्ले. ७७ एतस्मिन्नधिकपयःश्रियं श्लेषा. १६७ एष ते विद्रुमच्छायो हेत्व. ४२ कतिपयदिवसैः क्षयं अति. १७० कदा वाराणस्याममर. प्रयो. १५१ कपिरपि च कापिशायन. अनु. ११५ कमलमनम्भसि कमले विशे १३४ कणीरुन्तुदमन्तरेण रणितं. विक. ३४ कर्ता यद्यपमानं स्यात् उत्प्रे. प्रौढो. १३५ कल्पतरुकामदोग्ध्री ऐति. १७८ कल्याणी वत गाथेयं ४५ कवीन्द्राणामासन्प्रथमत. आते. १३६ कस्तूरिकामृगाणामण्डाद्र. संभा. ९१ कस्ते शौर्यमदो योद्धं व्याज. १५६ कस्य वा न भवेद्रोषः व्याजो. ९२ कस्त्वं वानर रामराज. व्याज. ८४ कस्तवं भोः कथयामि दैव. प्रस्त. १५४ काक: कृष्ण: पिक: कृष्ण: उन्मी. १४१ काठिन्यं कुचयोः स्रष्टं उल्ला. ५५ कामं नृपाः सन्ति सहस्र. दृष्टाः १०१ कार्याजनिर्विशेषोक्तिः विशे. १०१ कार्यात्कारणजनमापि विभा ७८ कार्ये निमित्ते सामान्ये १०० कार्योत्पत्तिस्तृतीया स्या. विभा. ८३ कालिन्दि ब्रहि कुम्भो. अप्र.

| पृष्ठं. | श्लोकः.                                      | अलं.             | पृष्ठं.       | श्लोकः.                                     | अलं.          |
|---------|--|------------------|---------------|---|---------------|
| 348     | किंचिदाक् <b>तसहितं</b>                      | उत्त.            | 336           | गृहीतमुक्तरीत्यार्थ.                        | एका           |
| 996     | किंचिदारम्भतोशक्य                            | विशे.            |               | गृह्णनतु सर्वे यदि वा यथेश                  |               |
| ,934    | किंचिन्मिध्यात्वसि.                          | मिथ्या.          |               | गोपाल इति कृष्ण त्वं                        | विष.          |
| 903     | किं तावत्सरिस सरोज.                          | प्रत्य.          | 1             | यामेऽस्मिन्प्रस्तरप्राये                    | उत्त.         |
| 96      | किं पद्मस्य रुचिं निहनि                      | त रूप.           | 68            | चकाभिघातप्रसभाज्ञयैव                        | पर्या.        |
| 98      | किमसुभिग्र्छिपितैर्जेड.                      | रूप.             | 90            | चन्द्रज्योत्स्नाविशदपुलिने                  | हिंप-         |
|         | किमसुभिग्र्लिपतेर्जंड.                       | श्रुत्य.         | 966           | चन्द्रालोको विजयतां                         | उपसं.         |
|         | कुशलं तस्या जीवति                            | उत्त.            | 1             | चपलातिशयोक्तिस्तु                           | अति.          |
| -909    | कुसुमसौरभलोभपरिभ्र                           | म. अ.सं.         | 984           | चपलो निर्दयश्वासौ                           | लेशा.         |
|         | कृतं च गर्वाभिमुखं                           | दश.              |               | चातकस्त्रिचतुरान्पयः.                       | प्रहर्ष.      |
|         | केतवापह्नतिर्व्यक्ती                         | केतवा.           | 1             | चिकुरप्रकरा जयन्ति त                        | ते काव्य.     |
|         | कैमुत्येनार्थसंसिद्धिः                       | अर्था.           | 2             | चित्रं चित्रं वत वत                         | समा.          |
|         | कोशद्वनद्वमियं दधाति                         | प्रस्तु.         | ī             | चित्रं तपति राजेन्द्र                       | विभा.         |
|         | कौमुदीव तुहिनांशु.                           | समा.             | 1             | चूडामणिपदे धत्ते                            | निद्.         |
|         | क्रमिकैकगतानां तु                            | कार.             |               | चेद्विम्बप्रतिविम्बरवं                      | दष्टा.        |
|         | क्रमिकं प्रकृतार्थानां                       | रता.             | In the second | छाया संध्रयते तलं                           | सहो.          |
|         | कान्तकान्तवदनप्रतिवि                         |                  |               | छेकापहुतिरन्यस्य                            | छेका.         |
|         | क सूर्यप्रभवो वंशः                           | लि.              |               | छेकोक्तियंदि लोकोक्तः                       | छेको.         |
|         | काकार्ये शशलक्ष्मणः                          | भावश.            |               | जटा नेयं वेणीकृतकच.                         | अप.           |
|         | खिमव जलं जलिमव ख                             |                  |               | जाता लता हि शैले                            | विमा.         |
|         | खिनोऽधि मुच शैलं                             | विष.             |               | जानेऽतिरागादिदमेव                           | अति.          |
|         | गगनं गगनाकारं                                | अन.              |               | जीयादम्बुधितनयाधर.                          | काव्य.        |
|         | गच्छाम्यच्युत दर्शनेन                        | विचृ.            |               | जीवनग्रहणे नम्राः                           | स्मृति.       |
|         | गजत्रातेति दृद्धाभिः<br>गण्डाभोगे विरहति मदै | उल्ले.           |               | ज्योत्स्राभस्मच्छुरणधव.                     | निद.          |
|         | गण्डामाग विरहात मद<br>गतासु तीरं तिमिघटनेन   |                  |               | तचेत्किचिद्विना रम्यं                       | विनो.         |
|         | गतासु तार ।तामघटनन<br>गर्वमसंवाह्यमिमं       | प्रती.<br>प्रती. |               | तडिद्रौरीन्दुतुल्यास्या<br>तद्भाग्यं धनस्यव | उपमा.         |
|         | गिरिरिव गजराजोऽयं                            | उपमे.            |               | तद्य विश्रम्य द्यालु.                       | उछा.<br>भावो. |
| 1       | गिरिर्महान्गिरेरविधः                         | सारा.            |               | तदोजसस्तद्यशसः                              | मावा.         |
|         | प्दोषी बुधो गृहन्                            | उपमा.            |               | तद्भुणः स्वगुणत्यागात्                      |               |
|         |  | अर्थान्त.        | 968           | तलेष्ववेपन्त महीरुहाणां                     | तह.           |
|         | समीकृत्य                                     | तुल्य,           | ٧٩ :          | तव प्रसादात्कुसुमायुधो.                     | परि.          |
|         | माला.  | कार.             | 43 2          | तवामृतस्यन्दिनि पाद.                        | प्रति.        |
|         | र्थं चेत्                                    |                  |               | तस्य च प्रवयसो जटायुष                       |               |
| 20      |  | 8000             |               | रमस्या मठातुष                               | . 116.        |

# पं०इन्द्र विद्यावाचरपति प्रष्टं.

पृष्ठ

90

93

9!

9.

9

9

9

श्लोकः. प्रष्ठं. अलं. ८३ तापत्रयोषधवरस्य तव अप्र. १४३ ताभ्यां तौ यदि न स्या. उप. १७४ तां रोहिणीं विजानीहि उपमा. १०० तिलपुष्पात्समायाति विभा. २० तीर्त्वा भूतेशमौलिस्रज. परि. ११९ तृणाह्यवतरस्तूलः सारा. १६३ तो संमुखप्रचितो सवि खभा. ७५ त्रातः काकोदरो येन श्टेषा. ५१ त्रिविधं दीपकावृत्तौ आवृ. ४६ त्वदङ्गमाद्वे दष्टे तुल्य. १४३ त्वं चेत्संचरसे वृषेण अवज्ञा. १०३ त्वत्खङ्गखण्डितसपत्न. असंग. १७० त्वतप्रत्यर्थिवसुन्धरेशतरु ऊर्ज. १०८ त्वद्वक्रसाम्यमयमम्बुज. विष. १७१ त्वयि लोचनगोचरं गते ऊर्ज. ५८ त्वयि सति शिवदातरि निद. १८ त्वय्यागते किमिति रूप. १७६ त्वं हि नाम्नेव वरदो श्रुत्य. १६० दम्पत्योर्निशि जल्पतोः युत्तय. ११० दवदहनादुत्पन्नो धूमो समा. १४२ दानार्थिनो मधुकरा यदि उल्ला. १३३ दानं ददत्यपि जलैः अर्थान्त. ११८ दिकालात्मसमेव यस्य एका. १०६ दिधक्षनमारतेर्वालं विष. ११५ दिवमप्युपयातानामाक. विशे. १०६ दिवि श्रितवतश्चन्द्रं विष. १३२ दिवाकराद्रक्षति यो अर्थान्त. २४ दिव्यानामपि कृतविसा. स्मृति. ११८ दीपकैकावलीयोगा. माला. ६३ दढतरनिवद्धमुष्टेः कोश. व्यति. ११६ हशा द्रग्धं मनसिजं व्याघा. १५९ दृष्ट्या केशव गोपरागह. वित्रृ. ८८ देवं वन्दे जलिधशर्धि. पर्या. ५५ देवीं वाचमुपासते दृष्टा.

९० देहि मत्कन्दुकं राधे पर्या ५८ दोर्भ्यामिवंध तितीर्धन्त. निद १४४ दोषस्याभ्यर्थनानुज्ञा अनुज्ञा ११८ दोस्तम्भौ जानुपर्यन्त. एका १५० द्वारं खिङ्गिभरावृतं व. ९३ धन्याः खळु वने वाताः व्याज ३१ धूमस्तोमं तमः शङ्के उरप्रे ९७ न चिरं मम तापाय आक्ष १२१ नन्वाश्रयस्थितिरियं २९ न पद्मं मुखमेवेदं १०८ नपंसकमिति ज्ञात्वा आक्ष ९७ नरेन्द्रमौले न वयं व्याजो १५७ नलिनीदले वलाका. अर्थान्त. १३३ न विषेण न शस्त्रेण १६६ न विषेण न शस्त्रेण २८ नागरिकसमधिकोन्नति. ४७ नागेन्द्रहस्तास्त्वचिकर्कः तुत्य. ८१ नाथ त्वदङ्गिनखधावन. १५८ नाथों में विपणि गतो ७४ नानार्थसंश्रयः श्लेपो श्लेषा. १६१ नामैव ते वरद वाञ्छित. लोको १२४ निदाति स्नाति भुद्धे चल. ९४ निन्दाया निन्द्या व्य. व्या.नि. ६८ निरीक्य विद्युत्रयनैः १६५ निरुक्तियोगतो नाम्ना. १७७ निर्णेतुं शक्यमस्तीति अर्था. ८८ निवेद्यतां हन्त समापय. ९६ निपेधाभासमाक्षेपं आहे ७५ नीतानामाकुलीभावं १५४ नृत्यद्भगोदृहासप्रसरस् १२३ पतत्यविरतं वास्ति-५७ पदार्थवृत्तिमप् अप्र. १०७ पद्मातपत्रर्रा विभा. ३० पद्मे त्वन्नर अप्र.

अलं

पूर्व

पयर

अप

विष

प्रति.

अप.

अप्र.

गूढो.

कार.

समा.

निरु.

पर्याः

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

90.

SAMPLE STOCK VERIFICATION

VERIFICATION

VERIFICATION

ARCHIVES DATA CASE 2011 - 12



